"श्री दाता"

"ॐ ऊ. दाता तू ही"

श्री गिरधर लीलामृत

भाग - २

लेखक

चन्द्रशेखर श्रोत्रिय



प्रकाशक

शिव मुद्रण एव प्रकाशक सहकारी समिति लिमिटेड

शिवसदन, काशीपुरी, भीलवाड़ा (राजस्थान)

प्रकाशक
शिवमुद्रण एव प्रकाशक सहकारी समिति, लिमिटेड.
शिवसदन, काशीपुरी, भीलवाड़ा (राजस्थान)

प्रथम संस्करण

मूल्य ५०–०० रुपये

मुद्रक
शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.,
वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन
ग्रेट नाग रोड, नागपुर–२

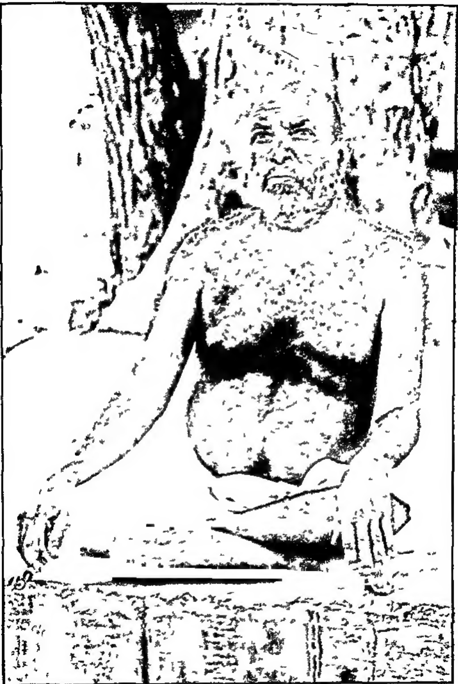
श्री गिरधर लीलामृत भाग–२
लेखक :– चन्द्रशेखर श्रोत्रिय

समर्पण

"हे लीलाधारी !
तेरी कृपा-प्रसूत
यह लीलामृत सौरभ
तेरे ही पादपद्मों में
श्रद्धा पूर्वक समर्पित
जिसकी मधुर सुगन्ध से
दिक-दिगन्त सुवासित
सुरभित हो उठे।"

— शेखर

अनन्तश्री श्री दाता महाराज



ब्रह्मानन्द परम सुखद केवल ज्ञानमूर्तिम, द्वन्द्वातीत गगनसदृश तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ।
एक नित्य विमलमचल सर्वधी साक्षिभूतम्, भावातीत त्रिगुण रहित सद्गुरु त नमामि॥

अ नु क्र म णि का

चित्र अनुक्रमणिका



'जय जय श्री सद्‌गुरु समर्थ'

आत्म निवेदन

श्री गिरधर लीलामृत भाग १ को सुधी पाठकों ने अत्यधिक सराहा, मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की, हार्दिक हर्ष अभिव्यक्त किया।

यह है एक ओर उनकी ईश्वरीय आस्था, भावप्रणवता, रसमर्मज्ञता का प्रतीक; वहीं दूसरी ओर दीनबन्धु 'दाता' के दिव्य गुणयुक्त नीति सम्मत आदर्श एवं यथार्थ के समान धरातल पर संतुलन बनाये रखने की क्षमता और अलौकिक लीला की विविध बहुरंगी झाँकियों और सूक्तियों का चमत्कारिक आत्मीय प्रभाव!

महामना पूज्य गोस्वामी जी तो चार शताब्दी पूर्व ही 'रामचरित-मानस' में यह सत्य उद्‌घाटित कर गये है :-

"राम चरित्त तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति निगम कहे॥"

इसी मूल स्वर को महाकवि श्री गुप्त जी ने 'साकेत' में आगे यों उजागर किया है :-

"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।"

अतः इसमें लेखक का क्या है?

वह तो ठूंठ, मूढ़ मतिमन्द, जैसा भी है, सो है ही।

यह तो सब कुछ उस सुघड़ खिलाड़ी का ही विलक्षण बुद्धि-चातुर्य-कौशल है कि वह एक निपट अनाड़ी को, जीवन के संघर्ष भरे, चुनौती-चौगान में 'कर्म अकर्म करे विधि नाना फिर भी रहे अकर्ता रे।' के अनूठे 'गुरु' सिखा-दिखा-लिखा रहा है!

'हाथ कंगन को आरसी क्या?'

तो फिर लीजिए अब 'श्री गिरधर लीलामृत भाग २' अपने कर-कमलों में। अवगाहन, मज्जन, स्नान करिए इस भक्ति-गंगा में। इसका एक स्वल्प सूक्ष्म जलकण भी कायाकल्प करने; रसविभोर बनाने; आत्ममग्न करने और अन्त में उस आनन्दमय, आत्मस्वरूप का सन्धान कर लक्ष्य-वेध कराने में पूर्ण सहायक है। ऐसी मेरी धारणा है।

यहाँ यह संकेत करना आवश्यक है कि दाता के साथ न तो कोई डायरी लेखक ही रहता है, और न वे इस प्रकार के किसी लेखन को प्रोत्साहित ही करते है।

सन् १९७८ तक तो अति स्पष्ट आदेश रहा है कि कोई किसी के बिना पूछे दाता के विषय में लिखना तो दूर किसी प्रकार की चर्चा भी न करे। ऐसे स्पष्ट आदेश के बावजूद भी कुछ सत्संगियों ने कुछ घटनाओं और प्रवचनों के नोट लिखने का छिपकर प्रयास किया तो उनका हश्र वही हुआ कि या तो वह डायरी ही गुम हो गई अथवा किसी ने उसे फाड़कर नष्ट कर दिया।

इस सदर्भ में दाता फरमाते है, मेरे राम ने प्रारंभिक काल में दाता की लीला और अनुभूत होनेवाले रहस्यानन्द का वर्णन एक कॉपी में कुछ दिनो तक लिखा। एक दिन उन समस्त अनुभूतियों को जब एक साथ पढा तो मन में विचार जागा कि यदि यह कॉपी कभी किसी दिन किसी के हाथ पड गई और उसने इसे पढ लिया तो पढने वाला व्यक्ति इस अदभुत अलौकिक आनन्द को पचा नहीं सकेगा। भावातिरेक में या तो तुरन्त शरीर छोड देगा अथवा विक्षिप्तावस्था को प्राप्त हो जाएगा। अत तत्क्षण ही जो कुछ लिखा था उसे फाड़कर फेंक दिया।

ऐसी स्थिति में खेद है कि लीलामृत में विभिन्न घटनाओं और तिथियों का क्रमवार वर्णन नहीं हो सका है। जो कुछ लिखा जा रहा है उसका आधार प्रत्यक्ष-दर्शियों की स्मृति ही साक्षी है। दाता आज भी लेखन को प्रचार की संज्ञा देते हुए इसके प्रति उपेक्षा एव उदासीन रूख अपनाते रहे हैं। उनसे कोई रहस्य उगलवा लेना तो अत्यन्त कठिन कार्य है। अलबत्ता प्रसन्न मुद्रा में स्वेच्छापूर्वक ही यदा-कदा अपना कुछ रहस्य व लीला प्रकट कर देते है। यही सुदृढ सम्बल लेकर लेखक आगे बढ रहा है।

किसी प्रकार के प्रकाशन के पूर्व किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा प्रस्तावना भूमिका लिखवाने की एक परिपाटी रही है। इस अवलम्बन से उस पुस्तक के प्रसार-प्रचार-प्रसिद्धि में सहायता मिलती है। लेखक ने यहा इस लीक से हटकर चलना चाहा है। सूर्य स्वय प्रकाशित होता है उसे दीपक के उजाले में ढूढने का प्रयास निरी मूर्खता ही है।

इस स्वर्णिम श्रृंखला की सौदर्यमयी भावी लडी-लीलामृत भाग 3 भी शीघ्र ही उनकी कृपा से पूरी होकर प्रकाश में आयेगी। इसी प्रार्थना-कामना के साथ आपका हार्दिक अभिनन्दन!

स्वर्गीय श्री चाँदमल जी जोशी ने इस प्रसून के प्रकाशन में अभूत पूर्व योग दिया दाता उनकी आत्मा को पूर्ण शान्ति प्रदान करें। मेरे अन्य प्रिय सहयोगियों के प्रति कृतज्ञतापूर्ण शुभेच्छा है कि वे 'सत्यम-शिवम-सुन्दरम्' के अलमस्त आलम में आकठ मग्न हो जायें।

'जय शकर-जय दाता' के उद्घोष के साथ हर्षपूर्वक।

दाता निवास
गुरु पूर्णिमा, वि. स २०४२

एक अकिंचन रज कण

प्रार्थना

तुम ही एकनाथ हमारे हो

पितु मातु सहायक स्वामी सखा, तुम ही एकनाथ हमारे हो ।
जिनके कछु और आधार नहो, तिनके तुम ही रखवारे हो ।
प्रतिपाल करो सगरे जग का, अतिशय करूणा उरधारे हो ।।१।।
भूलि है हम ही तुमको, तुम तो हमरी सुधि नाहिं बिसारे हो ।
शुभ-शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे, मनमदिर के उजियारे हो ।।२।।
उपकारन को कछु अत नहीं, छिन ही छिन जो बिस्तारे हो ।
महाराज महा महिमा तुम्हरी, समुझे बिरले बुधियारे हो ।।३।।
सब जीवन के तुम जीवन हो, इन प्राणन के तुम प्यारे हो ।
तुम सो प्रभु पाय 'प्रताप' हरि, केहि के अब और सहारे हो ।।४।।

प्रताप मिश्र

वन्दनाष्टकम्

मया लब्धं वस्त्रं, विमलमपि तावत् कलुषितम्,
कृता नेच्छा कर्तु, तदिह भगवन् निर्मलमपि ।
कथं स्याद् योगस्ते, चरण-शरणं प्राप्तुममलम्,
यदि स्याः नो दातः, परहितपरश्चातिकरूणः ॥ १ ॥

अर्थ– हे मेरे नाथ ! आपने मुझे कायारूपी निर्मल वस्त्र दिया था, किन्तु मैंने उसे मलिन कर दिया ओर हे प्रभो ! मैंने उसे पुनः निर्मल करने की इच्छा भी कभी नहीं की। यदि आप परहित मे निरत और करूणा परायण नही होते तो हे मेरे दाता दीनदयाल ! आपके निर्मल चरणो का आश्रय मुझे किस प्रकार प्राप्त हो सकता था ?

कथं त्वां दातारं, सकलजन-रक्षार्थनिरतम्,
स्तुमो मायाजालभ्रमनिविड़मोहान्धनयनाः ।
न यैर्योगं ज्ञानं, क्वचिदधिगतं वेदपठनम्,
यदि स्याः नो दातः, परहितपरश्चातिकरूणः ॥ २ ॥

अर्थ– भ्रम तथा माया जाल के घने मोहान्धकार से निमीलित नेत्रोवाला मै किस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा मे निरत रहने वाले श्री दाता आपकी स्तुति कर सकता ? जिसे योग, ज्ञान तथा वेदादि के पठन का भी अवसर नही मिला पुनः किस प्रकार आपकी कृपा का पात्र बनता ?

अमर्यादो धूर्तो, विषयसुखलीनो भवपरः,
अमानी पापात्मा, कलुषितरुचिः पंकपतितः ।
कथं त्वां त्रातारं, मतिविरहितो लब्धुमशकम्,
यदि स्याः नो दातः, परहितपरोदुःखहरणः ॥ ३ ॥

अर्थ– हे मेरे प्रभो ! मै सर्वथा मर्यादारहित, धूर्त, विषयासक्त तथा संसार मे निमग्न हूँ। मै मान रहित पापात्मा और कुरूचियुक्त तथा विषयो के कीचड़ मे निमग्न हूँ। हे मेरे नाथ ! बुद्धि रहित मै किस प्रकार आपका चरण-शरण प्राप्त कर सकता था यदि आप ऐसे करूणा परायण,परपीड़ा निवारक नही होते ?

श्रुतौ सच्छास्त्रादौ, सकल-शुभ-कर्मस्वकुशल ,
तथा किं पुण्य वा, कलुषमिति वा बुद्धिरहित ।
कथ कर्तुं शक्तोऽहितहितविवेक चलमना ,
यदि त्वया नो दात परहितपरोदु खहरण ।। ४।।

अथ– हे प्रभो ! मैं वेद सच्छास्त्र तथा सम्पूर्ण शुभकर्मों में निपुण नहीं हूँ। क्या पुण्य है और क्या पाप है यह समझना भी मेरे जैसे बुद्धिहीन व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं। चचल मन वाला मैं किस प्रकार हिताहित का निणय कर सकता यदि आप परहित परायण और परद ख हरण नहीं होते ?

कदाचारे स्वामिन्, ममरुचिरभूत दुष्टमनसो,
यशो वित्त दारा , त्रितयमपि मे मान्यमभवत् ।
भवाब्धौ मग्न मामवतु कथमेवविधमपि,
यदि त्वया नो दात परहितरतोदु खहरण ।। ५ ।।

अर्थ– हे मेरे स्वामी ! मुझ जैसे दुष्ट मन वाले व्यक्ति की सदा कुत्सित आचरण में ही रुचि बनी रहती है। कचन कामिनी और कीर्ति में भी मेरी अनुरक्ति सदैव बनी रहती है। ससार सागर में आकण्ठ निमग्न मेरी कौन कैसे रक्षा कर पाता यदि आप परहित परायण और परदु खहर्ता नहीं होते ?

मया लोके स्वामिन् किमपि खलु पुण्य न विहितम्,
न वा त्रात कश्चित क्वचिदपि जनोदु खपतित ।
कथ त्राता कश्चित, भवतु मम हिंसात्मकरुचे ,
यदि त्वया नो दात परहितपरोदु खहरण ।। ६ ।।

अर्थ– हे प्रभो ! मैंने ससार में कोई पुण्य कम नहीं किया। दु खों में पडे किसी व्यक्ति की मैंने रक्षा नहीं की। हे मेरे दयालु प्रभु। हिंसात्मक रुचि वाले मेरे जैसे व्यक्ति की कौन रक्षा कर पाता यदि आप परम कारुणिक नहीं होते ?

परान दु खे द्रष्टु, सततमिह मे मानसरुचि ,
कदापि स्मर्तुं त्वा, न खलु मनसोऽभूदभिरुचि ।
कथ मे विश्वात्मन् तवचरणसगोऽस्त्वतितराम
यदि त्वया नो दात , परहितपरश्चातिकरुण ।। ७ ।।

अथ– हे प्रभो ! दूसरे व्यक्तियो को दु खी देखना मुझे अच्छा लगता है तथा आपका स्मरण करने की बात मेरे मन में कभी नहीं आयी इस अवस्था में मैं

आपके चरणो की संगति कैसे प्राप्त कर पाता यदि आप परहित निरत और करुणा परायण नही होते ?

निवेद्यते ते चरणेषु साम्प्रतम्
भवार्ति-सन्तापितमानसो जनः ।
सदा स्थितस्ते चरणारविन्दयोः,
कृपाकटाक्षैरनुकम्प्य रक्षताम् ।। ८ ।।

अर्थ– हे प्रभो ! अब आप के चरणकमलो मे निवेदन है कि संसार के दुःखो से सन्तप्त मनवाले तथा आपके चरणो में पडे रहने वाले व्यक्तियो पर आप सदा कृपा बनाये रखे ।



श्री गिरधर लीलामृत

भाग - २



जयपुर-प्रवास-प्रसग

श्री दाता का जीवन अत्यन्त सरल और सात्विक है। अहकार तो उन्हें लेश मात्र भी छू नहीं सका है। मान-प्रतिष्ठा से वे सदा कोसों दूर है। उनकी आवश्यकताएँ न्यूनतम हैं। जब कभी दाता का नान्दशा से बाहर पधारना होता है तो उनकी आवश्यक वस्तुओ में मात्र एक छोटा 'मिल्ट्री टाइप' खाकी थैला जिसमें एक धोती, एक रुमाली, एक पीतल का बडा लोटा एक चश्मा एक टार्च, एक जोडी करताल, बासुरी, चाकू काटा निकालने का चिप्या (चीमटी) मृगछाला और सर्दी के दिन हुए तो काली कम्बल बस यही कुल सामान। जिस समय का यह वर्णन है उन दिनों दाता नगे पाव रहते थे सिर पर जटा रखते थे और जटा के भूरे काले लहराते बालो के मध्य भाग में खौंसा हुआ लकडी का एक छोटा सा चन्द्राकार कघा रहता था। दाता का जीवन स्वावलम्बी रहा है। आज भी वे अपना काम स्वय करते हैं। दातुन के लिए नीम या बबूल की टहनी को स्वय ही चाकू से छील कर तैयार करते हैं। जिस पत्तल में भोजन करते हैं उसे स्वय ही उठा कर एव धोकर दूर फैंक देते हैं। दाता न तो साधारणतया किसी को छूते ही हैं और न किसी को अपना शरीर ही छूने देते है, पांव छूने देने की बात तो दूर रही। कहीं जाना हो, अपने ही प्रेमी बन्दों में से किसी एक अनुचर सेवक को जो भी समय पर मौजूद हो, साथ ले लेते हैं। सादा जीवन और उच्च विचार के दाता' मूर्तिमान स्वरूप हैं। आडम्बर और शान-शौकत उन्हें तनिक भी पसन्द नहीं है।

इसके अतिरिक्त दाता का एक विशिष्ट स्वभाव है कि जब कभी वे बाहर पधारते हैं अपने ग्रामीण भक्तों में से किन्हीं एक दो को सदा साथ ले लेते हैं। हर हालत में उनके नाश्ते, भोजन, शयन आदि की व्यवस्था के प्रति स्वय जागरूक रहते हैं। उन्हें खूब छक कर खिलाना घुमाना-फिराना, नागरिक सुख-सुविधाओ की जानकारी कराना और आमोद-प्रमोद-मनोरजन हेतु किसी के साथ सिनेमा दिखाने तक का ध्यान वे स्वय रखते है।

भक्त जनों की विशेष प्रार्थना पर दाता जयपुर भी पधारते रहे हैं। सन् १९५० से १९५२ तक अनेक बार जयपुर पधारना हुआ। सेवा में श्री शिवसिह जी साथ रहे। उन दिनों दाता की अलौकिक क्षमता-ख्याति से प्रभावित होकर जयपुर के अनेक उच्च कुलीन सामन्त, श्रेष्ठिवर्ग, उच्चाधिकारी सामान्य जिज्ञासु एव आर्त्तजन दर्शनार्थ, सत्सग एव मनोकामना पूर्ति हेतु उमड पडते। दाता कभी व्यास जी के, कभी शिवबिहारी जी के, कभी डाक्टर जगन्नाथ जी के कभी

कालवाड़ हाऊस तो कभी मोरीजा हाऊस और कभी शुक्ला साहब के यहाँ ठहरते। इसी प्रकार हरि हर (भोजन) भी कभी किसी के यहाँ तो कभी किसी के यहाँ, जहाँ भी इच्छा होती करलेते।

जयपुर की सदा से विशेषता रही है कि जब भी दाता वहाँ पधारते हैं, वहाँ के प्रेमी भक्त जन दाता के समक्ष तुरन्त उपस्थित होकर आ बैठते है। डिगने अथवा हिलने का नाम भी नही लेते है। वे व्यवसाय, सुख-सुविधा, भोजन आदि की चिन्ता छोड लट्टू बन जाते है। देर अर्ध रात्रि के बाद दाता के शयन कर लेने के पश्चात् अपने अपने घरो को जाना और प्रातः दाता के जगने से पूर्व ही सेवा मे वापिस उपस्थित हो जाना उनका स्वभाव सा है। नींद, भूख, प्यास सब कुछ भुला देना उन्ही लोगो के वश की बात है। यद्यपि इस सबका हेतु दाता के व्यक्तित्व का सम्मोहन तो है ही, किन्तु जयपुर नगर निवासियो का धर्म के प्रति ऐसा लगाव, सत्संग के प्रति ऐसा रुझान और संत-सेवा के प्रति ऐसा आग्रह, अपने आप मे एक नायाब, निराली मिसाल है। शायद इसी कारण वहाँ चाँद पोलियो (मोहल्ला) की ज्यादा भरमार, जमाव और पड़ाव होता रहा हो; परन्तु फिर भी कहना पडेगा कि वे 'यार की यारी' से ही मतलब रखते है —

जयपुर की एक खासियत और भी है। जब कभी कोई प्रसिद्ध संत-महात्मा, साधु-सन्यासी वहाँ आता है तो हर तबके के नगरवासियो की बडी भीड दर्शन कौतूहल एवं मनोरंजन हेतु भी एकत्रित होती रहती है, जिसमे मुमुक्षुजन भी रहते है तो तमाश बीन भी। इस प्रकार नवागन्तुक की हर प्रकार से ठोक-बजाकर परीक्षा कर लेने मे भी जयपुर वासी एक ओर चतुर है तो दूसरी ओर श्रेष्ठ महापुरुष के प्रति उचित आदर्श व्यवहार करने मे भी उनका सानी नही है।

इस प्रकार दाता के वहां पधारने पर व्यास कृष्णगोपाल जी, पं. श्याम-सुन्दरजी, शिवविहारीजी, रेवतीरमणजी, शुक्ला साहब, डाक्टर जगन्नाथजी और समुद्रसिंहजी आदि प्रौढ़ भक्त जन तथा हरीश्चन्द्रजी, जगदीशचन्द्रजी, कल्याणप्रसादजी, कुंजविहारीजी, मदनमोहनजी, प्रभुनारायणजी, हरिमोहनजी, ललितकृष्णजी, ब्रजविहारीजी प्रभृति युवाजन सदा सेवा मे उत्सुक रहते। जन समुदाय के दल के दल उमड़ पड़ते। आर्तजन और दीनदुःखी जो भी पुकार करते, उनकी मनोकामना तत्क्षण अथवा शीघ्र ही पूरी होती। सत्संग और प्रवचन का तो यह आलम रहता कि प्रति दिन अठारह-बीस घण्टे यह कार्यक्रम चलता। केवल बीच में कुछेक घण्टे भोजन, विश्राम अथवा अन्य दैनिक क्रियाओ हेतु बामुश्किल मिलते। जहाँ एक ओर दाता का विभिन्न विषयो पर धारा-प्रवाह प्रवचन चलता वहाँ प्रश्नोत्तर भी होते रहते और ऐसी गति रहती कि जिज्ञासु एवं मुमुक्षुजनो की शंकायें और प्रश्न तो बिना पूछे ही स्वतः इस खूबी से हल हो जाते कि उन्हे मार्ग-दर्शन ही नही मिलता अपितु दिव्यानन्द की विभिन्न हृदयस्पर्शी अनुभूतियाँ उन्हे आत्म मग्न भी बना देती। सत्यान्वेषी विद्वद्जन जहां धन्य-धन्य कह उठते

वहाँ वितन्डावादी कुतर्कियों के पैंतरे भी परास्त हो जाते। उन दिनों 'दाता' का 'दिवाकरी' व्यक्तित्व मध्यान्ह काल के महेश्वर रूपी भास्कर की भाँति प्रखर और तेजस्वी था। यथा —

"उदयेब्रह्मरूपस्तु, मध्यान्हे तु महेश्वर ।
अस्तमाने स्वय विष्णुस्त्रिमूर्त्तिस्तु दिवाकर ॥"

और प्रात मध्यान्ह व सायकाल के इन तीनों काल खण्डो में 'दाता' के इस दत्तात्रेय स्वरूप के बालक, युवा एव वृद्ध रूप के दर्शनों से अनेकों व्यक्ति समय समय पर उपकृत हुए हैं। शास्त्र और सद्गुरु की यह विलक्षण समता कितनी आनन्दवर्धिनी है।

युवा काल के 'दाता' के इस औघडदानी कल्याणकारी शिव स्वरूप के समक्ष उपस्थित होकर जिसने जैसी भी याचना, कामना और प्रार्थना की उसकी समस्त मनोकामनायें पूरी हुई।

'करम हीन कलपत रहे कल्पवृक्ष की छाँह'– इस कथनानुसार शायद ही कोई ऐसा कर्म हीन शेष रहा हो।

बगाली बाबा से भेट —

जयपुर में दाता का कार्यक्रम रहता और एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता था। प्राय प्रति रात्रि चार बजे तक सत्सग होता व उसके पश्चात् ही विश्राम होता। नित्य यही कार्यक्रम रहता। उन दिनों पुरानी बस्ती में एक वृद्ध सत बगाली बाबा के नाम से रहते थे। वे शक्ति के उपासक थे और व्यासजी उनके प्रति गुरुवत् श्रद्धा रखते थे। व्यास जी के आग्रह पर दाता उनसे मिलने पधारे। जहा वे रहते थे वह स्थान जीर्ण-शीर्ण अवस्था में एक टूटा फूटा मकान था जिसमें नाम मात्र की भी सुविधायें नही थी। सत-जन कैसी विपन्नावस्था में साधनारत रहते है यह उसका प्रमाण था। व्यास जी के आवाज देने पर बाबाजी नीचे आये और उन्होंने दाता का भाव विभोर होकर स्वागत किया।

मकान के बाहर, साफ सुथरे आँगन में चटाई बिछाई गई। उन्होंने उस पर बैठने का दाता से आग्रह किया। दाता ने यह कहते हुए कि भूमि से अधिक पवित्र और श्रेष्ठ आसन अन्य नहीं होता, जमीन पर बैठ गये पर बाबा के गदगद् कठ से बार-बार आग्रह करने पर अपनी मृगछाल पर आसीन हुए। बाबा ने बगाली मिश्रित हिन्दी में दाता के समक्ष अपने साधना पक्ष का सार प्रस्तुत किया। उन्होंने यह निवेदन करते हुए आभार दर्शाया कि आप महाशक्ति के साक्षात चैतन्य स्वरूप हैं जो समूचे ब्रह्माण्ड को आवृत किये हुए हैं। दाता ने भी उनके बडप्पन का बखान करते हुए कहा कि प्रथम महत्व तो माता का है जो पुत्र को पिता-दाता का सकेत करती है। मूल वस्तु तो एक ही है, उसे चाहे जिस नाम से पुकारो।

उसे माता कहो चाहे दाता-दोनो अभेद हे । कोई शक्ति का आश्रय ग्रहण करता है तो कोई शिव का, जव कि हम जैसा अनाड़ी तो कुछ भी साधन-भजन, पूजन नही जानता, सिवाय इसके :--

"तुम हमारे सामने, हम तुम्हारे सामने,
तेरी चर्चा हम करेंगे हर वशर के सामने।
कृष्ण कृष्ण मैं पुकारूँ तेरे दर के सामने,
दिल तो मेरा हर लिया गोविन्द माधव श्यामने ॥"

और इसके साथ ही उपस्थित जन समुदाय प्रेमानन्द मे निमग्न होगया। लगभग वीस मिनिट के मर्मस्पर्शी सत्संग के पश्चात 'दाता' वहाँ से रवाना हुए। विदाई के आलम मे वावा के नेत्रो मे जुदाई के अश्रु वरवस ही झलक पडे। वावाने सिर टेक कर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया और दाता ने भी अपनी अभय दान मुद्रा द्वारा उन्हे पूर्णतया आश्वस्त कर दिया।

गुरु गोलवलकर जी से मिलन :--

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंचालक श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर जी एक मनीषी, प्रवुद्ध-चिन्तक, विचारक, कर्मठ-कर्मयोगी एवं भारतीय संस्कृति के आधुनिक निर्भीक वक्ता रहे है। उन दिनो जयपुर मे ओ. टी. सी. कैम्प मे भाग लेने आये हुए थे। कुछ सत्संगी युवक संघ के कार्यकर्ता थे। दाता उस दिन पं. श्यामसुन्दरजी के यहाँ विराज रहे थे। प्रवचन सत्संग कार्यक्रम समाप्त हो चुका था और वातावरण पूर्णतया अनोपचारिक था। उपस्थित मंडली के प्रौढ़ एवं युवा वर्ग मे संघ के कार्यकर्त्ताओ को लेकर एक मनोरंजनात्मक वहस छिड़ गई। दाता प्रसन्नचित्त मुस्कराते हुए पक्ष-विपक्ष के तर्को को सुनते रहे। अन्त में जव यह विवाद उग्र होने लगा तो दाता ने सहज भाव से मध्यस्थता करते हुए संत कवीर का यह उद्धरण देते हुए सव को शान्त किया :--

"साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि लहे, थोथा देय उड़ाय ॥

तत् पश्चात् कहने लगे, "आप लोग व्यर्थ ही थोथी वातो मे क्यो उलझ रहे हो? संसार मे ऐसी कोई वस्तु या मनुष्य नही है जिसमे गुण और दोष का मिश्रण न हो। हमे तो उसके दोषो को भुलाकर, हँसवत् सार रूप में गुणो को ही ग्रहण करना सीखना चाहिए। गोस्वामी जी ने भी यही अभिमत प्रकट किया है :--

"जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हँस गुन गहहिंपय, परिहरि वारि विकार ॥"

फिर 'गुरुजी' के राष्ट्र-प्रेम, मानवीय मूल्य और सांस्कृतिक पक्ष के गुणो की सराहना करते हुए कहा, "यदि उनमे मेरे दाता का ऐसा प्रखर तेज व्यापक

न होता तो क्या आज के इस भौतिकवादी युग में किशोर एवं युवावर्ग मदमस्त मधुप वृन्द की भांति उनके उदात्त व्यक्तित्व के आकर्षण से इस प्रकार सम्मोहित होता। मेरा दाता तो अजब खिलाडी है। वह अनेक रुप-रुपाय धारण करके क्या क्या खेल नहीं रचता-रचाता ? उसकी लीला वही जानता है।

"घणा बनाया रूप एकज वोह बहुरूपियो।
रूचे भाव अनुरूप कोई किणने कानिया।।"

दाता के इस कथन से प्रोत्साहित होकर एक युवक श्री जगदीश ने प्रस्तावित किया कि यदि दाता राजी हो तो 'गुरुजी' से भेंट की व्यवस्था की जा सकती है। इस पर दाताने यह शेर फरमाया —

"राजी हे हम उसीमें, जिसमें तेरी रजा है,
यो भी वाह वाह है और त्योभी वाह वाह हे।"

युवावग ने इस 'दाता' की अप्रत्यक्ष स्वीकृति समझ तदनुसार व्यवस्था की। मिलने का समयपरान्ह चार बजे का निश्चित हुआ।

यह घटना ई. सन १९५२ की शरद-ऋतु की है। निर्धारित समय के कुछ पूर्व ही दाता समुद्रसिंहजी शेखावत शिवसिंहजी चाँदमलजी जोशी व कुछ अन्य युवकों के साथ शहर के बाहर लगे शिविर में पहुचे। 'गुरुजी को सूचना दी गई। सूचना मिलते ही उन्होने दाता' के लिये एक कुर्सी उनके तम्बू के बाहर खुले मैदान में भेजी। दाता व अन्य लोग खडे ही रहे। गुरजी तम्बू से निकलकर बाहर आयें। ये बडे प्रेम से दाता से मिले। कुर्सी एक ही होने से दोनो में से कोई भी उस पर नहीं बैठा। सवप्रथम दाता ने ही सम्बोधन किया जिसका मूल रूप इस प्रकार है — 'मेरे दाता के सुरम्य बाग में भांति भांति के सुन्दर सुवासित सुमन खिल रहे है। उनकी शोभा-सुषमा-छटा निराली है। ऐसा सुना है कि उन दिव्य पुष्पो में से एक अतिरमणीय पुष्प जिसकी सौरभ से आज का किशोर-युवा वर्ग मदमस्त हो गया है यहां आया है। हम भी दर्शनार्थ चले आये। अन्यथा और कोई हैतु-प्रयोजन नहीं है।"

दाता द्वारा इस प्रकार साहित्यिक शैली में प्रकट किये अनूठे उदगारो से प्रभावित होकर गुरुजी मुस्करा दिये। वे यही कह पाये आपका हार्दिक स्वागत है।

इसके पश्चात उन्होंने दाता का परिचय पूछा। इस पर दाता मौन साधते हुए स्वभावानुसार मुस्करा दिये। यहा पर उल्लेख करना आवश्यक है कि जब जब भी किसी ने दाता से प्रत्यक्षतः परिचय पूछा है तब तब दाता ने इसी प्रकार मौन धारण किया है, वे अपना नाम धाम और काम क्या बतायें ? क्यो कि —

"अविगत गति जानी नाहिं पर"

और तब रहस्य रहस्य ही बना रह जाता है।

ऐसी स्थिति होने पर साथ रहने वालों में से कोई तुरन्त ही 'दाता' का इहलौकिक परिचय प्रस्तुत कर दिया करता है। तदनुकूल श्री समुद्रसिंह जी शेखावत ने सूक्ष्म परिचय बताया, "दाता नाम से प्रख्यात महान् संत महापुरुष हैं। राजस्थान मे मेवाड़ प्रान्त के निवासी है। आज कल जयपुर पधारे हुए है।"

इस पर 'गुरुजी' बोले "हाँ हाँ। माँ मीरा का मेवाड़। हम उदयपुर होकर ही आये है। फिर उन्होंने दाता का आगे का कार्यक्रम जानना चाहा।

दाता ने हँसते हुए कहा, "आप लोग स्वतंत्र हैं। अपना कार्यक्रम स्वयं बनाते और चलाते है। 'मेरा राम' तो 'दाता' के अधीन है अपने मन की वहाँ कुछ चलती नही। हम भी मन की कुछ रखते नही। उसकी मौज मे ही अलमस्त रहते हैं। उसी मे आनन्द मानते है। "जाहि विधि राखे राम ताहि विधि' रहते है।" इन थोडे से शब्दो मे ही 'दाता' ने जीवन का बहुत कुछ रहस्य संकेत रूप मे प्रकट कर दिया। थोड़ी देर दोनो ही मौन रहे। मौन की भी एक भाषा है जिसे सरल अन्तःकरणवाले ही समझते है। मौन समाप्ति पर एक दूसरे को निहारते हुए दोनो ही हँसने लगे। उपस्थित मण्डली फिर साथ देने से क्यों वंचित रहती? वे सब भी हँस पडे। इससे अधिक और कोई हेतु तो था ही नही। अतः दोनो महापुरुषो ने इस मिलन पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए एक दूसरे से विदा ली। यह मिलाप अपने आप में महत्वपूर्ण, स्मरणीय एवं सम्मान जनक घटना है। सुनते है कि आध्यात्मिक साधन मार्ग की दृष्टि से 'गुरुजी' श्री रामकृष्ण परमहंस देव की शिष्य परम्परा में से रहे है।

'दाता' का नाम ही महामंत्र है :—

यह मानव मन का स्वभाव है कि वह किसी की प्रसिद्धि, यश, कीर्ति आदि को पचा नही पाता और अकारण ही द्वेष पालकर उसे नीचा दिखाने को व्यग्र हो जाता है। ऐसी ही एक घटना इस प्रवास काल मे घटित हुई।

जब जयपुर में 'दाता' की ख्याति चारो ओर फैल गई तो सम्मान के भूखे एक साधु को यह बात नही सुहाई। उसके मानस में द्वेष की भावना का उदय हुआ। उसे यह बात अटपटी लगी कि एक गृहस्थी सन्त की इतनी प्रतिष्ठा क्यो हो रही है? वह साधु तन्त्र विद्या का ज्ञाता था। कहते है कि उसे कुछ सिद्धियाँ भी प्राप्त थी। सामान्य जन उससे भयभीत रहते थे। उसने जब यह सुना कि दाता के व्यक्तित्व के सन्मुख प्रकाण्ड विद्वान् और संतजन भी नतमस्तक हो रहे हैं तो उसके कलेजे पर साँप लौट गया। वह येन-केन-प्रकारेण दाता को नीचा दिखाने और उनकी गौरवगरिमा को धूलि-धूसरित करने हेतु तड़फने लगा। उसकी नींद हराम होगई। वह व्यग्रतापूर्वक अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन शाम को जब उसे सूचना प्राप्त हुई कि दाता प शिवविहारी जी निवाडी के नाहरगढ के रास्तेवाले मकान पर विराज रहे है तो वह सदल-बल वहा जा पहुँचा। दाता का प्रवचन चल रहा था। लगभग पचास श्रोता उपस्थित थे। वातावरण पूर्णतया शान्त और सत्सग के अनुकूल था। वह सभी के पीछे चुपचाप बैठकर तन्त्र-मत्र विद्या का प्रयोग दाता के विरुद्ध करने लगा। जिन्होने उसे ऐसा करते देखा उन्हे कुछ सशय अवश्य हुआ किन्तु साधु जान कर उन्होने विशेष ध्यान नहीं दिया। दाता की निगाह भी उस पर पडी। उन्हें कुछ अटपटा अवश्य लगा किन्तु वे मुस्करा दिए और बोले कुछ नहीं। वे प्रवचन रोक कर कुछ समय के लिए ध्यानस्थ होगये। उधर उस तान्त्रिक ने देखा कि उसकी क्रिया का प्रभाव होने लगा है, अत वह दुगुने उत्साह के साथ प्रयोग करने लगा। दाता की तीखी नजर से उसकी कुमत्रणा छिपी न रह सकी। उसमें कुबुद्धि का सचार हुआ है, यह जानते हुए भी उन्होने उस पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और अपना प्रवचन एक घण्टे तक जारी रखा। इसके बाद कुछ सोच कर दाता वहाँ से हंसते हुए उठे और बिना किसी से कुछ कहे कमरे में जाकर लेट गये।

दाता के कमरे मे जाते ही उस तान्त्रिक ने देखा कि उसकी क्रिया का असर होगया है, अत वह बडा प्रसन्न हुआ। उसने उपस्थित जन समुदाय को सम्बोधित करते हुए यो कहा, "मैंने महात्माजी की जाच के उद्देश्य से तन्त्र शक्ति का उन पर प्रयोग किया है। इस समय वे मेरी शक्ति के प्रभाव से त्रस्त व प्रस्त है। अब वे बारह घण्टे तक उठ नहीं सकेंगे। आप लोग अब उनकी प्रतीक्षा न करें और सब अपने अपने घर जावें। आप लोगो को इनके धोखे और माया जाल में से निकालने के लिए ही मेरा यहां आगमन हुआ है। आपको असली साधु की पहचान करके ही उसकी सगत करनी चाहिए। मैंने आपके सामने इस पाखण्डी की पोल खोल दी है और यह प्रात काल के पूर्व ही जयपुर से भाग जावेगा।

इस कथन से सब आश्चय चकित हो गये। कुछ को उसकी बातो पर विश्वास हुआ और कुछ को लेश मात्र भी नहीं। कुछ क्रोधपूर्वक उससे निपटने हेतु बाहें चढाने लगे। इतने में ही दाता कमरे से निकलकर बाहर आये आसन पर विराजे और कहने लगे, "दुनिया बडी दुरगी है। उसके व्यवहार का अजीब बेतुका ढग है। किसी को किसी की बढती फूटी आख भी रास नहीं आती है। परमार्थ का तो ध्यान ही किस है? सब स्वार्थ में ही अन्धे हो रहे है। कुछ व्यक्ति साधु बन कर भी 'हाथ सुमरनी बगल कतरनी' का व्यवहार करने से बाज नही आते। ऐसे लोग अकारण ही स्वार्थ-द्वेष के वशीभूत होकर केवल मात्र निज की अह पूर्ति और सम्मान की इच्छा से अन्य निर्दोष व्यक्तियो की हानि करने को उद्यत रहते हैं। जीवन के सारभूत तत्व को त्याग कर ऐसे छद्मवेषी समाज का और स्वय का अहित भी करते हे। यह कैसी विचित्र विडम्बना है?

जब उस तांत्रिक ने इस प्रकार उसकी तंत्र क्रिया और सिद्धि को निष्फल-प्रभावहीन होते देखा तो वह डर गया कि उसकी दाल यहाँ नही गलेगी। भेद खुल चुका है, अतः मौका पाकर वह चुपचाप खिसक गया।

सत्संग कार्यक्रम यथापूर्व चलता रहा। दाता ने कहा, "भेष को नमस्कार तो अवश्य करना चाहिए किन्तु केवल वाह्याडम्बर से ही किसी के प्रति समर्पित नहीं होना चाहिए वल्कि उसके गुणो व लक्षणो का तात्विक चिन्तन और विश्लेषण करने के पश्चात् ही विश्वास दृढ़ करना चाहिए।" परमहंस श्री रामकृष्ण देव ने कहा है, "साधु को रात मे देखो, दिन मे देखो, और उसकी हर तरह से परीक्षा करने के पश्चात् ही गुरु मानो।"

अतः साधक को निन्दा करने से तो वचना चाहिए परन्तु अपना प्रत्येक कदम वहुत फूंक-फूंक कर सोच समझकर उठाना चाहिए, जिससे भविष्य मे पछताना न पड़े।

जाने को तो वह तांत्रिक चला गया किन्तु उसके हृदय-मन-मस्तिष्क मे एक भयंकर वेदना, तूफान और जलन चालू हो गई। वह पूर्णतया हताश, निराश और अशान्त हो गया। उसके विचारो मे भयंकर आंधी उठकर उसे उद्वेलित करने लगी। अन्त मे वह आत्मग्लानि और पश्चाताप की ज्वाला मे जलने लगा। उसके आँखो की नीद, मन का चैन तथा भूख-प्यास सव कुछ समाप्त होगई। अगले दिन तीसरे पहर मे वह दाता के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने रोते हुए अपराध की क्षमा मागी, अपनी करनी पर हार्दिक पश्चात्ताप प्रकट किया और दाता के सामर्थ्य की महत्ता स्वीकार की। दाता तो स्वभाव से ही दयालु है, उन्होने उसे तत्काल ही क्षमा कर दिया। तव जाकर उसे शान्ति मिली और वह स्वस्थ हुआ।

दाता ने उद्‌वोधन किया, "मेरे दाता का नाम ही महामंत्र है जो सव तंत्र, मंत्र और यंत्र से सर्वोपरि है। जो परीक्षा लेने आता है उसे स्वयं पहले परीक्षा देनी पड़ जाती है।" इसी सन्दर्भ मे दाता ने भक्त प्रवर नामदेवजी की यह कथा सुनाई :—

लगभग ७०० वर्ष पूर्व भगवान् विट्ठल के दक्षिण भारतीय प्रेमी भक्तो का समागम प्रसिद्ध भक्त गोराजी कुम्हार के यहां हुआ। इसमे सन्त ज्ञानेश्वरसिद्ध निवृत्तिनाथ, सोपान देव, मुक्तावाई, नरहरीजी सुनार, सांवताजी माली, नामदेवजी प्रभृति संत एकत्रित हुए। गोराजी आयु मे वडे थे अतः सभी उन्हें सम्मान देते थे। मुक्तावाई आयु मे छोटी थी, अतः उसने वाल सुलभ चापल्यवश वर्तन गढ़ने की थापी को उठाकर गोराजी से पूछा, "काका यह क्या है?" प्रत्युत्तर में गोराजी ने उसे समझाते हुए कहा कि इससे कच्चे, पक्के घडे की वनावट की पहचान होती है। तव नामदेव जी ने तत्क्षण पूछ लिया, "काका! देखो हमारे इन घड़ो मे किसका घड़ा कच्चा है।" नामदेव जी भगवान् विट्ठल के अनन्य प्रेमी

भक्त थे। उनका उनसे अर्श-पश था तथा वार्तालाप होता था। उनके द्वारा भगवान् को दूध पिलाने की कथा तो प्रसिद्ध है ही। इस कारण भक्त मण्डली उन्हें विशिष्ट सम्मान देती थी।

गोराजी ने तत्क्षण वह थापी उठाई और लगे सभी की पीठ और सिर को उससे ठोक ठोक कर थप-थपाने। इसी क्रम में सब को बारी आती गई। जिसकी भी बारी आती वह नतमस्तक होकर मौन धारे थापी की चोटें सहता किन्तु मुख से उफ तक नहीं करता। जब यह ठोक बजाने की प्रक्रिया चालू थी नामदेव जी के मन का अहंकार जागा। वे मन में सोचने लगे, "यह काका भी कम से ही नहीं मन से भी कुम्हार है और गवार है। ये इतना भी नहीं समझते कि इन संत जनो पर कहीं ऐसी तेज चोटें मारी जाती हैं?

सब के बाद नामदेव जी की बारी आयी तो काका ने उन पर भी कस-कस कर थापी का प्रहार करना प्रारम्भ किया। वे मन ही मन खूब झुझलाते रहे। किन्तु काका ने उनकी परीक्षा लेने में कोई कोर कसर नहीं छोडी।

जब सब की जॉच-परख समाप्त हुई तो मुक्ताबाई ने पुन सहज स्वभाव से पूछ ही तो लिया, "काका बताओ न, किसका क्या परिणाम रहा।" काका को विवश होकर परीक्षाफल घोषित करना ही पडा। उनकी संयत वाणी गूजी। उन्होने ससकेत घोषित किया "इतनों में इस नामदेव का घडा कच्चा है।

सबने अवाक् हो इस परिणाम को सुना। नामदेव जी के सिर पर तो मानो घडों पानी गिर गया हो। उनके तन पर ही नहीं मन पर भी भयकर आघात लगा। इस पीडा से उनके दर्प का सर्प फुफकारने लगा।

तभी मधुर भीनी आवाज सुनाई पडी। मुक्ताबाई ने पुन पूछा 'काका! बताओ न, यह घडा कब और कैसे पकेगा।

गोराजी ने उपचार की घोषणा की, 'नामदेव निगुरा है। जब विसोबा जी के समक्ष शिष्यवत उपस्थित होकर उनके पाद-पद्मो में मान-सम्मान अहकार और सर्वस्व समर्पित करेगा तब ही इसमें पकावट आयेगी, अन्यथा कभी नहीं आयेगी, चाहे नामदेव कुछ भी क्यो न करें? इसी प्रकार का उपदेश श्री गुरु गोरक्षनाथ जी का है —

"गुरु को जो गहिला निगुरा न रहिला।
गुरु बिन ज्ञान न पाईला रे भाईला॥"

निदान के इस विश्लेपण ने नामदेव जो के आहत अहं को मानो पुन घी की आहुति द्वारा भीषणता प्रदान की। उनका अहं मन ही मन बोलने लगा, "विसोबा! वह दीन-हीन वृद्ध! जिसकी संत मण्डली में मात्र सेवक के रूप में ही गिनती है, उसे अपना गुरु बनाऊँ? उसके पाद-पद्म? और पादपद्म का

विचार आते ही उन्होने घृणा से मुंह विचकाया-हुंह ! उनके समक्ष आत्मसमर्पण करूं ? नहीं, नही, कदापि नही । उन्हे गोराजी के गंवारपन पर क्रोध आया । आवेश में वे मण्डली से उठ कर चले गये । सीधे पहुंचे पंढरपुर मे आराध्य देव विठ्ठल के सामने । उन्होने रो-रोकर गिड़गिड़ाकर अपनी मनोव्यथा निवेदित की-आर्तवाणी में, "प्रभो ! आपकी मुझ पर इतनी करुणा कि आप प्रत्यक्ष प्रकट होकर मुझे प्यार करते है; पुचकारते हैं; गोद में बिठाकर सहलाते हे; साथ खेलते हे, और वोलते-चालते हैं, फिर भी सन्त मण्डली मे मेरा ऐसा घोर अपमान-तिरस्कार । तुम कहते थे, 'नामदेव ! तुमसा प्यारा मेरा अन्य भक्त कोई नही है ? क्या यह सव झूठ था ? क्यो प्रभु क्यो ? वताओ न । तुम चुप क्यो हो ? वोलो न प्रभु ! आपका यह भक्त इतना तड़फड़ा रहा हे फिर भी आप निद्रा नही त्यागते, मोन नही तोड़ते ?" और इस प्रकार वह वही सिर टकरा टकरा कर आत्मघात करने लगे ।

भगवान् विठ्ठल को प्रकट होकर उन्हे आश्वस्त करते हुए यो कहना पड़ा, "नामदेव ! जो कुछ मैने कहा था वह आज भी सच हे, तुम मुझे इतने ही प्रिय हो किन्तु जो कुछ ओर जितना कुछ मेरे अभिन्न गोराजी ने कहा हे, वह भी उतना ही सत्य हे । जो निर्णय और निदान उनके द्वारा घोषित हुआ है, उसके पालन करने से ही तुम्हारे अहं और मोह की ग्रन्थि कटेगी; इससे बच कर अन्यत्र कोई मार्ग नही । विना गुरु की शरणागति के अन्य कोई उपाय नही । प्रजापति ब्रह्मा और पशुपतिनाथ शकर भी । विना गुरु कृपा के आत्म-ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ ही रहे हैं । आत्म-ज्ञान प्राप्ति हेतु तुम्हें विसोवा जी के पास जाना ही चाहिए । इसे तुम मानो चाहे न मानों, यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर हे ।"

यह कहकर भगवान विठ्ठल अन्तर्ध्यान हो गये । नामदेव जी की लाख कोशिशो के वावजूद पुनः न तो प्रकट ही हुए और न आकाश वाणी ही हुई । अतः वेमन से ही सही, वे विसोवा जी से मिलने उनके गांव को चल पडे-दूर वहुत दूर । उनके गांव और घर पहुंचकर जव उन्होने पूछा तो ज्ञात हुआ कि वे यहीं कही वाहर गये हुए हे । नामदेव जी उन्हे ढूंढते ढूंढते एक शिवालय में पहुंचे । वहां जाकर क्या देखते हे कि विसोवाजी एक मैली-कुचैली फटी सी चद्दर ओढे सो रहे हे । उनके दोनो पांव शिवलिंग पर टिके हे । यह देखकर उनके मन में विसोवा जी की ना समझी ओर कुवुद्धि पर घृणा हुई तथा उनकी वुद्धि पर तरस आया । वे सोचने लगे कि गोराजी ओर भगवान विठ्ठल दोनो ही की वृद्धावस्था के कारण बुद्धि सठिया गई है जो उन्होने एक अज्ञानी व्यक्ति को गुरु वनाने का आदेश-निर्देश सम्मति दी है । जैसे ही उनके मन मे ऐसे कुविचार जागे तैसे ही विसोवा जी ने, जो नेत्र मूंदे पडे थे, उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया, "अरे ओ नाम्या । तू आगया ?" इसके पूर्व तो उन्हें वे नामदेव जी को 'भगवान् नामदेव' के नाम से सम्वोधित करते थे किन्तु आज यह कैसी विचित्रता ? वे सोचने लगे, क्या ये सन्निपात-ग्रस्त तो नही हे ? उनके अहंकार मिश्रित ऐसे कुविचार को मन ही

मन भापते हुए बिसोवा जी ने फिर कहा 'अरे ओ नाम्या ! मैं रोगग्रस्त, शक्तिहीन वृद्ध हूं। अत ध्यान नहीं रहा कि मुझे पाँव कहाँ रखना चाहिए ? तू ऐसा कर कि मेरे पांवो को शिव की पिंडी से हटा कर ऐसे स्थान पर रख दे जहाँ शिव की पिंडी न हो। नामदेव जी दप पूवक मुस्कराये। उन्होने सोचा, "हाँ, बुढढा अब ठीक कहता है। उन्होंने दोनों हाथों से दोनो पांवों को उठाकर शिवलिंग से दूर जमीन पर रख दिये। और तब, तब वे यह देखकर विस्मय विमूढ हो गये कि जिस जगह उन्होंने विसोबाजी के पाँव रखे थे, उस भूमि में से शिवलिंग ने प्रकट होकर विसोवा जी के श्रीचरणो को मस्तक पर पुन धारण कर लिया है। उन्होंने फिर पांवों को अन्यत्र रखा तो पुन वही घटना घटित हुई। यही क्रम तीन बार दोहराया गया। प्रत्येक बार इसी लीला दृश्य की आवृत्ति होती रही। वे आश्चर्यचकित होगये। अन्त में श्री गुरु-चरणारविन्दों को हाथों से उठाने के प्रभाव से नामदेव जी के हृदय कपाट खुल गये। उनका अहकार चूर चूर हो गया। उनके हृदय की अन्तर्ज्योति जो अब तक सुप्त पडी थी, चेतन होकर प्रज्ज्वलित हो गई और उसके स्व-प्रकाश में आत्म ज्ञान प्रकट हो गया। उनके मुख से स्वत ही बोल मुखरित हुए "शिव विट्ठल तुम्ही हो ! गुरुदेव ! पारब्रह्म परमेश्वर आप हो स्वय हो ! धन्य हैं आपके पाद-पद्मो का प्रताप कि जिन्हें शीश पर धारण करने हेतु स्वयभू स्वय आतुर हैं ! आपके श्री चरणरविन्दो की बलिहारी प्रभु ! आपकी लीला अपार है ! आपकी महर-सामथ्यशक्ति अपरम्पार है जो आपकी कृपा-करुणा से ही प्राप्त की जा सकती है। वास्तव में मैं अज्ञानी हू जो आपको पहचान नहीं सका। आप में सशय वृत्ति रखी आपके प्रति अविश्वास रखा। दुर्मतिवन्दे के समस्त अपराधों की क्षमा करो प्रभु ! श्री चरणारविन्दो की पतित पावनी शीतल सुखकारी छाया में अनन्य शरणागति प्रदान करो मेरे स्वामी ! मैं जैसा भी हूँ, तेरा हूँ।" यह कहते कहते वे विलख विलख कर रोने लगे। इसके साथ ही वे सर्वतो भावेन भूमिष्ठ होकर श्री गुरु चरणों में बारम्बार साष्टाग प्रणाम करने लगे। उस स्थिति में उन्हें निज स्वरुप की अनुभूति हुई। प्भुने अपनी विराट सत्ता प्रकट कर दी। उन्हें अनुभव हुआ कि नामदेव, विसोबा और विट्ठल अभिन्न-एकाकार है ! दाता-धाता-विधाता सब वे ही वे है। इसी आनन्दानुभूति में उन्होंने अनेक अभग पदो की रचना की जिसका मूल स्वर इस प्रकार है —

दाता का 'दा' कहत ही खुलते अलख कपाट।
'ता' से ताला टूट कर, मिलते योगी राट॥

गुरुदेव के पुकारने पर वे आश्वस्त होकर उठे। उनके श्री चरणो की धूलि मस्तक पर चढाई और ऐसा करते ही गुरु और शिष्य दोनो ही हंसते हुए पुन आत्मलीन हो गये। इस प्रकार थापी की चोट, श्री गुरुदेव की चरण धूलि तथा नाम के प्रताप से नामदेव समथ बन गये। उन्होने कहा है कि मुख में नाम धारण करते ही मोक्ष हस्तगत हो जाता है —

"मुखी नाम हाती मोक्ष सी बहुताची साक्ष।"

ऐसे ही सम सामायिक लीला दृश्य का अवलोकन करने की अनुभूति मे भक्त शिरोमणि गोस्वामी जी ने यह अभिव्यक्ति की है :—

गुरु विन भवनिधि तरइ न कोई।
जो विरंचि संकर सम होई॥

दाता के इस उद्वोधन से भक्त मण्डली एवं श्रोतागण कृत कृत्य हो गये। वे धन्य हुए। उन्होने एक स्वर मे दाता की जयजयकार की। दाता इस प्रकार जयपुर वालो को आनन्दरस का पान करा कुछ दिन वहाँ विराज का वापिस नान्दशा पधार गये।

O O O

शेखर निज कीनो

तुम दीनन के नाथ दयानिधी दाता नाम तिहारो।
करूणा कर करूणा के स्वामी चाकर जाण तिहारों।।

करुणा निधान दयानिधी दाता के करुणा-विगलित स्वभाव की असंख्य गौरव गाथायें हमारे धमशास्त्रों और पौराणिक ग्रन्थों में भरी पड़ी है। प्रल्हाद, ध्रुव शबरी गज, गीध गणिका, अजामिल, द्रौपदी सुदामा आदि की कथाओं की आवृति विभिन्न नामो परिस्थितियों और परिवेशो में इतनी बार हो चुकी है कि भक्तहृदय जनमानस उनसे प्रेरित होकर आस्था और विश्वास का सम्बल जुटाकर सत्यानन्द के मगलमय मार्ग की ओर अग्रसर होता चला जा रहा है।

इस कलियुग में जनमानस साधारणतया सच्चाई और सात्विकता से दूर रहता ही नजर आया है। इस युग में लाखो-सहस्तों सदाचारियो की बात छोडिये सैंकडों में भी कोई ही तप पूत, सच्चा और सात्विक नजर आता है। उन्नीसवी-शताब्दी के अन्त तक तो स्थिति फिर भी कुछ ठीक थी। बीसवी शताब्दी के लगते ही इस देश में विक्रम सवत १९५६ का कुख्यात छप्पनिया काल आया। उसके बाद मानवीय मूल्यों और गुणों का अध पतन इतनी द्रुत गति से हुआ है कि मानव ने दानव को भी मात दे दी है। अधिकाश व्यक्ति विषयवासनाओ में आकण्ठ लीन होकर पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के कुप्रभाव के कारण, अहकार और प्रमादवश, ईश्वर और इमान को ढोंग-ढकोसला और पाखण्ड समझने लगे है। ईश्वर और उसकी सत्ता का ज्ञान न होते हुए भी, उसका विरोध करना तथा भौतिक भोगवाद का डटकर समथन करना, आज एक फैशन बन गया है। सैंकडों में कोई विरला ही सच्चा और ईमानदार नजर आता है। उसकी भी बहुमत द्वारा नित्य अप शब्दो में मखौल उडाई जाती है। गोस्वामी जी के मतानुसार, ऐसे ही व्यक्ति, जो ईश्वर चिन्तन से विमुख होकर विषयानुरागी हो जाते है, वे वास्तव में अभागे है।

"सुन हु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होइ विषय अनुरागी।।"

और ऐसे ही एक हरि विमुख अभागे व्यक्ति की कहानी इस प्रकार है।

वह व्यक्ति बाल्य-काल में सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण सस्कारवान रहा। उसने विद्यार्थी काल में कुछ समय तक महावीर, हनुमान की उपासना की। परन्तु उपासना का कुछ त्वरित फल प्राप्त नहीं होने से, उसके अबोध बालहृदय में अनास्था और अविश्वास का अकुर जम गया जो कालान्तर

उच्च शिक्षा प्राप्ति काल मे सुदृढ़ होता गया। अन्त में युवावस्था की देहरी पर पहुँचते पहुँचते तो वह हरि विमुख होकर घोर नास्तिक, क्रोधी एवं हठी वन गया। उसे ईश्वर के नाम से ही घृणा हो गई। वह ईश्वरभक्त सन्त महात्माओ को रंगा सियार समझता और मठ-मन्दिरो और धार्मिक स्थलो को दुराचार एवं व्यभिचारके अड्डे; जिनका अस्तित्व उसकी दृष्टि में एक सामाजिक अभिशाप था। सगुणोपासना और परम्पराबाह्याचार का वह निंदक वन गया। वतौर एक अध्यापक के उसने गृहस्थ और समाज के जीवन मे प्रवेश किया। इस काल में अनैतिकता के प्रति उसे स्वाभाविक घृणा तथा असमानता, अस्पृशता जैसी सामाजिक विषमताओ के प्रति उसमे तीव्र रोष रहा। कर्म व व्यवहार मे वह सत्य और ईमान का सदा पक्षधर वना रहा, मात्र यही एक गुण उसमे अवशेष रहा। अध्यापन कार्य को पवित्र मानते हुए वह पूर्ण ईमानदारी व निष्ठापूर्वक कार्य करता रहा। उसकी यह मान्यता रही है कि जीविकोपार्जन वालको के माध्यम से हो रहा है, अतः उसके लिए तो वालक ही अन्नदाता भगवान् हे। उनके हृदयो मे ही वह ईश्वर का स्थाईवास समझता। यही उसका आस्था वाक्य था :—

' Heaven is not beyond the sky but it is in the heart of little children.'

वालको की हर प्रकार सेवा-सहायता करना ही वह धर्म समझता और जो कुछ वेतन मिलता उसी मे वह संतोष मानता। विद्यार्थियो से पारिश्रमिक ग्रहण करके 'ट्यूशन' करना उसकी निगाह में घोर पापकर्म रहा है।

जुलाई सन् १९४७ में वह व्यवित उदयपुर से स्थानान्तरित होकर रायपुर मिडिल स्कूल का प्रधानाध्यापक होकर आया। यह विद्यालय उदयपुर की तुलना मे एक साधारण विद्यालय था जहाँ उस समय केवल सत्तर विद्यार्थी थे। प्रधान अध्यापक का आवास स्थल भी छोटा था। ऐसी स्थिति में वहाँ उसका मन लगना कठिन था किन्तु उसने यह सोच कर मन को सान्त्वना दी कि यहाँ का कार्य करने का क्षेत्र विस्तृत है। अतः उसने विद्यालय के विकास कार्य को अभिरुचि पूर्वक महत्तादी विद्यार्थियो, अध्यापको तथा स्वयं के श्रमदान से उसने विद्यालय भवन का विस्तार करवाया तथा छात्रावास का निर्माण करवाया। उसके प्रयास से विद्यालय चहुँमुखी विकास की ओर अग्रसर हुआ। उसके प्रयासो से मात्र परीक्षा फल में ही सुधार नही हुआ वरन् वालको में सद्प्रवृत्तियो का विकास होकर नैतिकता और चारित्रिक दृढ़ता भी पनपी। फलस्वरूप, पूरे क्षेत्र में उसकी प्रतिष्ठा में जहाँ एक ओर वृद्धि हुई, वहीं दूसरी ओर उसे इस कार्य हेतु जन सम्पर्क भी वढ़ा।

छात्रावास में छात्र-वृद्धि को लेकर उसे ग्राम नान्दशा जाने का अवसर मिला। तव तक वह 'दाता' के वारे में न तो कुछ जानता ही था और न उनके वारे में उसने कुछ सुना ही था। वह सीधा जागीरदार साहव के यहाँ पहुँचा।

उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र ओकार सिंह तथा कामदार मूरालालजी कोठारी ने अपने छोटे लडके लक्ष्मीलाल को विद्यालय में भर्ती कराकर छात्रावास में रखना स्वीकार किया। ये दोनो छात्र उम्र में बडे थे अत वे प्रधानाध्यापक के अधिक निकट रहने लगे। वे दाता के विरोधी पक्ष में होने के कारण बहुधा उनकी निन्दा किया करते थे। चूकि उनपर प्रधानाध्यापक का अधिक स्नेह था, अत वे 'दाता' के बारे में जो भी कहते उसे वह सत्य मान लेता। धीरे धीरे इस प्रकार कान भर जाने पर वह भी दाता' की निन्दा में रस लेने लगा। रायपुर के वैश्य समाज के अधिकाश लोग तथा अग्रणी कार्यकर्ता भी दाता' के विरोधी थे। उनके सम्पर्क की कुसंगत का भी प्रभाव उस पर पडा। इस प्रकार वह प्रधानाध्यापक अकारण ही दाता का निंदक तथा कट्टर विरोधी तत्र का प्रचारक इस सीमा तक बन गया कि उसे विद्यालय के किसी अध्यापक या छात्र का दाता' के पास जाना फूटी आँख भी नहीं सुहाता। यह स्थिति सन १९५१ तक यथावत बनी रही। मजेदार बात तो यह है कि उस प्रधानाध्यापक ने उस समय तक दाता को देखा तक नहीं था। फिर भी वह इतना बज्रमूर्ख था कि सुनीसुनाई एक पक्षीय बातों से ही उसने 'दाता' के प्रति इतनी हीन, भ्रान्त एव मिथ्या धारणा बना ली। बिना देखे बिना सम्पर्क साधे, बिना पूरी जानकारी और छान बीन किये वह भी अध्यापन के पवित्र व्यवसाय में कार्यरत, प्रधानाध्यापक जैसे सम्माननीय पदाधिकारी होते हुए, उसकी इस प्रकार की अनुचित धारणा उसकी मूढता और अभागेपन की ही सूचक थी।

रायपुर विद्यालय की हाईस्कूल में क्रमोन्नति —

उस समय रायपुर विद्यालय की ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी और आमेट, देवगढ, राजनगर, नाथद्वारा तक के छात्र वहां प्रवेश हेतु आने लगे। इससे प्रभावित होकर ग्रामवासियो के मन में उनके विद्यालय को हाईस्कूल के रूप में देखने की इच्छा जागृत हुई। किन्तु अच्छी पढाई और सुव्यवस्था ही इसके लिए पर्याप्त नहीं होती वरन अतिरिक्त धन, भवन और अन्य साधनों की भी आवश्यकता होती है। रायपुर वालों के लिए इन साधनो की पूर्ति कर पाना सरल नहीं था फिर भी इस निमित्त माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को आवेदन प्रस्तुत कर दिया गया। रायपुर से लगभग १६ माल दूर गगापुर एक बडा कस्बा है जहाँ के वासियों ने भी उनके विद्यालय के क्रमोन्नति हेतु पूर्व में ही प्रार्थना पत्र अग्रेषित कर दिया था। वह स्थान और वहाँ का विद्यालय रायपुर की तुलना में अधिक साधन सम्पन्न था अत उसकी तुलना में रायपुर का टिकना सदेहास्पद ही था। कुछ समय पश्चात ही बोर्ड द्वारा निरीक्षण की सूचना मिली।

सामान्यतया देखने में आया है कि वैश्य समाज, दूरदर्शी और बुद्धिमान् होने के कारण लाभ प्राप्ति के किसी भी मौके को हाथ से नहीं गवाता है। रायपुर का वैश्य समाज भी यद्यपि दाता का कट्टर विरोधी था किन्तु उसकी नजर से

'दाता' का प्रभाव क्षेत्र छिपा हुआ नहीं था। उन्हें यह विदित था कि दाता के यहाँ जयपूर के अनेक प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्ति आते हैं। यदि 'दाता' उनमें से किसी को भी संकेत कर दे अथवा लिख दें तो काम वन सकता है। इसके लिए उन्होने ग्राम सभा का आयोजन किया। ग्राम सभा में 'दाता' के सहयोग की अपेक्षा की गई। एतदर्थ तीन व्यक्तियो के एक दल को 'दाता' से मिलने के लिए चुना गया। तीन व्यक्तियो मे एक प्रधानाध्यापक एक डाक्टर और एक श्री माधवलाल त्रिवेदी थे। प्रधानाध्यापक आस्था के अभाव मे जाना नही चाहते थे, परन्तु ग्रामवासियो के विशेप आग्रह पर जाने को तैयार हुए।

दल के तीनो व्यक्ति अगले दिन सायंकाल नान्दशा पहुँचे। गाँव के ठाकुर श्री नारायण सिंहजी एवं कामदार श्री भूरालाल जी कोठारी से मिलकर वे सीधे 'दाता' के मकान पर पहुँचे। दाता अपने मकान के वाहर एक पत्थर पर वैठे हुए थे। तीनो ही व्यक्ति नमस्कार कर उनके सामने जमीन पर वैठ गये। दाता ने वहुत ही स्नेहभाव से परिचय एवं आने का कारण पूछा। जानकारी मिलने पर वडी प्रसन्नता से उन्होने कहा "वालको के हितार्थ आप लोगो को पैदल चल कर यहाँ आने में कप्ट हुआ। इस पिछड़े क्षेत्र के वालको की उच्च शिक्षा के लिए रायपुर में हाईस्कूल होना ही चाहिये। आप लोगो ने एक अच्छे कार्य के लिए वीड़ा उठाया है। मेरे राम को इससे वड़ी प्रसन्नता है। मेरा राम तो आपका व वालको का सेवक है। मेरा इसमें पूरा सहयोग है।" उन्होने तत्काल श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' हिन्दी विभागाध्यक्ष राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर को पत्र लिखाकर भिजवा दिया। उन्होने साथ ही पूर्ण आश्वस्त करते हुए फरमाया कि दाता की महर हुई तो यह कार्य अवश्य हो जावेगा।

वातो के प्रसंग में हरिचर्चा शुरू हो गई। दाता ने मीठी मेवाड़ी वोली में सदगुरु समर्थ की महत्ता का वर्णन किया तथा वताया कि मानव जीवन की सारी सुख-शान्ति दाता के पाद-पद्मो की रज वन जाने में है। मानव मन का अहंकार इसमें वाधक है। इसे ज्योहि उनके श्री चरणो में अर्पित किया कि आनन्द ही आनन्द है। जिस मनुप्य का प्रभु के चरणों में निःस्वार्थ भाव से प्रेम होगया, वही धन्य है। वही मनुप्य है। शेप तो 'मनुप्य रुपेण मृगाः चरन्ति।' की उक्ति को चरितार्थ करते है। गोस्वामी जी के अनुसार :—

'सोइ गुणज्ञ सोइ वड़ भागी, जो रघुवीर चरण अनुरागी।'

दाता की सरलता, सादगी, विनम्रता एवं इप्ट के प्रति एकनिष्ठसमर्पण भावना ने उन तीनो को अत्यधिक प्रभावित किया। वडे प्रसन्न होकर वे तीनो वापिस लौटे। प्रधानाध्यापक की विचित्र स्थिति थी। वह आत्मग्लानि एवं पश्चात्ताप की भावना से पीड़ित थे। वे सोच रहे थे कि ऐसे महापुरुप की व्यर्थ ही अकारण निंदा कर पाप के भागी वने। पश्चात्ताप की अग्नि यें उनका अपराध वोध शनैःशनैः

जल कर राख हो गया। कुछ समय बाद राजस्थान लोक सेवा आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष श्री एस सी त्रिपाठी सयोग से एक दिन श्री राधाकृष्णलाल जी भटनागर शिक्षाधिकारी, उदयपुर के साथ विद्यालय में पधारे। वे 'दाता' के दर्शनाथ नान्दशा पधार रहे थे। मार्ग में बोराना के पास उनकी कार खराब हो गई। पैदल चल कर वे रायपुर विद्यालय में पहुंचे। प्रधानाध्यापकजी को उनकी सेवा और सत्सग का सुयोग मिला। श्री त्रिपाठी जी भारतीय दशन की जीतीजागती मूर्ति थे। अध्यात्म में उनकी रुचि और पैठ गजब की थी। वे बारम्बार दाता की महत्ता का वणन करने में नहीं अघा रहे थे। उन्होंने विभिन्न शास्त्रो और पाश्चात्य दार्शनिक विद्वानों के प्रामाणिक कथन और मत अभिव्यक्त करते हुए प्रधानाध्यापक को समझाया कि जीवन का मुख्य उद्देश्य प्रभु प्राप्ति ही है। उन्होंने प्रधानाध्यापक को दाता के यहा न जाने का मीठा उलाहना दिया। दाता के इतने निकट होते हुए भी उनके सत्सग एव कृपा से वचित होना दुर्भाग्य ही है। त्रिपाठी जी की विद्वत्ता, प्रखर व्यक्तित्व, सत्सग चर्चा एव सरकृत-अग्रेजी की धारा प्रवाह वक्तृत्व-कला ने उन्हें बडा प्रभावित किया। इस सुयोग से प्रधानाध्यापक जी की निंदक प्रवृत्ति पूणत समाप्त हुई और दाता के प्रति थोडी थोडी जिज्ञासा जगने लगी।

बोड के निरीक्षण को निश्चित तिथि की सूचनानुसार प्रधानाध्यापक, श्री माधवलाल जी के साथ निरीक्षण दल को लिवाने हेतु जीप से सरदारगढ पहुंचे। श्री जगबहादुर अंग्रेजी के प्रोफेसर, दल के नेता थे। उनके साथ आचार्य श्री रामकृष्ण जी शुक्ला भी आये। यह दल प्रात जीप द्वारा रवाना हुआ तो शुक्ला साहब ने नान्दशा दाता के दर्शन करते हुए चलने का निर्देश दिया। प्रधानाध्यापक जी भी अन्तरमन से यही चाहते थे। जब यह दल नान्दशा पहुंचा, उस समय 'हर निवास' निर्माणावस्था में था। दाता हर-निवास के बाहर ही खडे थे। शुक्ला साहब ने दाता के श्री चरणो में अनन्य भक्ति भाव से श्रद्धा पूर्वक साष्टाग प्रणाम किया। जब कि प्रधानाध्यापक एव श्री माधवलाल जी ने केवल ठूठ की तरह खडे खडे ही हाथ जोडे। प्रधानाध्यापक जी को यह देख कर आश्चय हुआ कि शुक्ला जी जैसे व्यक्तित्व का धनी 'दाता' के श्री चरणो में दीनभाव से त्राहिमाम त्राहिमाम् उच्चारित करते हुए बारम्बार जमीन पर लोट-पोट हो रहा है। उन्हें ऐसा करते हुए देखकर उनके मन में स्वय की कठोरता के प्रति एक तरफ जहां खेद जागा वहाँ दूसरी तरफ निरीक्षण सम्बन्धी जो भय था वह तिरोहित हो गया। फिर भी उन्होंने दाता को रायपुर पधारने हेतु प्रार्थना की तो दाता तुरन्त ही दल के साथ ही रायपुर चल पडे।

रायपुरवासियों ने निरीक्षण दल का भव्य स्वागत किया। दाता की कृपा के प्रभाव से उन्होने बोड को अच्छी अभिशसा करते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया जिसके आधार पर बोड द्वारा रायपुर में सन् १९५२ से ही हाईस्कूल प्रारम्भ

करने की स्वीकृति मिल गई। बोर्ड की स्वीकृति के बाद राज्य सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता थी। अतः दाता को पुनः निवेदन करने पर वे स्वयं जयपुर पधारे। उनकी कृपा प्रभाव से राज्य सरकार से भी स्वीकृति मिल गई। इस प्रकार रायपुर के विद्यालय की हाईस्कूल के रूप मे क्रमोन्नति होने से पूरे क्षेत्र मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। जन-समुदाय ने इसका पूरा श्रेय 'दाता' को ही दिया।

प्रधानाध्यापक जी विद्यालय के माध्यम से ही 'दाता' के सम्पर्क मे आये थे। अब वे यदा कदा 'दाता' के दर्शनार्थ नान्दशा जाने लगे। इसी बीच एक संकट और सामने आया। वित्त विभाग से चार लाख की अतिरिक्त मंजूरी अवश्य हो गई थी किन्तु लिपिक की असावधानी से स्वीकृति पत्र मे यह नोट लगा दिया गया था कि यह रकम नये स्कूलो मे खर्च न की जाए। यह साधारणसी त्रुटि रायपुर के लिये अभिशाप बन गई। शिक्षा विभाग ने इस कारण दो माह पश्चात् हाईस्कूल को स्थगित कर दिया। हजार प्रयास के बाद भी यह नोट नही हटाया जा सका। जब 'दाता' के सन्मुख यह समस्या प्रस्तुत की गई तो वे कृपालु पुनः जयपुर पधारे। इनके अनुयायियोने मंत्रीस्तर तक प्रयास किया किन्तु सचिवालय की कार्य प्रणाली की व्यवस्था सम्बन्धी जटिलताये और वह भी विशेपरूप से वित्त विभाग की सामने आती रही। इस प्रकार पेतालीस विद्यार्थियो का भविष्य धूमिल होकर अधर मे झूल गया। प्रधानाध्यापक इस स्थिति में किकर्तव्यविमूढ हो गये पर तब 'दाता' ने जो त्वरित और निश्चयात्मक निर्णय करने मे निपुण है, यह सलाह दी कि इस हाईस्कूल को प्राइवेट रूप मे चलाया जावे। तदर्थ उन्होने निज के प्रभाव का उपयोग करते हुए वर्तमान अध्यापको को इसमे निःशुल्क कार्य करने की स्वीकृति विभाग से दिलवा दी। इस प्रकार उनकी असीम कृपा से रायपुर में प्राइवेट हाईस्कूल चल पड़ा जो सन् १९५४ मे जाकर पुनः स्वीकृत सूची में सम्मिलित हुआ।

हाईस्कूल के माध्यम से प्रधानाध्यापक जी 'दाता' के सम्पर्क मे आते रहे जिससे 'दाता' के प्रति उनके हृदय मे श्रद्धा जागृत होने लगी, साथ ही 'दाता' के प्रवचनो ने भी उन्हे प्रभावित किया। किन्तु उनका मानसिक अन्तर्द्वन्द पहले से भी अधिक कसमसाने लगा क्योकि अब उनकी घनिष्टता 'दाता' के प्रशंसक एवं निन्दक दोनो से ही थी। वे मन की इस उधेडबुन की भयंकर स्थिति का सामना करने लगे।

मानसिक अन्तर्द्वन्द :—

एक तरफ मन का अशुद्ध भाव पक्ष जो निन्दको द्वारा समर्पित था, उन्हे 'दाता' के सम्पर्क सूत्र मे घनिष्ठता से जुड़ने मे कतई मना करता, तो दूसरी ओर उसका सत् स्वभाव उन्हे सत्संग-शरणागति हेतु व्याकुल और विवश करता। मन की ऐसी द्विधात्मक गति मे उन्हे कॉलेज काल मे पढे महान् नाट्यकार

शेक्सपियर के प्रमुख पात्र हेमलेट की ' To be or not to be that is the question ?'' स्थिति का यथार्थ बोध अनुभूत हुआ। उनके सशयात्मक मन में यह भाव जागा कि यदि दाता वास्तव में महान पुरुष हैं तो उन्हें कुछ ऐसी अनहोनी लीला बतायें जिससे उन पर विश्वास किया जा सके। उनकी चमत्कार देखने की इच्छा भी दिन प्रति दिन प्रबल होती गई। इसके अलावा वे शुक्ला साहब जैसे प्रकाण्ड विद्वान के सम्पर्क में आने के भी इच्छुक रहे। अत उन्होंने दाता से निवेदन किया कि जब शुक्ला साहब जयपुर से यहा आवें तब उन्हें भी सूचित किया जाए।

दाता' का यह विचित्र स्वभाव है कि वे किसी को शरणागत बन्दा बनाने से पूर्व उसे खूब छकाते हैं और अदृश्य रूप से ऐसी चोटें मारते हैं कि जिससे उसका दर्प दर्पण की भांति चूर चूर हो जाय। प्र अ पर नियति की ऐसी ही निमम चोटें लगना अभी शेष था। दशहरा अवकाश में प्रधानाध्यापक जी भीलवाडा आये हुये थे। उनके साथ विद्यालय का चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी श्री शकरलाल भी था। उन्हें तीन बजे के लगभग रायपुर के एक व्यक्ति द्वारा सदेश मिला कि शुक्ला साहब नान्दशा आये हुए हैं और दाता ने उन्हें आज ही बुलाया है। उन्होंने इस सदेश को दाता का आदेश माना। वे सीधे बस स्टेन्ड पहुंचे। वहां जाने पर ज्ञात हुआ कि नान्दशा जानेवाली बस खराब होने से नहीं जावेगी। इस सूचना से उन्हें आघात लगा। उन्होंने पैदल जाने की सोची किन्तु दूरी छत्तीस मील की थी व समय सन्ध्या का था। वे किंकर्तव्यविमूढ होकर इधर उधर चक्कर लगाने लगे। उस समय उनके मन में गहरी चिन्ता अवसाद और अशान्ति थी।

तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि चॉदरास जाने वाली बस खराब है और अच्छी होते ही रवाना होगी। डूबते को तिनके का सहारा। उसमें जा बैठे और दस बजे बावलास गॉव पहुंचकर उतरे। नान्दशा वहां से दस मील दूर था। ग्रामवासियों के मना करने पर भी वे वहां से पैदल रवाना हुए। उनके मन में केवल एक ही बात कि किसी न किसी तरह रात्रि के बारह बजे तक नान्दशा पहुंच जायें।

अपरिचित मार्ग, बडी लम्बी घास, रात्रिकाल चोरों द्वारा लूट का भय आदि कठिनाइयाँ सामने थी। उनके पास विद्यालय फन्ड के दो सौ रुपये थे। काया का तो कोई डर नहीं किन्तु माया का तो डर था। दाता के आदेश पालन की तीव्र इच्छा नहीं होती तो वे ऐसी विषम स्थिति में कभी भी यात्रा नहीं करते। सघन अधकार और साय साय करती रात्रि। दो मील दूर चल कर कोठारी नदी पार की। हुआ वही जिसकी आशका थी। आगे रास्ते में चार चोरों ने ठहरने की धमकी दी और न रुकने पर पीछा किया। पैर भारी होगये हृदय धक-धक करने लगा। विपत्ति में जब किसी और का सहारा नहीं हो तो अनायास ही प्रभु याद आते हैं। बरबस मुह से निकल पडा 'दाता तेरा ही सहारा है और वे तेजी से

दोडे। एक मील दौड़ने के बाद दम फूलने पर रुके। पीछे मुड़ कर देखा तो चोर दिखाई नही पडे। जान मे जान आगई। कुछ आश्वस्त हुए कि दाता की कृपा से इस संकट से रक्षा हुई।

आकाश साफ था। तारो की रोशनी मे मार्ग दिखाई दे रहा था। अचानक दक्षिण दिशा मे छोटासा वादल का टुकड़ा आसमान मे शीघ्रता से वढ़कर पूरे आकाश मे छा गया। एकदम घना अन्धकार, हाथ को हाथ भी दिखाई देना कठिन। घवराकर सोचने लगे। क्या करे? कहाँ जाये? कुछ समझ मे नही आता? अचानक मूसलाधार वर्षा शुरु हुई; न कोई छाता; न ओढ़ने को कोई वस्त्र ही उपलब्ध। जहाँ खडे थे वही वैठ गये। मुंह से अनायास ही निकल पड़ा. "वाह रे, दाता तुमने कैसी गति वनाई?"

उनके मुह से इन शव्दो के निकलते ही वर्षा ऐसे वन्द हो गई जैसे स्विच ऑफ करते ही रोशनी। देखते ही देखते वादलो का नामोनिशान भी नही रहा। इस चमत्कार ने उन पर रंग जमाया। दाता के प्रभाव को पूर्णतया स्वीकारते हुए वे उनकी कृपा के कायल होगये। चोरो से रक्षा की का वोध भी उन्हे तभी हुआ। फिर भी कुछ ही मिनिटो मे घटित दो चमत्कारो से भी उन्हे संतोप नही हुआ वल्कि कुछ और अनहोनी लीला देखने की इच्छा ही वलवती हुई। शंकरलालजी भी इन दोनो घटनाओ से कम प्रभावित नही थे। उन्होने कहा कि वर्षा का इस प्रकार से आना, फिर अचानक वन्द हो जाना व आकाश का वापिस वादल रहित होजाना अनोखी ही वात है।

वर्षा के ठहर जाने और आकाश के साफ हो जाने पर वे दोनो वहाँ से उठकर चलने लगे। चलने तो लगे, लेकिन जिस मार्ग को छोड़कर वे एक ओर वैठे थे, उन्हे वह मार्ग वापिस लम्वी-लम्वी घास के कारण नही मिला। उन्होने मार्ग ढूंढने की खूव कोशिश की किन्तु व्यर्थ। चारो ओर झाड़ियाँ व घास ही घास। कांटो से उनके पैर छिद गये। पजामे फट गये। पाँवो से खून निकल आया, किन्तु उन्हें मार्ग नही मिला। रात्रि भी अधिक हो गई। वारह वजे पूर्व नान्दशा पहुँचने की आशा धूमिल होती जा रही थी। उन दोनो ने इधर उधर दुगुने उत्साह से मार्ग ढूंढ़ने का प्रयास किया, किन्तु झाडियो से पैर छिलने के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नही लगा। चारो ओर घास ही घास दिखाई दे रहा था। कुछ ही देर में वे पूर्णतया घवरा गये। उनके नेत्रो मे वरवस ही आँसू आगये। उनके मुख से स्वतः ही वोल निकला, "वाहरे दाता! तूने आज अच्छी वनाई।" इन शव्दो के निकलते ही एक अद्‌भुत चमत्कार प्रकट हुआ। अचानक उन दोनो के नेत्र स्वतः ही वन्द हो गये। जैसे ही नेत्र वापिस खुले तो देखते क्या है कि सामने मिट्टी के घर है और वे दोनो एक दिवार के पास खडे है। न वहाँ लम्वी लम्वी हरी घास हे और न कटीली झाड़ियाँ। वे एकदूसरे को विरफारित नेत्रो से देखने लगे। यह सव कैसे हो गया? यह क्या मायाजाल है? हम यहाँ कैसे

आ पहुंचे ? वह जगल वह बडा बडा घास और झाडियाँ कहाँ गायब होगई ? ऐसे अनेक प्रश्न उनके मस्तिष्क में उभर आये। शकरलालजी ने बताया कि यह गाँव तो 'खुटिया' है। जहाँ से मार्ग भूले थे वह स्थान वहाँ से लगभग दो मील दूर है। यह आश्चय की ही बात थी कि उनकी आँखें बन्द होकर खुलने के तनिक से अन्तराल में उन्होंने दो मील की दूरी कैसे पार करली ? उन्हें बोध हुआ कि असभव व अनहोनी बात 'दाता' की कृपा से ही हुई है। ऐसी बातें पौराणिक कथाओ मे सुनने को मिलती हैं किन्तु प्रत्यक्ष में देखने का योग दाता की कृपासे असख्यो में से विरलों को ही मिलता है। प्रधानाध्यापकजी की उस समय अवस्था ही विचित्र होगई। प्रसन्नता की अतिरेकता में वे नाचने लगे।

नान्दशा खुटिया गाँव से दो मील दूर है। उन्हें समय अधिक होगया था किन्तु फिर भी उछलते-कूदते आगे बढे। अब मार्ग सीधा ही था व घास भी अधिक नहीं था। सब कुछ साफ था किन्तु अभी भी प्रधानाध्यापकजी को सकट भोगना शेष था। उन्हें तो दाता की लीलाओ का करिश्मा और देखना था। हुआ यू कि, वे नान्दशा जाना तो चाहते थे परन्तु बार बार रायपुर के मार्ग पर चले जाते। खूब प्रयत्न किया उन्होने नान्दशा जाने का, किन्तु असफल ही रहे।

यहाँ यह उल्लेख कर देना उपयुक्त है कि 'दाता' की यह अजीब लीला है कि रात्रि काल में जो कोई भी नान्दशा 'दाता' के पास पैदल अथवा वाहन से जाना चाहता है, वह नान्दशा गाँव को दो मील की परिधि में अवश्य रास्ता भटकता है, चाहे वह रास्ता उसका कितना ही जाना पहिचाना हो। ऐसी स्थिति में उसे थक कर या तो जगल में ही विश्राम करना पडता है अथवा तीन-चार घण्टे के कष्ट-साध्य-श्रम पश्चात् ही वह वहाँ पहुंच पाता है। इस सम्बन्ध में जयपुर-अजमेर के अनेको व्यक्तियो के उदाहरण दिये जा सकते है। ऐसा क्यो होता है ? यह रहस्य तो 'दाता' ही जाने परन्तु ऐसा लगता है कि ऐसे भटकाव के कष्ट में बन्दे के भावो की विभिन्न प्रकार से स्वत ही परीक्षा होती रहती है।

अस्तु उनके सामने भी यही स्थिति आयी। रायपुर के मार्ग के अलावा अन्य कोई मार्ग ही नजर नहीं आरहा था। एक घण्टे के अथक प्रयास के पश्चात वे हार कर रायपुर की ओर ही बढते हुए चार बजे वहा पहुंचे। नहा-धोकर वे पाच बजे पुन नान्दशा के लिए रवाना होकर सूर्योदय होते होते नान्दशा पहुंचे। मार्ग में तालाब की पाल पर गायो के साथ 'दाता' खडे थे, किन्तु वे अपनी धुन में ही चले जा रहे थे, जिससे वे दाता को देख नही सके। नोहरे के एक चबूतरे पर श्री शुक्ला साहब सपरिवार बैठे थे। नमस्कारोपरान्त 'दाता' के बारे में पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे गायो को लेकर जगल में गये हैं। वे वहाँ से बिना विश्राम किये ही रवाना होकर शिव मन्दिर में दर्शन करके उस ओर चल पडे जिस ओर गायों को लेकर दाता के जाने का अनुमान था। पूरी रात्रि चलते रहने के बावजूद भी अभी वह शुभ घडी दूर थी जब उन्हें दाता के दर्शन होने को थे।

वे जंगल मे निकल गये। ज्यो ज्यो वे आगे वढ़ते उन्हें यही सूचना मिलती कि 'दाता' गायो को लेकर अभी अभी आगे गये है। उन्होने नान्दशा ओर परवती का पूरा जंगल छान लिया किन्तु दाता उन्हें कही नही मिले। चलते चलते वे हैरान होगये। साढे दस वज चुके थे। पूरी रात्रि चलते रहने के कारण वे थके हुए तो थे ही, इसलिये चलना भारी हो रहा था फिर भी वे हताश नहीं हुए। कुछ आगे जाने पर ग्वालो से ज्ञात हुआ कि 'दाता' तो मोखमपुरा गये हैं। मोखमपुरा वहाँ से तीन मील दूर था फिर भी वे उस ओर वढ़ते रहे। थोड़ी दूर चलने पर एक स्थान पर कुछ गाये चरती दिखाई दी। उन्होने अपने साथी शंकरलालजी को उन ग्वालो से पूछने के लिए भेजा। स्वयं ने, अत्यधिक थके होने से, एक वबूल की छाँह में लेटने की सोची। ज्यो ही वे लेटने को नीचे झुके कि उनके कान में जोर से आवाज आयी, "मास्टर साहव ! वापिस लौट आओ"। उन्होने इधर उधर देखा किन्तु कहीं कोई दिखाई नही दिया। आवाज 'दाता' की ही थी। स्वर विलकुल जाना पहिचाना-संशय रहित था। उन्हे सुखद आश्चर्य हुआ।

उन्होने शंकरलालजी को आवाज दी। आने पर वोले, "चलो वापिस चलो, दाता वुला रहे है।" यह जानकर उनके आश्चर्य का भी ठिकाना नही रहा। वे दोनो ही नान्दशा की ओर दोड़ पडे। तालाव पर पहुँचने पर उन्होने दाता को स्नानोपरान्त उन्ही की प्रतीक्षा करते हुए खडे पाया। उन्होने पहुँचते ही साष्टाग प्रणाम किया। यह उनका प्रथम साष्टाग प्रणाम था। दाता ने हँसते हुए केवल इतना ही फरमाया, "मास्टर साहव ! अभी भी आपका भटकना वन्द नहीं हुआ क्या ?" भगवान के इन मार्मिक शव्दों का अर्थ उस वक्त उनके समझ मे आया नही, किन्तु दाता की असीम कृपाजान वे गद्‌गद्‌ अवश्य होगये। उनके नेत्रो से प्रेमाश्रु वह चले। दाता ने उन्हें प्रेम से पुचकार लिया जिससे उनकी सारी थकान मिट गई और उनका सारा शरीर तरो-ताजा होगया। दाता के साथ वे नोहरे (घर) गये। शुक्ला साहव वही विद्यमान थे। आज उन्हें पहलीवार प्रभु के साथ प्रसाद पाने का सौभाग्य मिला जिसके अमृतोपम स्वाद का वर्णन करना कठिन हे।

भोजनोपरान्त सभी 'दाता' के सन्मुख वैठ गये। दाता छोटे चवूतरे पर जिस पर उनका आसन था, विराजे हुए थे। पास मे कटी हुई लकड़ी पड़ी थी। 'दाता' ने कांटा निकालने का चिपिया उठाया ओर पैर से कांटा निकालने लगे। प्रधानाध्यापकजी से रहा नहीं गया। उन्होने पूछ ही लिया, "प्रभु ! आपके ये काँटे कहाँ चुभे ? 'दाता' ने मास्टर साहव की नजर में नजर मिला हँसते हुए उत्तर दिया, "क्या करें ? कोई जव वुलाता हे तो जाना ही पड़ता है। मेरे राम को अंधेरी रात मे जंगल की कंटीली झाड़ियो में चोरो का पीछा करना पड़ा। यह देखो लकड़ी भी फट गई है और कांटे भी चुभे है।"

इतना कहना था कि आप वीती घटना का सारा दृश्य उनकी आँखो के सामने नाचने लगा। अव उनकी समझ में सारा रहस्य आया कि चोरो ने पीछा तो किया था फिर भी वे उन्हें क्यो न पकड़ सके ? उन्हें यह दोहा स्मरण हो आया--

"कहु रहीम का करि सके, ज्वारी, चोर, लवार ।
जो पत राखन हार है, माखन-चाखन हार ॥"

उस समय मास्टर साहब गदगद् होगये। प्रेमावेग से उनके नेत्रो से अविरल जलधारा बहने लगी। अजामिल, गीध गणिका आदि के उद्धार के अनेकों दृश्य उनके नेत्र-पटल पर प्रतिबिम्बित होकर मानस में चलचित्र की भांति चमक उठे। साथ ही साथ रात्रिवाला स्वयं के उद्धार का वह दृश्य भी उन्हें आपाद मस्तक झकझोर गया। तन, मन तथा हृदयतन्त्री के सूक्ष्म तारों को एकसाथ ही अपूर्व मधुर स्वरों में झंकीकृत कर गया। वे सिहर उठे। क्षणमात्र में ही उनके मन की समस्त शंकायें, भ्रम और द्वन्द्व समाप्त हो गए। चमत्कार देखने के भाव पाण्डित्य का दर्प, विद्या-बुद्धि का उनका अहंकार चकनाचूर हो गया। गंगा-जमुनी इस बहाव में उनके मन का समस्त मैल धुल गया। उन्होंने अपने नाथ को साक्षात पहचान लिया। उन्हें रामचरित मानस की यह पंक्ति याद हो आयी—

"मोरें सबइ एक तुम स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तर्यामी ॥"

उनका मस्तक अनायास ही इष्ट देव के पादपद्मों में झुक गया। उन्हें साक्षात ईश्वर का रूप मान, वे उनके श्रीचरणों में शरणागत भाव से समर्पित हो गये। प्रभु ने उन्हें पुचकारते हुए अपना बना लिया। उनके इस पार्षद-पद प्राप्ति के आनन्द की कोई सीमा नहीं रही। धन्य है पामर और प्रभु का यह मिलन, शिष्य की श्री गुरु चरणों में यह शरणागति, भक्त और भगवान का यह सनातन सम्बन्ध निर्वाह !—

और इस प्रकार एक रंक ने भगवान् के सान्निध्य की महानिधि प्राप्त कर ली। वह सत्यानन्द में पूर्णतया समाविष्ट हो गया। एक बून्द सागर में मिल गई। क्या करेगा यमराज ?

उस दिन अनेक विषयों पर 'दाता' का धारा प्रवाह प्रवचन हुआ और मास्टर साहब को सत्संग के महत्व का प्रथम बार बोध प्राप्त हुआ। शाम को रायपुर जाने के पूर्व उन्होंने शुक्ला साहब सहित भगवान को भोजन प्रसाद का निमंत्रण दिया। 'दाता' ने हँसते हुए स्वीकार तो किया किन्तु यह आयोजन रायपुर के बजाय नान्दशा में ही रखने का सुझाव दिया। निश्चय यह हुआ कि भोजन रायपुर से बनाकर नान्दशा लाया जाए। साठ व्यक्तियों के भोजन की आज्ञा हुई। इसके बाद वे रायपुर चले गये।

दूसरे दिन शुक्ला साहब के ज्येष्ठ पुत्र सत्यदेवजी स्टेशन वेगन गाड़ी लेकर रायपुर पहुँचे। भोजन हेतु नुकती दाना, पुड़ी नमकीन दाल और सब्जी बनी। सभी सामान गाड़ी में रखकर प्रधानाध्यापकजी शंकरलालजी को लेकर नान्दशा पहुँचे। सत्यदेवजी ने मास्टर साहब को उनकी पत्नी व बच्चों को भी

साथ लेने का खूब आग्रह किया किन्तु मास्टर साहब ने सोचा, "भोजन तो केवल साठ व्यक्तियो के लिए ही बनाया है। सभी को साथ लेने पर संख्या बढेगी" अतः उन्होने मना कर दिया। नान्दशा पहुँचते ही 'दाता' ने उलाहना दिया, "बच्चो को क्यो नहीं लाये ?" गाड़ी वापिस रायपुर भेज कर उनकी पत्नी व बच्चो को बुलवाया गया। धीरे धीरे जयपुर, अजमेर व अन्य स्थानो से और भी व्यक्ति आगये। संख्या बढ़ कर एक सौ से भी अधिक होगई। 'हरि-हर'(भोजन) की आज्ञा हुई। पहली पंक्ति में ही सौ से अधिक भोजनार्थी बैठे। मास्टर साहब का हृदय भय से धक-धक करने लगा। साठ का भोजन व सौ से अधिक आदमी पहली पंक्ति मे हो ? वे चिन्ता करने लगे कि अब क्या होगा ? वे भयातुर रहे कि खाद्य-सामग्री समाप्त होने की सूचना अब आयी कि अब आयी, किन्तु भण्डार से ऐसी सूचना नही आयी। पहली पंक्ति के उठने के बाद कुछ व्यक्ति और आगये। अब भी लगभग अस्सी व्यक्तियो को भोजन करना शेष था। उन्होने सोचा कि पहली पंक्ति तो ज्यो त्यो निपट गई, किन्तु अब दूसरी पंक्ति का क्या होगा ! वे ओर भोजन बनाने की योजना बनाने लगे। इधर उनके मस्तिष्क मे इस तरह के विचार आ रहे थे, उधर 'दाता' ने उन्हें बुलाया। 'दाता' ने कहा, 'मास्टर साहब अन्दर जाकर देख आओ कि अब भोजन-सामग्री की क्या हालत है ?' मास्टर जी डरते डरते भीतर गये। भोजन वस्त्र से ढ़का हुआ था। उन्होने वस्त्र उठा कर देखा। उनको अपनी आँखो पर ही विश्वास नहीं रहा। उन्होने विस्फारित नेत्रो से देखा कि जितना भोजन वे रायपुर से लाये थे उतना तो अब भी रखा हुआ है। वे विस्मय विमूढ़ होकर सहमे हुए 'दाता' के समक्ष उपस्थित हुए। उनके नेत्रो में अश्रु थे। 'दाता' ने फरमाया, यह तो दाता का अलख भण्डार है जिसका कोई पार पाना चाहे तो वह पा नहीं सकता। आप व्यर्थ की चिन्ता क्यो करते है ? क्या आपको अब भी दाता पर विश्वास नही हे ? यदि आपको विश्वास होता तो बच्चो को रायपुर छोड़ कर नहीं आते। भाई ! दाता पर कभी शंका नहीं करना चाहिए। उनकी लीला तो अपरंपार है। वह सभी कुछ करने में समर्थ है। वह क्षणमात्र में राई का पर्वत ओर पर्वत को राई कर देता है। एक पल में तो वह भण्डार को खाली कर देता है और दूसरे ही पल खाली भण्डार को भर देता है।" दाता ने जयपुर की गोलछा गार्डन की घटना सुनाई जिसे आप लीलामृत भाग १ में पढ चुके है। मास्टर साहब अवाक् हो सुनते रहे। उनके मस्तिष्क में ये विचार कोंधे कि भावप्रणव गोस्वामीजी ने सम्भवतः ऐसे ही दिव्य लीला भावानुभूति के आनन्द के संदर्भ क्षणो मे यह रचना की होगीः—

"को भरि है हरि के रितये।
रितये पुनि को हरि जो भरि हैं॥
उथपै तेहिं को जेहि राम थपै।
थपि है पुनि को हरि जो टरि है॥" (कवितावली)

वह प्रधानाध्यापक और कोई नहीं यह लेखक ही है। 'दाता' ने इस दीन सेवक पर जो करुणापूर्वक असीम अनुग्रह किया है उसको अभिव्यक्त करने में शब्द और भाषा अक्षम है। प्रभु ने इस पामर के कर्मों पर ध्यान न देकर उसे अपना लिया, यह उनकी अतिशय दीनबन्धुता का ही द्योतक है। इस प्रकार एक अभागा व्यक्ति अखण्ड सौभाग्यशाली बन गया। इसकी यह करुण-व्यथा-कथा पौराणिक-गाथा-श्रृंखला की ही एक कड़ी नहीं तो और क्या है जिसमें भगवान भक्त को पुचकार प्रीति पूर्वक अपने श्रीचरणों में शरण दे देते हैं। उसके अहं को उसके मन के विकारों को वह दयालु भगवान कुंकुम केसर की भांति मानते हुए अपनी झोली में ले लेते हैं और बदले में दे देते हैं आनन्द का अपार भण्डार। ऐसे हैं दीनदयाल दाता।

o o o

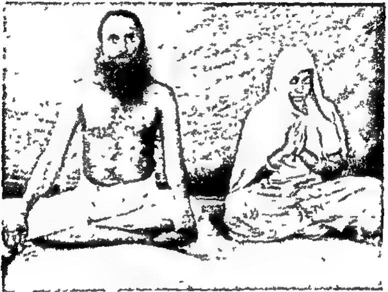
कार्तिक पूर्णिमा सत्संग-पुष्कर

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक संग ।
तुले न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग — — तुलसी

सत्संग का सुख स्वर्ग और अपवर्ग के सुख से भी अधिक माना गया है । सत्संग का सुख सर्वोच्च सुख है । उससे बढ़ कर अन्य कोई सुख नहीं । सत्संग का अर्थ है सत्य का संग । सत्य कहते है जो स्थायी हो, जिसका कभी नाश न हो । नाश न होनेवाला अर्थात् अविनाशी तो केवल परमात्मा ही है । परमात्मा का संग होना का तात्पर्य होगा परमानन्द की प्राप्ति । सत्संग से परमानन्द की प्राप्ति होती हे । इसीलिए महापुरुषो ने और शास्त्रो ने सत्संग को बड़ा महत्वशाली बताया है । दाता तो फरमाते है, "सत्संग तो ऐसा पूर्ण हे जो दाता सम्बन्धी भूख को जागृत करता है । जो भूखा होगा वही भोजन का स्वाद ले सकता हे । जिसको भूख ही नहीं है वह भोजन के स्वाद को क्या जाने ।" सत्संग ही प्रभु के प्रति हमारे अनुराग को बढ़ाता है । अतः सत्संग के अवसर को कभी नहीं छोड़ना चाहिए ।

दाता सत्संग पर बड़ा जोर देते हे । गुरु पूर्णिमा सन १९५० से उन्होंने सत्संग-प्रणाली का प्रारम्भ किया तभी से उनके अनुयायी वर्ष में तीन बार सत्संग हेतु सम्मिलित होते है । ये तीन अवसर है ।— गुरु-पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा और राम नवमी । गुरु पूर्णिमा और राम नवमी का सत्संग दाता की आज्ञानुसार भिन्न भिन्न स्थानो पर होता रहा है । गुरुपूर्णिमा का सत्संग बहुधा हर-निवास या दाता-निवास पर ही होता रहा है । एक बार जयपुर, एकबार पुष्कर व एकबार भीलवाड़ा भी हो चुका है । राम नवमी का सत्संग भी दाता की आज्ञा से भिन्न भिन्न स्थानो पर ही होता रहा है । कार्तिक पूर्णिमा का सत्संग सन् १९५२ से पुष्कर गो-शाला में ही हो रहा है ।

पुष्कर की भारतीय संस्कृति के प्रमुख केन्द्र के रूप मे आदि काल से ही विशिष्ट महत्ता रही है । पुष्कर का इतिहास हमारे सांस्कृतिक उत्थान की कथा से घनिष्ठता-पूर्वक जुड़ा हुआ है । इसके इसी गौरव के अक्षुण्ण रखने हेतु ही इसे 'तीर्थगुरु' की उपाधि से अलंकृत किया गया है । प्रजापति ब्रह्मा ने प्रथम यज्ञ का आयोजन यहीं किया था । उनका एक मात्र मन्दिर यहां अवस्थित है । अनेकों ऋषि-महर्षियों ने सात्विक जीवन व्यापन करते हुए, यहाँ दिव्य दर्शन एवं अनुभूतियां प्राप्त की है । वे सत्य के दृष्टा बने और अनेको वेद-मंत्रों की उनके द्वारा रचना



दाता एवं मातेश्वरी

हुई। वशिष्ठ, अगस्त्य, गौतम, विश्वामित्र, पाराशर आदि ऋषियों के आश्रम भी इसी पवित्र भूमि में स्थापित हुए। वेदों के जगतप्रसिद्ध गायत्री महामन्त्र की महर्षि विश्वामित्र द्वारा रचना स्थली होने का पुनीत गौरव इसे ही प्राप्त है। पद्म पुराण में पुष्कर के महात्म्य का उल्लेख है।

ऋषि-महर्षि, साधु-सन्यासी, त्यागी-सन्यासी महापुरुषों के दर्शन सत्संग, तीर्थ-स्नान लौकिक एवं पारलौकिक उपलब्धियो हेतु यहां मुमुक्ष-जनो, भक्तो, साधकों एवं सामान्यजन समुदाय का मिलन पर्व, प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूणमासी के बीच निश्चित हुआ। तब से ही यहा प्रतिवर्ष हर्षोल्लास पूर्वक जन समूह का एक मेला लगता है। देश के दूरस्थ भागों के कोने कोने से यहाँ श्रद्धालु भक्त लाखो की संख्या में एकत्रित होकर पुण्य लाभ अर्जित करते हैं। घाट घाट और स्थान स्थान पर विभिन्न मतावलम्बियों के मन्दिर और आश्रम बने हुए हैं, जहाँ यात्रियो के ठहरने की सुविधाएं भी हैं। यज्ञ, भजन, कीर्तन तथा सत्संग प्रवचन द्वारा आत्म कल्याण हेतु यात्री उत्प्रेरित होते हैं।

आज की विकासोन्मुख अर्थ व्यवस्था के अनुकूल, यहाँ पशुमेला एवं विभिन्न प्रदर्शनियाँ भी लगती हैं, जिससे ग्रामीण, व्यवसायी और पशु क्रय-विक्रय कर्ता लाभ उठाते हैं। प्रसिद्ध नागोरी बैलों ऊंटों और मालवी घोड़ों का यह उत्तम केन्द्र है। इस प्रकार यह पर्व, सम्मेलन, मेला आदि अनेक दृष्टियों से महत्व पूर्ण भूमिका की निर्वाह स्थली बना हुआ है। पूरे क्षेत्र में राम-नाम की धूम अपार भीड़ और घाटो पर तिल रखने को भी स्थान रिक्त नहीं ऐसा सम्मोहक दृश्य बन जाता है पुष्कर का। ऐसे मनोहारी दृश्य को देखने अब विदेशी पर्यटक भी आने लगे है और भारतीय संस्कृति की रंगी-बिरंगी छटा को देखकर मंत्रमुग्ध होकर विस्मय से ठगे से रह जाते है।

ईस्वी सन १९५२ से ही दाता-सत्संग मण्डल का कार्तिक पूर्णिमा का सत्संग पुष्कर में ही हो रहा है। सन् १९५२ में यह कार्तिक पूर्णिमा का पहला सत्संग था। दाता भावेश्वरीजी सहित पुष्कर पधारे और गो-शाला में विराजना हुआ। प्रसिद्ध योगी स्वामी ओमानन्दजी भी यहीं ठहरे हुए थे। ऐसे पुनीत अवसर पर इस सेवक को दाता सत्संग-मण्डली में सम्मिलित होने का सौभाग्य मिला। मुझे भली भांति स्मरण है कि उस दिन सत्संग बोर्ड के सदस्यों के समक्ष साक्षात्कार में खूब तपने के बाद ही रात्रि में दाताने असीम कृपा कर न केवल सत्संग मण्डल में सम्मिलित किया वरन उम्मीदवार भी बना दिया। सत्संग में प्रवेश अनेक सन्तो के दर्शन और दाता के सानिध्य में प्रवचन-ध्यान का त्रिवेणी संगम का तीन दिन तक ऐसा सुयोग मिला कि पता ही नहीं लगा कि दिन कब उदय हुआ और कब अस्त हुआ। दाता ने अपने कृपा भण्डार के जैसे ताले ही खोल दिये हो। लोकोक्ति है 'मालिक देता है तो छप्पर फाड कर देता है' परन्तु यहाँ तो दाता

ने आसमान फाड़कर प्रेमानन्द की अनुपम वर्षा की, जिसका वर्णन करना संभव नहीं। दिव्य दर्शन एवं विचित्र आध्यात्मिक अनुभूतियों से अनेक सत्संगी बन्धु नव-जीवन शक्ति प्राप्त कर सरस होगये। मेरे अतिरिक्त उस दिन इक्कीस अन्य उम्मीदवार सत्संग मे प्रविष्ट हुए।

यहाँ पाठको की जानकारी एवं जिज्ञासा पूर्ति हेतु सत्संग के कार्यक्रम तथा व्यवस्था सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातो का वर्णन करना उचित ही होगा। अधिकांशतया दाता गो-शाला भवन के पिछले भाग के ऊपरी पश्चिमी भाग के कमरे में ठहरते है। इसके संलग्न ही खुला आंगन है और दो छोटी कोठरियां है. जिनमे से एक में मातेश्वरीजी का निवास होता है तथा प्रांगण मे भोजन बनाने करने की सुविधा है। दाता प्रायः प्रातः चार बजे जग जाते है। जगकर जल पीने के पश्चात् बिस्तर पर ही बैठकर ध्यानस्थ हो जाते है। स्थानाभाव से उसी कमरे मे कुछ सेवक और सत्संगी भी शयन करते है। वे भी उठकर खुली आँखो से अथवा नेत्र बन्द करके ध्यान करते है। दो घण्टे पश्चात् दाता कमरे से बाहर निकलकर गैलरी मे खड़े होकर उपस्थित जन समुदाय को दर्शन देते है। तत्पश्चात् शौच के लिए पंचकुंड की ओर के जंगल मे जाते है। लगभग २०-२५ भक्त जन भी साथ हो जाते है। इस दौरान जाते-आते अनेक विषयो पर हरि चर्चा होती रहती है। वहाँ जंगल मे स्वच्छ स्थान देखकर बैठ भी जाते है और प्रसंग चलते रहते हे।

यहाँ यह संकेत करना जरुरी है कि दाता के सत्संग मे रहनेवालो को हर समय सावधान, सतर्क और चोकन्ना रहना होता हे क्योकि पता नही किस समय किस संदर्भ में दाता क्या फरमा दें अथवा क्या आनन्द लुटा दे? और वे उससे वंचित रह जायें। आमतोर पर यह वातावरण पूर्णतया अनौपचारिक, हँसी ठहाको और विनोद कौतुकमय रहता है।

दातुन पश्चात् दाता हलका नाश्ता लेते है जिसमे फल, मिठाई, रस इसके बाद मंडली सहित पुष्कर सरोवर पधारना होता हे। दाता किसी को स्पर्श नही करते हैं। अतः भीड़ से बचने हेतु सत्संगी उनके चारो ओर घेरा बनाकर चलते है। पुष्कर सरोवर के पूर्वी भाग मे स्थित एक छत्री-घाट है जिसे महारानी अहिल्याबाई ने बनवाया था। दाता का स्नान सदा इसी घाट पर होता है। स्नान का दृश्य भी अत्यन्त आनन्ददायक होता है। सत्संगी बन्धु सरोवर मे कूद पड़ते हे और मस्ती से विभिन्न कीर्तन करते हुए दाता को स्नान करते हुए एवं स्नानोपरान्त मानसिक पूजा, जलाभिषेक, सूर्य नमस्कार आदि कार्य करते हुए देखते रहते है। तत्पश्चात् सभी साष्टांग प्रणाम करते हे। वापिस लौट कर आने पर भोजन होता हे। प्रायः भोजन 'दाल बाटी' का ही होता है। भोजन की यह व्यवस्था सामूहिक तोर पर की जाती है। इसका व्यय भार सत्संगी बन्धु

आपस मे समान आधार पर बाट लेते है। दाता का बालभोग निकालने के पश्चात दाता की आज्ञा लेकर ही पगत लगती हैं। सर्वप्रथम बालभोग निकालने से अधिक व्यक्तियो के भोजन करने पर भी भोजन सामग्री कम नहीं पड़ती ऐसी धारणा है। हरे हर' तथा दाता के जय जयकार के उच्चारण के साथ ही भोजन प्रारभ होता है। दाता स्वय घूम फिरकर व्यवस्था का जायजा लेते रहते हैं। भोजन का यह क्रम भी खूब आनन्द और हँसी-ठहाको के बीच पूरा होता है। दाता का हरि-हर प्राय अन्त में होता है। इस दृश्य एव अलौकिक आनन्द का वर्णन करना नितान्त असभव है। शब्दों से नहीं देखने से ही समझा और अनुभव किया जा सकता है। एक दो रसोइयो के अतिरिक्त भोजन बनाने व अन्य व्यवस्था में सभी सत्सगियों का सामूहिक सहयोग सेवा और स्वावलम्बन की भावना ही काय करती है।

भोजनोपरान्त कुछ विश्राम होता है। इसके पश्चात दाता मेले के पशुभाग प्रमुख मन्दिरो तथा यदि इच्छा हुई तो कुछ आश्रमो में साधु सतों के दर्शन हेतु पधारते हैं। इसी क्रम में पुष्कर सरोवर की परिक्रमा भी पूरी हो जाती है। सायकाल को पुन दाता मानसिक पूजा करते हैं। उस समय सब उपस्थित जन समुदाय दाता को तीन ओर से घेर खडे हो जाते है– केवल सामने का भाग खुला रहता है। यह कायक्रम कुछ ही मिनिटों का होता है। इस समय विभिन्न लोगों को नाना प्रकार के दिव्य-दशन एव अनुभूतिया होती है। पाठकों को इस मानसिक पूजा हरि-हर व अन्य दैनिक दिनचर्या जानने की उत्सुकता होगी किन्तु फिलहाल वे कृपया इतने से ही सन्तोष करें। दाता की दैनिक दिनचर्या, कायक्रम क्रिया-कलाप एव व्यवहार के सम्बन्ध में लीलामृत भाग 3 के अन्तिम भाग में एक विशिष्ट प्रकरण है जिसमें इन विषयों पर विस्तार पूर्वक विशदचर्चा समाविष्ट है।

तत्पश्चात सामूहिक सत्सग का आयोजन होता है जिसमें सब एकत्रित होकर शान्ति से बैठ जाते हैं। दाता का आसन चबूतरे पर होता है। इस कायक्रम में दाता गुरु-महिमा, सत–महिमा, सत्सग महत्व व अन्य विषयों पर स्वेच्छा पूवक प्रवचन फरमाते है। शका समाधान हेतु प्रश्नोत्तर भी होते है। फिर रात्रि जागरण में भजन कीतन। दाता इच्छा होती है तो देर रात तक इसमें सम्मिलित होते है अन्यथा विश्राम करते हैं।

इस सम्बध में अन्तिम किन्तु आवश्यक निवेदन यह है जिसका समापन 'दाता' के शब्दो में ही करना उपयुक्त होगा –

'सत्सग के लिए कोई समय पूर्व में निर्धारित नहीं किया जा सकता। इसके लिए तो बन्दे को हर समय हर पल, हर घडी तत्परता पूवक जागरूक रहना चाहिए। किसे पता है कि स्वाति नक्षत्र की बूद कब बरसे? चातक को तो

उसकी चौच प्रतीक्षा रत ऊँची उठायी रखनी चाहिए ताकि जैसे ही वह बूंद गिरे वह उसे सीधी ही कंठ में धारण करके अपनी प्यास बुझा लें; तृप्ति कर लें। इस प्रकार सीपी द्वारा भी उसी बूंद को धारण करके मुंह बन्द कर लेने पर वह बूंद ही सच्चा मोती बन जाता है। फिर उसके मूल्य का क्या कहना ?

इस अवसर पर श्री रेवती रमण शर्मा सदस्य दाता सत्संग बोर्ड जो उस समय फतहपुर में उप जिल्हाधीश थे, उन्होने दाता से प्रसिद्ध योगी संत अमृतनाथजी की तपःस्थली के दर्शन हेतु निवेदन किया। कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर दाता की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर फतहपुर चमरिया चिकित्सालय के मुख्य चिकित्सक भी आये थे। उनकी लड़की एक विचित्र रोग से पीड़ित थी। अनेक प्रयासों के बाद भी जब वह ठीक नहीं हुई तो रेवती रमणजी की सलाह पर उसे वे पुष्कर ले आये। उन्होने दाता से उसके स्वास्थ्य लाभ के लिये प्रार्थना की, दाता की कृपा से उसके स्वास्थ्य में आशातीत लाभ हुआ। इस चमत्कार से वे दाता से बडे प्रभावित हुए। उन्होने भी बडे आग्रह के साथ दाता से फतहपुर पधारने हेतु निवेदन किया। उन लोगो के विशेष आग्रह पर दाता ने पुष्कर से सीधे ही फतहपुर पधारने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

दीन दुःखियो की अपार भीड़ उस समय कमरे के बाहर एकत्रित हो गई। दाता तो बडे दयालु है उन्होंने किसी को भी निराश नहीं किया। सभी को आश्वस्त कर विदा किया। अन्त में आरती, प्रसाद वितरण और जयजयकार के साथ कार्तिक पूर्णिमा सन् १९५२ के सत्संग कार्यक्रम की समाप्ति हुई।

o o o

सत अमृतनाथजी की धूनीपर

ई सन १९५२ की कार्तिक पूर्णिमा के दूसरे दिन प्रात काल दाता, मातेश्वरी जी के सहित पुष्कर से फतेहपुर शेखावाटी के लिए रवाना हुए। शिव सिह जी, जानकीलाल जी, माधवलाल जी एव यह लेखक सेवा में साथ थे। सुजानगढ, लाडनू आदि स्थानो से होते हुए दाता सालासर लगभग [illegible] बजे पहुँचे। मार्ग लम्बा और रेतीले टीलो से भरा था। यत्र तत्र बाजरे के खेत नजर आते थे। अधिकतर चारों ओर सूखा ही सूखा था।

सालासर में बालाजी (राम भक्त हनुमान) का प्रसिद्ध मन्दिर है जहाँ दूर दूर से यात्री दर्शन करने आते हैं, जिनके विश्राम हेतु अनेक धर्मशालाएँ हैं। कहते है कि इस स्थान पर चोरी-चकारी आदि कुकर्म करने वाले को तत्काल दण्ड मिल जाता है। बालाजी के सामने नारियलों का ढेर लगा हुआ था। यहाँ के दर्शन कर तथा कुछ समय विश्राम कर आगे बढे। प्रात रवाना होने के बाद कहीं भी ठहरने का मौका ही नहीं मिला था। दाता का स्नान और भोजन भी नहीं हो पाया था। रात्रि के लगभग दस बजे फतहपुर चमरिया अस्पताल में पहुँचे। प्रमुख चिकित्सक जो पुष्कर आये थे उन्होंने पहले ही वहाँ पहुँचकर, उचित व्यवस्था कर ली थी। स्नान और भोजन आदि कार्यों से निवृत्त होकर, थके होने के कारण सभी सो गये।

प्रात काल मुख्यचिकित्सक के आग्रह पर दाता अस्पताल देखने पधारे। चमरिया अस्पताल उस क्षेत्र का एक बडा अस्पताल है जो प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ चमरियाजीकी स्मृति में चलाया जा रहा है। यह समस्त आधुनिक साधनों एव सुविधाओ से युक्त है। रोगियों के इलाज और रहने की अच्छी, स्वच्छ, सुन्दर व नि शुल्क व्यवस्था है। डाक्टर साहब सभी विभागों में साथ ले जाकर जानकारी दे रहे थे। एक्स-रे विभाग में एक्स-रे की नई मशीन आयी हुई थी। उस मशीन पर हम में से प्रत्येक की जाच की गई।

जब दाता एक्स-रे मशीन पर जाच हेतु खडे हुए तो एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। उनके हृदय की गति एकदम बन्द और श्वास का आना जाना भी रुक सा गया। सभी डाक्टर आश्चर्यचकित होकर बोल उठे, 'यह कैसे सभव हो सकता है। आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ' उन्होंने बार बार देखा, हर तरह से जाँच की किन्तु दृश्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ जाच में करीब तीन मिनिट लग गये मगर स्थिति यथावत थी। अन्त में हार कर उन्होने दाता से प्रार्थना की, भगवन्! आपकी लीला अनोखी है। अब तो आप इसे समेट लें। मशीन तो

जड़ है और आप तो चेतन स्वरूप है। मशीन बेचारी आपके शरीर का क्या पार पा सकी है।" दाता हँस पडे। तत्पश्चात् सभी कुछ ठीक नजर आने लगा। इस लीला कौतुक से वहाँ उपस्थित सभी डाक्टरगण व अन्य अत्यन्त चमत्कृत तथा प्रभावित हुए। उन्होने एक स्वर से कहा, "यह घटना अद्भुत है। मेडिकल परीक्षण के दौरान इस प्रकार की कोई घटना विश्व में कहीं घटी हो उनके अध्ययन और जानकारी में नहीं आयी।" इस पर दाता ने फरमाया, "मेरा दाता अजीव लीलाधारी है। वह सर्व समर्थ है। वह मुर्दे को भी जीवनदान दे सकता है। यह सब कुछ उसकी इच्छा पर निर्भर है। आध्यात्मिक जगत् में ऐसी अनेको विस्मयकारी घटनाएँ हो चुकी हैं।" इसी संदर्भ में उन्होने गोस्वामीजी तुलसीदासजी के जीवन प्रसंग की एक घटना सुनाई :-

तुलसीदासजी जीवन के अन्तिम वर्षों में देशाटन को निकले। मार्ग मे एक युवा ब्राह्मणी ने उन्हे सादर प्रणाम किया। गोस्वामी जी अपने इष्ट देव के ध्यान में थे। वरवस ही उनके मुख से आशीर्वादात्मक स्वर निकला, "अखण्ड सौभाग्यवती भव।" इस पर उस महिला ने करूण-क्रन्दन और विलाप करते हुए आप वीती सुनाई कि उसके पति का अभी अभी देहावसान हुआ है और शव दाह-संस्कार हेतु श्मशान ले जाया गया है। उसने रोकर कहा, "आपका यह आशीर्वाद क्या अभिशाप वनकर मुझे व्यभिचार मार्ग में प्रवृत्त करेगा? क्या मेरे भाग्य में विधाता द्वारा इस प्रकार दण्डित कुल-मर्यादा-आचरण हीन होकर पतित होना भी वदा है।"

ध्यानमग्न गोस्वामीजी यह सुनकर प्रकृतिस्थ हुए तो उन्हे वस्तुस्थिति का बोध हुआ। वे तुरन्त तेज कदमो से मरघट की ओर चल पडे। वहाँ जाकर उन्होंने शव को सामने रखा देख दीन आर्त-भाव से अपने इष्टदेव श्रीराम का मानसिक स्मरण करते हुए निवेदन किया, "प्रभु! मैं कुछ नहीं जानता और न मैंने कोई आशीर्वाद ही दिया है। तुम ही हृदय मन्दिर मे विराजकर कौतुक-क्रीडा करते हो! तुम्हारी तुम ही जानो।" उस समय की उनकी हृदयस्थ भाव भंगिमा का चित्रण ऐसा रहा होगा :-

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नाहि।
कबहुं कहुँ कि मैं किया तो तुम ही थे मुझ माहि॥

और अकस्मात् ही उनके नेत्र स्वतः ही मुंद गये। उनके आराध्य देव हृदय में प्रकट हुए। इस दिव्यानुभूति में उन्होने मुर्दे के मस्तक पर हाथ रखते हुए यह कहा :-

"तुलसी मुवा मंगाय के, मस्तक धरिया हाथ।
मैं तो कुछ जानू नही, तुम जानो रघुनाथ॥"

सभी लोगों ने आश्चर्य से चकित होकर देखा कि उनकी इस करुणा भरी नजर से मुर्दा पुन जीवित हो उठा। सभी ने रामनाम के सत्य का गतिदायक आनन्द अनुभव किया।" दाता ने फरमाया, "जब इस प्रकार प्रेमीभक्त अनन्यभाव से प्रभु के समर्पित हो जाता है तब उसका अस्तित्व तो समाप्त हो जाता है और फिर प्रभु ही शेष रह जाता है। इस प्रकार वह निराकार ब्रह्म, सदगुरु के शरीर को आश्रय बनाकर 'होनी को अनहोनी और अनहोनी को होनी' करने के खेल दिखाता रहता है, जिससे उसके नाम का महात्म्य प्रकट होकर जनसाधारण में आस्था और विश्वास सुदृढ होता है। ऐसा कौतुक-प्रिय लीलाधारी है मेरा दाता।"

इसके पश्चात दाता ने दूसरे विभाग भी देखें। अस्पताल की सुन्दर व्यवस्था से सभी लोग काफी प्रभावित हुए। स्वय दाता ने अस्पताल एव वहाँ की व्यवस्था तथा डाक्टरों के कर्तव्य-परायणता एव सेवा की भूरि भूरि प्रशसा की। इसके पश्चात रेवती रमणजी के यहाँ जो वहाँ के उपखण्ड अधिकारी थे पधार गये।

जब नगरवासियों ने सुना कि एक महान सत उपखण्ड अधिकारी जी के यहाँ पधारे हुए हैं तो अनेक लोग दर्शनार्थ पहुंचे, जिसमें डाक्टर, प्राचार्य, व्याख्याता, अधिकारी एव शिक्षक थे। प्रश्नोत्तर द्वारा शका-समाधान हुआ। सभी दाता की कम से कम शब्दों में गूढतम रहस्य को उदघाटित करते हुए सहज भाव से हृदयगम करा देने की मधुर शैली से प्रभावित हुए। इधर उधर की चर्चा के पश्चात महाविद्यालय के प्राचार्य जी ने दाता को महाविद्यालय में पधारने की और छात्रों को सम्बोधित कर आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। इस पर स्वभावत दाता ने विनम्रतापूर्वक अल्पज्ञता दर्शाते हुए क्षमा चाही। जब प्राचार्य महोदय ने अधिक आग्रह किया तो चार बजे का समय देकर उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

इसी दिन तीसरे प्रहर दाता अमृतनाथ जी की धूनी पर पधारे। यह धूनी आज तो अति सुन्दर, विस्तृत एव बडे मन्दिर के आकार में बनी हुई है किन्तु उस समय वहाँ साधारणसा छप्पर था। आधुनिक काल में अमृतनाथजी महाराज नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध, चमत्कारिक, सिद्ध महात्मा हुए हैं। उनकी इस क्षेत्र में बडी मान्यता रही है।

ये अमृतनाथ जी सवत १९०९ में जयपुर क्षेत्र के एक गाँव में जाट परिवार में पैदा हुए थे। बाल्यकाल से ही उनमें विरक्ति एव सन्यास ग्रहण करने की भावना प्रबल रही और उन्होंने विवाह बन्धन स्वीकार नहीं किया। युवावस्था में ससार की नश्वरता को पहचान कर त्याग का मार्ग अपनाया। तीर्थाटन से उन्हें जब शान्ति नही मिली तो बीकानेर क्षेत्र के नाथ सम्प्रदाय के योगी श्री चम्पानाथ जी की शिष्यता ग्रहण की। उनके चरणों की शरणागति के पश्चात उन्हें शान्ति,

आनन्द और आत्मस्वरूप की अनुभूति हुई। घूमते-घूमते वे संवत् १९६९ में फतहपुर पहुँचे और वहाँ के भक्तो के आग्रह पर धूनी रमा कर विराज गये। इसी स्थान पर संवत् १९७३ में पार्थिव शरीर को त्याग कर ब्रह्मलीन हो गये। यह स्थान आज भी प्रेरणा एवं जागृति का केन्द्र है।

वैसे सीकर जिले का सौभाग्य रहा है कि वहाँ लोसल में परमानन्द बाबा कोठारिया में बाबा नरसिंहदास जी, फतहपुर शेखावटी में सिद्ध सन्त अमृतनाथ जी एवं त्रिवेणी में गंगादास जी नामक महान् सन्त हुए है।

दाता ने इस पवित्र धूनी पर अमृतनाथ जी के अनेको रोचक प्रसंग सुनाये। कुछ का विवरण पाठको की जानकारी हेतु यहां दिया जा रहा है—

"अमृतनाथ जी मस्त-मोला, उदारमना एवं महान सन्त थे। किन्तु शरीर से वे बेडौल थे। उनका सिर और हाथ-पाँव कुछ छोटे थे। धड़ मोटा और पेट बहुत बड़ा पूरे घडे के आकार का था। ये शरीर से तथा योगसाधना मे दोनो प्रकार से महात्मा अष्टावक्र जी की भाँति थे। उनकी आकृति को देखकर कुछ मूढ़ व्यक्ति पीछे से हंसते और नकल निकालते किन्तु उनसे कोई बात छिपी नही रहती थी। एकबार एक नवयुवक पीठ पीछे खड़ा होकर उनकी हँसी उड़ा रहा था। इस पर महात्मा जी ने कहा, "जब हम देखते है तो हमें तीनों लोकों का दृश्य साफ दिखाई पड़ता है। नहीं देखते हैं तो यह भी मालूम नही पड़ता कि गेल (पीछे) वाला क्या कर रहा है।" यह सुन कर नवयुवक पानी पानी होगया। उनकी एक भविष्यवाणी भी है जो सभी के लिए रहस्य बनी हुई है—

"आयो संवत् बीसा, ईसा रहे न मूसा।"

उनका प्रिय भोजन 'राबड़ी' (बाजरे के आटे का घोल) था। उनकी पाचनशक्ति गजब की थी। कभी कभी तो वे तृप्ति का नाम ही नहीं लेते थे। उनकी भूख भी अलौकिक ही थी। ऐसा ही एक प्रसंग है—

"एकबार इसी क्षेत्र में ये कही जा रहे थे। मार्ग में एक कुएँ पर ठहरे। कृषक उन्हें पहचानता था। उसने बाबा से गाजरें खाने की मनुहार की। बाबा ने कहा, "जैसी तुम्हारी इच्छा।" किसान ने ढेर सारी गाजरें उखाड़ के ले आया और धो कर बाबा के सामने रख दी। बाबा ने गुरु महाराज को भोग लगाया और लगे खाने। किसान खेत से खोद खोद कर गाजरें लाता गया और बाबा खाते गये। किसान और उसके परिजन खोदते खोदते थक गये किन्तु बाबा खाने में नहीं थके। खोद खोद कर लाना और खाने का क्रम चलता ही रहा। गाजरें लगभग एक बीघा भूमि में थी जिसमें से करीब उन्नीस बिस्वा भूमि की गाजरें लाई जा चुकी थी। कृपक के तो होश ही गुम हो गये। वह चिन्ता करने लगा कि अब क्या होगा। बालबच्चों और पशुओ का अवलम्बन क्या होगा? उससे रहा नहीं गया और हाथ जोड़ कर बाबा से कह ही दिया, गुरु महाराज मेरे भी बाल

बच्चे हैं। उन पर भी तो कृपा करो।" बाबा तो अन्तर्यामी थे। सब कुछ समझ कर बोले, 'मैंने तो देखा कि आज खिलाने वाला यजमान मिला है, इसलिये तृप्त होकर खाऊंगा और भव भव की भूख मिटाऊंगा मगर जैसी तुम्हारी मर्जी और भाव। यदि पेट भर खा लेने देते तो तुम्हारे घर में धन का कोई अभाव नहीं रहता और तुम्हारी भूख भी सदा के लिए मिट जाती परन्तु क्या करें, तुमने टोक दिया अत अब और नहीं खायेंगे। जाओ! अब भी तुम्हारे खेत की गाजरें खाये नहीं खुटेंगी।" फिर उन्होने पानी पीकर अपनी भट्टी को शान्त किया। उनके आशीर्वाद से उस एक बिस्वा खेत में इतनी गाजरें हुई जितनी की उसके पूरे खेत में कभी नहीं हुई थीं। ऐसे विलक्षण सत थे श्री अमृतनाथ जी।

धूनी पर दाता कुछ समय तक अकेले ही रहे। अन्य लोग कुछ हट कर बैठे हुए थे। जानकीलाल जी एव माधवलाल जी ने सोचा कि दाता वहाँ अकेले क्या कर रहे हैं। वे बिना किसी के बताये हुए चुपचाप छिप कर धूनी की ओर बढे। उन्होने अन्दर से दो व्यक्तियो को बातें करते हुए देखा। आश्चर्य-वश वे आगे बढे। उन्होने बताया कि उन्होंने अमृतनाथ जी और दाता को आपस में बातें करते हुए देखा।

धूनी समाधि के दर्शन कर सभी लोग बडे आनन्दित हुए। दाता ने फरमाया 'महापुरुषों के चरणारविन्दो के ससर्ग से यह स्थान पवित्र होकर तीर्थ बन गया है। ऐसे ही तीर्थों का निर्माण हुआ है। सद्गुरु के द्वार पर मोक्ष और लक्ष्मी हाथ जोडे खडी रहती है।"

वहाँ से लौटे तब तक पाँच बज गये थे। अब महाविद्यालय को दिये गये समय की याद आयी। दाता ने वहाँ चलने का आदेश दिया, जिस पर लेखक ने निवेदन किया, "भगवन्! अब तो पाँच बज गये हैं। उन्हें तो चार बजे का समय दिया गया था। अब वहाँ चलने से क्या लाभ? महाविद्यालय तो बन्द हो गया होगा।' दाता ने फरमाया, "कुछ भी हो, जाना तो पडेगा ही।"

महाविद्यालय के भीतर और बाहर परिसर में कोई चहल-पहल नहीं थी। वातावरण पूर्णतया शान्त था। ऐसी नि स्तब्धता देख कर सभी लोगो ने समझा कि छात्र आदि लोग निराश होकर जा चुके हैं। पर ज्यो ही मुख्य द्वार के बाहर पहुँचे प्राचार्य महोदय बाहर आये। वे ससम्मान दाता एव अन्य लोगो को हॉल में ले गये। विस्मय का कोई ठिकाना नहीं रहा जब देखा कि सभी छात्र एव प्राख्यातागण शान्ति से बैठे हैं। वे सभी दाता के पधारने की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। इस अनुशासनबद्ध शान्त वातावरण ने दिलों को छू लिया।

सर्वप्रथम आचार्य जी ने दाता का सक्षिप्त परिचय दिया। फिर उन्होंने दाता से छात्रों को आशीर्वाद देने हेतु निवेदन किया। ज्यों ही दाता बोलने को हुए कि एक छात्र खडा हुआ। उसने दिवार पर लगी घडी की ओर सकेत कर

कहा, "कृपया घड़ी की ओर देखिये।" दाता ने मुस्कराते हुए कहा, "भाई ! जहाँ आपका समय समाप्त होता है वहाँ मेरे दाता का समय प्रारंभ होता है। देखना यह था कि आप जिज्ञासु हैं या नहीं। आप इस साधारण सी पढ़ाई के लिए, काफी समय ही नही, बल्कि वर्ष के वर्ष लगा देते हो, तब कही जाकर प्रमाणपत्र प्राप्त कर पाते हो। फिर मेरे दाता के दरबार की पढ़ाई तो बड़ी महत्व पूर्ण है। उसकी कोई क्या समानता कर सकता है ? वहाँ एक घण्टा क्या कई घण्टो की इन्तजार करनी पड़ जाती है। आप लोगो ने शान्ति से प्रतीक्षा की, धैर्य नहीं खोया तो मेरे राम को आना ही पड़ा।" फिर दाता ने सीधे सरल शब्दो में उनको चरित्र, कर्त्तव्य और जीवन के मुख्य उद्देश्य के बारे में बताया। 'ईश्वर प्राप्ति हमारे लिये क्यों आवश्यक है ? उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?' आदि प्रश्नो के बारे में बड़े विस्तार से दाता ने बताया। लगभग एक घण्टे तक उद्बोधन चलता रहा। सूर्यास्त हो गया था किन्तु किसी की भी उठने की इच्छा नही हुई। वक्ता और श्रोता दोनों ही इतने तल्लीन थे कि वहाँ सुई गिरने की आवाज भी सुनी जा सकती थी। उद्बोधन के बाद दाता ने प्रश्न (यदि कोई हो तो) करने को कहा। सभी ने यही कहा कि हमें अब अधिक नही पूछना है। बिना पूछे ही हमारे प्रश्नों, शंकाओ और समस्याओ का समाधान स्वतः ही आपने कर दिया। दाता ने सार रुप में कहा, "सत्संग है वही चित्त शुद्धि !"

रात्रि को वापिस वे ही प्राचार्य, व्याख्याता, डाक्टर आदि सत्संग हेतु रेवतीरमण जी के निवासस्थान पर आ पहुँचे। कुछेक द्वारा कुछ प्रश्न पूछे गये तथा शंकाएँ प्रस्तुत की गई। दाता ने सभी प्रश्नो का उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट किया तथा सभी की शंकाओ का समाधान किया। अन्त में प्राचार्य जी ने कहा, "महात्मन ! आप दाता के प्रतिलगन की फरमा रहे हैं यह तो सही है किन्तु हमारा मन बड़ा चंचल है। ध्यान में बैठते है तो स्थिर नहीं होता है। इधर उधर दौड़ता है। इसको स्थिर कैसे किया जाय ? शास्त्रो में तो अनेक विधियाँ बताई गई है किन्तु हमारा तो कोई वश नहीं चलता। कोई ऐसा सरल मार्ग हो तो बताने का कष्ट करें जिससे यह मन स्थिर हो सके।" दाता ने इस विषय पर उन्हें बड़े विस्तार से समझाया और अन्त में बोले, "मन तो स्थिर रहना चाहता है किन्तु आप लोगो को उसे वहाँ लगाने की फुरसत ही कहाँ है ? आपने उसे जहाँ और जिन विषयो में लगाया है वहाँ तो वह उछल कूद करेगा ही क्यो कि वह जानता है कि वे सब वस्तुऐं अथवा विषय-अनुराग उसके दास हैं–स्वामी नहीं। आप इस मन को समझा कर यह कह दें कि रे मन ! प्रभु मेरे है और मैं उनका दास हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य सब सम्बन्ध गौण व मिथ्या हैं। तब देखिये इस मन की स्थिरता को। किन्तु सर्व प्रथम आपको ही आपका व प्रभु का रिश्ता तय करना है। आप में निश्चयात्मक बुद्धि का अभाव है। आप अभी भी स्वार्थ और परमार्थ के बीच अधर में झूल रहे हैं। ऐसी स्थिति में मन की शिकायत करना कहाँ तक

उचित है ? आपने इस मन को जहां जहां लगाया वहां वहां से उठता रहा है। क्यों ? कारण स्पष्ट है। यह मन अच्छी तरह जानता है कि जहां आपने उसे लगाया है वह उसका वास्तविक स्थान नहीं है। वहां उसे जो आनन्द मिलना चाहिये वह मिलता नहीं है। यदि आप मन को लगाना चाहते हैं तो आप उसको सदगुरु के चरणो में जो उसका आश्रय स्थल है वहा लगा दें। इसे गुरुदेव के आदेश में पूर्णतया समर्पित कर दें फिर आपके लिए करने को कुछ रहेगा ही नहीं। गुरकृपा से मन चिन्ता मुक्त होकर शान्त व स्थिर हो जाता है। देखना केवल इतना सा है कि आपको उसकी कितनी आवश्यकता है।'

रात्रि को दो बजे तक सत्सग-वार्ता चलती रही। इसके पश्चात सभी लोग सन्तुष्ट होकर विदा हुए। अगले दिन वहां से प्रस्थान कर दिया गया।

o o o

श्री भर्तृहरिनाथ के आश्रम पर

फतहपुर से रेल द्वारा रींगस होते हुए दाता जयपुर पधारे। वहाँ नीमराणा राजा साहब श्री राजेन्द्रसिंह जी ने दाता से नीमराणा पधारने हेतु प्रार्थना की। जयपुर के प्रमुख सत्संगियों ने भी श्री भर्तृहरि जी की तपोभूमि के दर्शनो की प्रबल इच्छा व्यक्त की। अतः भर्तृहरि आश्रम होते हुए नीमराणा जाने की स्वीकृति हुई। एक बस किराये पर ली गई, जिसमें करीब ७० लोग आनन्द से कीर्तन करते हुए भर्तृहरिजी के आश्रम पर पहुँचे। भोजन बनाने की व्यवस्था आश्रम पर ही करनी थी इसलिए वे लोग १० बजे प्रातः ही वहाँ पहुँच गये।

दाता राजा साहब की कार से पधारे। दाता ने कार, जीप या अन्य गाड़ियाँ कभी नहीं चलाई थी। उस दिन एक अनोखी उल्लेखनीय घटना घटित हुई। जयपुर से भर्तृहरि जी के बीच का मार्ग विकट, टेढ़ा-मेढ़ा एवं पहाडियो से भरपूर है। थानागाजी पार करने के बाद राजा साहब से स्टेयरिंग लेकर दाता स्वयं चलाने लगे। राजा साहब को आश्चर्य तो हुआ किन्तु दाता की अजब लीलाओ पर अटूट विश्वास होने से कुछ भी संकोच नहीं हुआ। दाता ने बड़ी कुशलतापूर्वक कार का संचालन करीब पचास मील प्रति घण्टा की गति से किया। उन्होने कार को भर्तृहरि जी के आश्रम पर जाकर ही रोका। सभी लोगो के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं था, कारण दाता को इस प्रकार के वाहनो को चलाने का अनुभव तो था ही नहीं। किन्तु उनकी लीला ही अद्भुत है। होनी को अनहोनी करना व अनहोनी को होनी करना उनके बायें हाथ का खेल है।

इस तपोभूमि का अपने आप में बड़ा महत्व है। स्थान अत्यधिक रमणीक एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है, जिसका वर्णन 'लीलामृत भाग १' के पृष्ठ संख्या ३०३-३०४ पर किया जा चुका है। वहाँ पहुँच कर दाता आश्रम की पूर्वी पहाड़ी पर अकेले ही चले गये। कोई भी उनके साथ नहीं गया। न कोई जान सका कि वे ऊपर क्यो गये? लगभग आधा घण्टे बाद लौटे। उस समय दाता का मुखमंडल देदीप्यमान था। भावावेश के कारण उनके मुख और शरीर की सुन्दरता में चार चांद लग गये। इसी दिव्यानंद की अवस्था में ही उनके श्री मुख से निकल पड़ा, "तुम लोग ध्यान रखना, यहां अभी भर्तृहरि जी का पदार्पण होगा।"

दाता ने कह तो दिया किन्तु किसी ने भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वाह! री जड़ता। सभी लोग नहाने-धोने और भोजन बनाने में ही इतने तल्लीन होगये कि यह बात ही विस्मृत हो गई, और इस अन्तराल में वे महापुरुष पता नहीं कब किस वेश में आकर दाता से मिलकर चले गये। हम में से किसी को कोई होश ही न रहा। सच है :-

"करम हीन को ना मिले, भली वस्तु का योग।
दाख पके जब बाग में, होत काग कठ रोग॥"

भोजनोपरान्त सध्या समय से कुछ पूर्व ही दाता धूनी स्थल पर बिराजे। हम सब लोगों को वहां बुलवा लिया गया। सभी ने मिल कर मधुर स्वर में एक घण्टे तक कीर्तन किया। इसके पश्चात सभी को दाता ने ध्यान करने को कहा। सभी को ध्यान में भिन्न भिन्न अनुभूतियाँ एव अनभव हुए। तब सभी को दाता द्वारा दिन में कही हुई बात याद आ गई। सभी दुर्भाग्य को दोष देते हुए दु:खी हुए।

'अवसर चूके डूमडी, गाए ताल बेताल।'

अवसर चूकने के बाद क्या है? दोष तो स्वय का ही है। सच तो यह है कि हमारा जीवन वासना-कामनामय है। काम, क्रोध, मद, लोभ एव अहकार में इस प्रकार लिप्त हैं कि हमें अन्य कुछ भी दिखाई ही नहीं देता है। दाता की कृपा की कमी नहीं है। वे तो समय पर सचेत करते ही रहते हैं किन्तु हम तो स्वार्थी जीव है जो कण्ठ पर्यन्त माया के कुण्ड में ही लिप्त हैं। हमें दाता की इच्छा ही नहीं होती। केवल ठकुर सुहाती बात कर देते हैं। भला हम दाता के आदेशों का पालन क्यो करें?

दाता ने पुन सबको उत्साहित करते हुए सान्त्वना देकर भर्तृहरि जी से सम्बन्धित घटना सुनाई।– "भर्तृहरि महात्मा बनने से पूव अवतिका (उज्जैन) नगरी के प्रतापी महाराजा थे। रानी का नाम पिंगला था। दोनों में प्रगाढ स्नेह था। राजा ने एक दिन रानी के प्रेम की परीक्षा लेने की सोची। वे वन में आखेट हेतु गये। वहीं से रानी को सूचित करवा दिया गया कि आखेट क्रीडा में शेर द्वारा हमला करने में राजा मृत्यु को प्राप्त हो गये है। शेर उनके शव को लेकर भयानक जगल में चला गया है और प्रयत्न करने पर भी शव नहीं मिल सका। जैसे ही पिंगला ने यह समाचार सुना वह तत्काल ही चिता चुनवाकर सती हो गई। राजा जब देर रात्रि में नगर में वापिस लौटे तो उन्हें इस आत्मदाह का पता चला। वे चिन्तातुर एव अति व्याकुल हो गये। परीक्षा उनके लिए महगी पडी। अपनी प्रियतमा के अनन्य प्रेम एव पतिपरायणता से राजा अभिभूत ही नहीं हुए अपितु इतने व्याकुल, आर्त्त और शोक मग्न हो गये कि उनकी अवस्था एक विक्षिप्त व्यक्ति की सी हो गई।"

वे उस स्थान पर जहां रानी सती हुई थी, पिंगला! पिंगला! हाय-पिंगला! कहते कहते सतप्त हृदय से दारूण रुदन करते हुए विलाप करने लगे। उन्होने राजकार्य त्याग दिया। भूख, प्यास, निद्रा आदि समस्त आवश्यक क्रियायें उन्होने त्याग दी। उन्हें केवल एक ही बात याद रही केवल पिंगला जिसके नाम की रट लगा कर हाहाकार करते हुए उन्होने चारों दिशाओं को गुजा दिया। तभी उसी समय उधर से गुजरते हुए परमसिद्ध सत योगीश्वर श्री गोरक्षनाथ से राजा की

पात्रता छिपी न रह सकी। उन्होने राजा को मोह-पाश-बन्धन से मुक्त करने की सोची। उन्होने एक फुटी सी हंडिया ली और राजा के कुछ ही दूरी पर बैठ कर वे राजा से भी अधिक करूण एवं व्यथा पूर्ण स्वर मे चिल्ला-चिल्ला कर रुदन और विलाप करने लगे। वे कहने लगे, "फूट गई रे! नष्ट हो गई रे! मेरी हंडिया फूट गई रे! नष्ट हो गई रे! मेरी दुर्लभ वस्तु!"

राजा को प्रतिद्वन्दी के तेज शब्द और रुदन ने जहाँ एक ओर सहानुभूति के धरातल पर रुबरु ला खड़ा किया वही उसके रुदन के स्वर और फूटी हंडिया के दृश्य को देख कर विस्मय भी हुआ। राजा को हंसी आगई और पूछ ही बैठे, "महाराज! आप इतना रुदन और विलाप क्यों कर रहे है? आपकी फूटी तो एकमात्र हंडिया ही है। उस पर इतना दारूण रुदन शोभा नही देता।"

योगी गोरक्षनाथ जी ने राजा की बात सुनी-नहीं सुनी का भाव दर्शाते हुए कौतुक क्रीडा को अधिक रंग चढ़ाया और पुनः जोर जोर से विलाप करने लगे। अब तो राजा से रहा नहीं गया। वे उनकी मूर्खता पर अट्टहास करते हुए कहने लगे, "योगीराज! शोक त्यागें; तिल को ताड़ न बनायें। इतनी कम मूल्य की वस्तु के लिए आप इतना करूण क्रन्दन क्यों कर रहे है? एक टके में ऐसी दस हंडियां क्या आप प्राप्त नहीं कर सकते? फिर इतना प्रलाप क्यो?" समर्थ गुरु ने, लोहे को तपा हुआ देख कर करारी चोट कस कर मारी, "राजन्। क्या करुं, मै इस हंडियां के गुणो का कहाँ तक वर्णन करुं। मेरे लिए तो अनन्य प्रिय वस्तु ही थी। उतनी ही प्रिय जितनी तुम्हें तुम्हारी रानी।"

राजा योगी के इस समानोक्ति कथन की धृष्टता से क्षुब्ध हो क्रोधावेश म बोल पडे, "रे मूढ़! तुझे तनिक भी लज्जा नही आती। रे मति भ्रष्ट योगी! मेरी रानी और तेरी हंडिया दोनो बराबर, समान तुला मे! प्रत्युत्तर में योगी का कथन राजा को यो सुनाई पड़ा, रे मूर्ख राजा! इस तुलना में असमानता क्या है? तेरी पिंगला भी एक कौड़ी मे एक हजार मिल सकती है।" राजा स्तब्ध हो गया, किन्तु पिगला मिलने की चाह ने उसकी उत्सुकता को प्रबलता पूर्वक झकझोर दिया। उसके मुंह से यह बोल स्वतः प्रसूत हो पडे, "रे योगी! यदि तू मुझे मेरी पिंगला से मिला दे तो मैं तुझे मुंह मांगा मूल्य देने को तैयार हूँ।"

योगी ने अन्तिम प्रहार के रूप में नई लीला रच दी। तत्क्षण राजा के समक्ष दिव्य सौन्दर्यमयी उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एक सहस्त्र पिंगलायें एक साथ प्रकट हुई और प्रत्येक राजा से यही कहने लगी, "मै आपकी पिंगला हूँ।" राजा आश्चर्यचकित होकर योगी की ओर देखने लगा। योगी ने कहा, हे राजन! पहचान ले इनमें तेरी पिंगला कौनसी है।" राजा की बुद्धि चकरा गई। उसके अहं, दर्प और राजमद पर मानो किसी ने क्रूर वज्र से भयंकर आघात किया हो। वह निर्जीव मर्ति की मानिन्द योगी के सामने उसे विस्फारित नेत्रो से एक टक

देखते खड़ा रहा। योगी ने कहा 'राजन! पिंगला और हड़िया दोनों में कोई अन्तर नहीं, दोनों ही मरणशील और नश्वर हैं। नाशवान और मरण-धर्मा वस्तु हेतु सताप क्यों? जो कुछ बनता है उसका नष्ट होना अवश्यम्भावी है। जो जन्मता है उसकी मृत्यु निश्चित है। अजर अमर अविनाशी तो केवल सद्गुरु देव श्री नाथ ही हैं। उनकी शरण प्राप्त करने पर ही तुम्हारा यह मोह पाश छूटेगा कम-बन्धन कटेंगे और तभी तुम निज स्वरुप का बोध प्राप्त करके परम आनन्दित हो सकोगे।"

इस उद्बोधन ने राजा के मन का मोह मद भ्रम सशय और अन्धकार का पर्दा हटा दिया वह श्री चरणों में इस अद्भुत नैसर्गिक निजानन्द का मूल्य चुकाने हेतु स्वय को सर्वतोभावेन समर्पित हो गया। सर्व समर्थ सर्वज्ञ गुरु गोरक्षनाथ ने उसे सदा-सदा के लिए अजर अमर अविनाशी पद पर ध्रुव की भांति स्थित कर दिया।

तो यह कहानी है एक दिये और तूफान की। सघषण ने उसे बुझाया नहीं बल्कि सूर्य बना दिया, अनाथ नाथ बन गया। प्रसिद्ध नवनाथो में से एक नाथ जो कालदण्ड को खण्डित कर आज भी जीवित है। सौभाग्यशाली हैं वे जिन्हें उनके दर्शन प्राप्त होते हैं।

"अजन माहि निरजन भेंट्या, तिल मु भेट्या तेल।
मूरत माहि अमूरति परस्या, भया निरतर खेल॥" श्री गोरक्षनाथ

ऐसी वैराग्य सदीपनी कथा से वक्ता एव श्रोता सभी विरक्ति के भावसागर में आकठ विमग्न हो गए। फलत कुछ समय के लिए वातावरण में निर्मलशान्ति और मानस पटल में मौन का अद्वितीय आनन्द आविर्भूत हो गया। मौन अपनेआप में व्याख्यान है। इस स्थिति में श्रोताओ के समस्त सशय स्वत ही छिन्न-भिन्न हो गए। प्रमाण द्रष्टव्य है-

"गुरोस्तु मौन व्याख्यान शिष्या सच्छिन्नसशया।" दक्षिणामूर्ति स्तोत्र

तत्पश्चात दाता ने करुण स्वर में सम्बोधित करते हुए कहा, "यह महापुरुषों की पवित्र तपस्थली है। अत एक एक आकर वासना रहित भाव से यहाँ एक रुपया भेंट चढ़ाकर साष्टाग प्रणाम करो और दाता के चरणों में अनन्य प्रेम प्राप्ति हेतु सात्विक प्रार्थना करो।" प्रत्येक ने बारी बारी से आज्ञा का पालन किया। वहाँ की भभूति लेकर सिर ललाट, आँख कान कठ हृदय, नाभि एव बाहु प्रदेश पर लगाई तथा प्रसाद रुप में कुछ अश मुख में ग्रहण किया। इस प्रकार परमानन्द के खुशनुमा वातावरण में रात्रि के ९ बजे अन्य सत्सगी बस से जयपुर लौटे। दाता ने मातेश्वरी जी सहित अलवर होते हुए नीमराणा की ओर प्रस्थान किया।

यहाँ यह उल्लेख आवश्यक है कि भर्तृहरि जी ने इस स्थान के अतिरिक्त भी अन्य कई स्थानो पर तपस्या की है –बद्रीनाथ, केदारनाथ उज्जैन, गिरिनार, पुष्कर, आबू और मेवाड़ में भीलवाड़ा जिलान्तर्गत बदनोर के निकट पहाडी पर।

O O O

नीमराणा-प्रथम यात्रा

नीमराणा महाराजा साहव की शरणागति का प्रसंग आप लीलामृत भाग एक पृष्ठ संख्या २८७-२९४ पर पढ़ चुके है। तभी से वे अत्यन्त उत्सुक थे की दाता उनके यहाँ पधारे। इस हेतु उन्होने दाता से अनेक वार निवेदन भी किया किन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। इस वार दाता के पुष्कर से जयपुर पधारने पर जव उन्होने इस हेतु पुनः अनुरोध किया तो स्वीकृति मिल गई। राजा साहव के अनन्य प्रेम का ही यह परिणाम था कि दाता उन्हें प्यार से केवल 'राजा' कहते जवकि अन्य सत्संगी उन्हें 'सम्राट' कह कर संवोधित करते।

इसी यात्राक्रम में भर्तृहरिनाथ-आश्रम से रवाना होकर अलवर होते हुए मध्य रात्रि में दाता, मातेश्वरी जी सहित नीमराणा पहुँचे। शिवसिंह जी, जानकीलाल जी, माधवलाल जी और यह लेखक भी सेवा में साथ थे।

राजा साहव उन दिनो किले के महलो में न रह कर वागवाली कोठी में ही रहते थे। अतः उन्होंने दाता को वहीं अपने निज पूजा-गृह मे आदर पूर्वक ठहराया। राज परिवार के आनन्द की कोई सीमा नहीं रही। इस प्रथम पदार्पण का जैसे ही गाँव के निवासियो को ज्ञान हुआ, दर्शनो के लिए भीड़ उमड़ पड़ी। दिनभर दर्शनार्थियो का तांता लगा रहा। राजा साहव तो इस खुशी में दौड़ दौड़ कर अच्छे से अच्छा प्रवन्ध और व्यवस्था स्वयं ही कर रहे थे। कहीं किसी प्रकार की कोई कमी न रहे, इसके लिये वे आतुर थे। वालभोग हेतु पट्रस व्यंजन वनाये गये। जिनके अनुपम स्वाद का अनुभव करने का अवसर जीवन में पहली वार इस लेखक को मिला। हम लोगो के लिये समस्या वन गई कि क्या तो खायें व क्या छोडे, जव कि राजा साहव की मानमनुहार की कोई मिसाल नहीं थी।

संध्याकाल में शिवसिंह जी,माधवलाल जी, जानकीलाल जी, राजासाहव और यह सेवक दाता के पास सत्संग हेतु वैठे। दाता ने पुत्रवत् प्यार के साथ उदाहरण दे देकर समझाया कि सद्गुरु के चरणो में किस प्रकार प्रेम उत्पन्न होकर शरणागति प्राप्त की जा सकती है। इसके साथ ही दाता की अनन्त दयालुता का वर्णन भी ऐसे प्यार भरे सहज लहजे में वताया कि जिसकी अमिट छाप हम सव के हृदय-स्थल पर आज भी विद्यमान है। खुली आँखो से दाता के मुखारविन्द को ध्यान से देखने का आदेश मिला। हमारा मन तुरन्त स्थिर हो गया। सभी ने देखा कि दाता का पूरा शरीर ही अदृश्य हो गया। कुछ समय वाद उनके शरीर के स्थान पर एक वृद्ध सन्त प्रकट होकर वैठे दिखाई दिये। उनके सिर पर श्वेत जटा थी एवं श्वेत ही दाढी-मूंछ थी। शरीर गौर वर्ण, लम्वा छरहरा व वृद्ध था किन्तु मुख

मण्डल तेजस्वी और देदीप्यमान था। मुख पर ही नहीं बल्कि शरीर के चारों ओर तेज प्रकाश का श्वेत, पीत एवं नील रंग मिश्रित भव्य प्रभा मण्डल जगमगा रहा था जो मन, हृदय और आत्मा को इतना सुखद, सुहावना और सुन्दर लग रहा था कि उसे देखते रहने से तृप्ति ही नहीं हो रही थी। भ्रम निवारणार्थ आँखों को बार-बार मलकर मसल कर देखा किन्तु वही आनन्ददायक शान्त पद्मासनासीन साकार मूर्ति, प्रशान्त मुखमण्डल पर उन्मिलित नेत्र, मन्द-मन्द हास्यभरी आकर्षक मन-मोहिनी छवि एक अलौकिक आनन्द की आभा बिखेर रही थी। हमें, हम है यह भी होश नहीं था। केवल वे थे, और था उनका ऐसा आनन्ददायक स्वरूप। हमारा अस्तित्व उस समय लेशमात्र भी नहीं था। ध्यान समाप्ति पर दाता ने सहज-स्वभाव-वश एक एक से पूछा, "कैसा रहा?" सभी ने अपना अपना अनुभव अनुभूति बताई। सभी एक ही प्रकार के दर्शन और अनुभव से आश्चर्यचकित थे। यह स्थिति दो चार या दस मिनिट नहीं अपितु एक घण्टे भर रही होगी। यह स्मृति सी याद में दर्शन विलुप्त होने के पश्चात् हुई।

दाता के दिव्य मूलस्वरूप के दर्शनों की ऐसी सहज, निर्मल आनन्दानुभूति से हमारे मन मयूर नृत्य करने लगे। हमारा यह सुख असीम था। दाता ने सहज स्वभावानुसार प्यार से सभी को पुचकारते हुए स्वयं के शरीर की ओर संकेत करते हुए कहा "इस स्वरूप में मेरे दाता की अनन्त और अपूर्व महर है। यह एक पलक में खलक लुटा रहा है। उसकी लगन रखो उसे मत भूलो। इतना सरल और सीधा रास्ता उसके दरबार का और कहाँ है।'

दिन में डट कर भोजन करने के कारण शाम को भूख नहीं थी। फिर भी राजा साहब के आग्रह पर फलाहार लेने दाता बिराजे और हम लोग उनके सामने घेरा बनाकर बैठ गये। हँसी-मजाक के वातावरण में सभी लोग फल और कच्चे सिंघाड़े खाने लगे। दाता उस समय बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे। राजा साहब के कोई सन्तान नहीं थी। हम सभी ने मिल कर प्रार्थना की, "भगवन्! अब तो राजा साहब पर कृपा हो ही जानी चाहिए।" हमारी प्रार्थना पर दाता मुस्करा दिये। 'मौनम् स्वीकृति लक्षणम्' जानकर हमने सोचा कि शायद दाता ने हमारी बात मान ली है, अतः जय बोलते हुए बैठे बैठे ही प्रणाम कर लिया। ज्यों ही प्रणाम कर हम लोगों ने सिर उठाया और सिंघाड़े लेने हाथ बढ़ाया कि अचानक हमारे बीच में रखा पैट्रोमैक्स सीधा ऊपर उठकर कमरे की छत से जा टकराया। वह फूट पड़ा और उसके टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गये। कमरे में गुप्प अंधेरा हो गया। विचित्र आश्चर्य की बात तो यह हुई कि हम सब बैठे थे किन्तु किसी के भी न तो कांच, पीतल या लोहे के टुकड़े की ही लगी और न ही किसी को तेल का छींटा। तेल के इधर उधर छिटकने से आग भी नहीं लगी। दाता ने कृपा पूर्वक हमारी कैसे आश्चर्यचकित ढंग से रक्षा की है यह जान कर हम सब स्तब्ध रह गये। क्या यह हमारी पुकार की सफलता या विफलता का कोई संकेत था

या नहीं, यह समझने की बुद्धि हम में थी ही कहाँ ?

दूसरे दिन भी वहीं विराजना रहा। सभी लोगों को राजा साहब ने बाग, तड़ाग, बावड़ी एवं अन्य स्थान दिखाये। इन सब मे बावड़ी सुन्दर, विशाल एवं प्राचीन थी। हम में से कइयों ने इतनी विशाल बावड़ी कभी देखी नहीं थी। बावड़ी नौ मंजिल की है। प्राचीन शिल्पकला एवं श्रम का नायाब नमूना। उसके निर्माण पर क्या व्यय रहा होगा इसका अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसकी सफाई करवाने हेतु तब ठेकेदार ने चालीस हजार रुपयों की मांग की थी।

भोजन में अन्य व्यंजनों के साथ बाजरे की रोटी और कटहल का आचार था जो हमारे लिए नया ही था। बाजरे की रोटी और कटहल का आचार इतना स्वादिष्ट था कि उसके स्वाद की स्मृति आज भी बनी हुई है।

राजा साहब नान्दशा से एक गाय दाता-भण्डार से मांग कर सेवा करने हेतु नीमराणा लाए थे। उसका नाम 'देवरी' था। दाता उसको देखने पधारे। हम सभी ने उस गाय के दर्शन कर उसे प्रणाम किया। वह गाय इतनी हृष्ट-पुष्ट मस्त, सुन्दर, लम्बी, ऊँची, साफ, सफेद दूधिया रंग, मोटे गोल घूमे हुए सींगों वाली थी कि उस पर दृष्टि ही नहीं ठहरती थी। उसका प्रत्येक अंग, रूप-रंग सब कुछ जैसा मनोहर था वैसा ही सुन्दर, सुडौल, चमकदार और सफेद रंग का उसका बछड़ा भी। राजा साहब उसकी मातृवत् सेवा कर रहे हैं यह तो स्वतः स्पष्ट हो रहा था। दाता को देखते ही देवरी सामने आगई और पूंछ हिला-हिला कर प्रेम प्रकट करने लगी। कभी नृत्य के रूप में उछलती तो कभी हाथ पैर चाटने लगती। दाता ने बडे प्रेम से उस पर हाथ फेरा, उसको पुचकारा और बड़ी देर तक उसके पास खडे उसे सहलाते, पुचकारते और बतियाते रहे। उन्होंने राजा साहब से कहा, "राजा ! यह तेरी सभी सात्विक मनोकामनाओं की पूर्ति करेगी।"

नीमराणा में राजा साहब ने जिस प्रेम से दाता की सेवा की उसका तो कहना ही क्या ? उनकी इच्छा और प्रार्थना थी कि दाता वहाँ कुछ दिन और विराजें किन्तु समयाभाव के कारण तीसरे दिन दिल्ली के लिए वहां से प्रस्थान हो ही गया। इस यात्रा ने एक सुखद एवं आनन्ददायक स्मृति छोड़ी।

O O O

दिल्ली यात्रा प्रसंग

नीमराणा से विदा होकर दाता सीधे दिल्ली पधारे। यह यात्रा सेठ हरिराम जी नाथानी की प्रार्थना पर हुई थी। नाथानी जी भीलवाड़ा जिले के प्रसिद्ध औद्योगिक प्रतिष्ठान 'दूदूवाला कम्पनी' के भागीदार थे। उनका अभ्रक (Mica) का अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यवसाय था। वे राम-राज्य-परिषद के टिकिट से चुनाव जीत कर तत्कालीन प्रथम लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे। उस विजय का श्रेय वे दाता की कृपा को ही मानते थे। उन दिनों वे दिल्ली में ही रह रहे थे। दिल्ली प्रवास में दाता उन्हीं के यहां विराजे।

नाथानी जी ने दाता एवं उनके साथवालों की सेवा-सत्कार व्यवस्था में किसी प्रकार की कमी नहीं रखी। नित्य प्रति यमुना स्नान का पुनीत लाभ मिलता। जल क्रीडा ने, भगवान श्रीकृष्ण के यमुना प्रेम, गौचारण रास लीला आदि बाल्य-काल की ऐसी अनेक जीवन स्मृतियाँ जगा दी। जिनका वर्णन करते दाता कभी नहीं थकते थे। इस प्रवास में दाता का कार्यक्रम घूमने-फिरने विशिष्ट व्यक्तियों से मिलने और दर्शनीय स्थानों के भ्रमण का रहा। इसी उपक्रम में जहां लाल किला, जामा मस्जिद, बिरला मन्दिर, कुतुबमीनार, लोकसभाभवन राष्ट्रपति उद्यान आदि ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सामाजिक महत्व की प्रसिद्ध इमारतों का अवलोकन किया गया वहीं दिल्ली की ऐतिहासिक गौरव-गाथा भी चर्चा का विषय बनने से वंचित नहीं रही। उन सब का उल्लेख इस संदर्भ में करना अनावश्यक है।

यहाँ दाता के दर्शन एवं सत्संग लाभ हेतु अनेक लोकसभा सदस्य, प्रतिष्ठित राजनेता व्यवसायी एवं उच्चाधिकारी आये। माननीय श्री गुलजारीलाल जी नन्दा तथा श्री लाल बहादुर जी शास्त्री के आग्रह पर तो दाता उनके निवास स्थान पर भी पधारे। अपनी सरल किन्तु प्रभावी बोली द्वारा गूढ आध्यात्मिक विषय को सहज ही हृदयगम कराते हुए दाता ने राजनीति में कल्याणकारी लोक भावना, राष्ट्रप्रेम और चारित्रिक महत्व पर भी प्रकाश डाला। प्रवचनों में व्यक्ति और समाज, उसके कर्तव्य और उत्तरदायित्व, जनचेतना और शिक्षा सामाजिक और औद्योगिक विकास और उन्नयन आदि विषय भी अछूते न रहे। प्रजातन्त्र में व्यक्ति का स्थान सर्वप्रथम सम्माननीय है। इस इकाई से समष्टि की दहाई की ओर बढते-बढते 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है। सार-संक्षेप में उन सभी का केन्द्रीय बिन्दु लोकसेवा से ईश्वरोपलब्धि रहा। पीडित मानव की सही दिशा में सच्ची सेवा करना ही राजनीतिज्ञों के लिए ईश्वरोपासना के तुल्य है—यह दिशाबोध कराना ही इस यात्रा का मूल आशय रहा।

अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम और गम्भीर से गम्भीर विषयो के प्रतिपादन के बावजूद भी दाता सदा सहज रहते है। उनकी लीला, आमोद-प्रमोद और कौतुक क्रीडा की हलकी-फुलकी फुहारे, सदा शीतलता और आनन्द लुटाने में सहायक सिद्ध होती रहती है। ऐसी ही एक विस्मयकारी लीला भला यहां घटने से क्यो वंचित रहती!

हुआ यह कि नाथानी जी के एक बंगाली मित्र राष्ट्रपति सचिवालय में एक सन्मानीय उच्चाधिकारी थे। बंगाली होने के नाते कला, संगीत, संस्कृति, दर्शन और शक्ति की उपासना के प्रति अगाध निष्ठा तो उनमें थी ही, इसके साथ साथ भारतीय ज्योतिष शास्त्र एवं हस्त सामुद्रिक मे उनकी विशेष अभिरुचि भी थी। जानकारी मिलते ही वे दर्शनार्थ उपस्थित हो गये। उन्हे ऐसा अनुभव हुआ कि मानो परमहंस देव श्री रामकृष्ण साक्षात् पुनः प्रकट हो गये हो। इस आनन्दमयी अनुभूति की पुष्टि हेतु उनके मन में कौतूहल जागा। उसी दौरान उन्होने नाथानी जी के माध्यम से प्रार्थना करवाई की यदि अनुमति हो तो वे दाता का हाथ देख हस्त रेखाओ के अध्ययन द्वारा मन के संशय का निवारण करलें। ऐसे मामलो में दाता कभी कभी नटखट नटवर का सा आचरण करते रहते है। उनकी सहज जिज्ञासा जानकर, दाता के मुख पर त्वरित गति से बाल सुलभ चापल्य-चंचलता चमक उठी। इस गति-मति में उन्होने अपने दोनो हाथ उन भद्र महाशय के सामने खोल दिये।

बंगाली बाबू ने पहले दाहिना हाथ देखा। तुरन्त ही उसने उसे छोड़ बांया हाथ देखा! और फिर दोनों हाथो को विस्फारित नेत्रो से बारी बारी से देखने लगे। इस प्रक्रिया में उनके मुख और नेत्रो की भावभंगिमा एक नाटकीय परिवर्तन पैदा कर रही थी। अन्त में वे कभी दाता के दोनो हाथों को एक साथ देखते, कभी एक एक कर और कभी दोनो हाथ छोड़कर रूमाल से आंखे साफ करके, चश्मे के संतुलन को व्यवस्थित करते हुए दाता के मुख मण्डल की ओर निहारते और तब उसके विस्मय का स्त्रोत फूट पड़ा, "ठाकुर! यह क्या लीला करते हो! दोनो हाथो में एक भी रेखा नहीं! अपनी लीला समेटो! मेरा दृष्टि भ्रम दूर करो!" यह कहते कहते उनके विशाल नेत्रो से अश्रुबिन्दु कपोलों पर लुढ़क पडे।

दाता ने मन्द मन्द मुस्कराते हुए कहा, "अच्छा, अब देखो!" और तब! उसी प्रक्रिया और भाव-भंगिमा की पुनरावृत्ति प्रारम्भ होगई। अब उन्हे दोनो हाथो की सभी रेखाऐं और विभिन्न स्थानों के उभरे शिखर (Mounts) स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। वे लगभग २० मिनिट तक कभी इस हाथ का और कभी उस हाथ का-हर कोण से अध्ययन करते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने गहरी उसासें लेते हुए माथा टेक दिया। फिर विश्लेषण यों प्रकट किया, "मेरा हस्त सामुद्रिक क्षेत्र में-पूर्वीय और पाश्चात्य दोनों ही पक्षों का-विस्तृत अध्ययन-अनुभव हैं किन्तु मैंने

आज तक ऐसे सर्वश्रेष्ठ हाथ की कभी कल्पना ही नहीं की थी। आज का मेरा यह अनुभव विचित्र है। इसके आधार पर मैं अपने गुरुकृपा के बल पर यह कह रहा हूं कि इन हाथो के धनी, सर्वश्रेष्ठ महापुरुष हैं जिनकी शक्ति, भक्ति और सामर्थ्य बेमिसाल है। इन्हें ईश्वर का अवतार तो क्या-साक्षात वासुदेव श्रीकृष्ण ही कहूं तो मेरे कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।"

इस कथन के बाद उसने प्रार्थना की "प्रभु ! यह मेरा व्यवसाय नहीं है। केवल जिज्ञासा पूर्ति का माध्यम है। आप मुझ पर कृपा रखें। मेरी उपासना में चैतन्य रूप से प्रकट होकर मेरे मार्ग को आलोकित करते रहें ताकि अन्त में मैं मेरे इष्ट में समाविष्ट हो जाऊं।"

इस कथन से उपस्थित समुदाय आश्चर्यचकित रह गया। सभी ने दाता की ओर निहारा तो पाया कि वे गम्भीर भाव समाधि में मग्न है।

कुछ देर पश्चात प्रकृतिस्थ होने पर दाता ने कहा, 'मेरे दाता की लीला विचित्र है। यदि वह गधे के सिर पर मखमल की रत्नजटित झूल ओढा कर उस पर अमूल्य रत्न, केशर, कस्तूरी, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थ एव अन्य बहुमूल्य वस्तुओं की खेप लादता है तो इसमें बेचारे गधे की क्या महत्ता है ? माल तो मालिक का ही है। गधे को तो बोझ ढोना अपरिहार्य है। यदि भूल से भी उससे बचने की कोशिश करता है तो ऊपर से तडातड डडे की मार सहनी पडती है। अब भला तो इसी में है कि मालिक के इशारे पर सीधा चलते हुए भार ढोता रहे। मेरा राम तो मेरे दाता का ऐसा ही एक दीन मरियल सा गधा है। अन्य सब विशेषणों अलकारो का धनी मेरा दाता ही है।

दाता के स्वभावगत बुद्धिचातुर्य की यह एक ऐसी शोभा हैं कि वे इतनी वेगवान विद्युतगति-सिंहलाघव की तरह पैंतरा पलट कर बच निकलते हैं कि सामने वाला चाहे कितना ही ज्ञान, विद्वत्ता पाडित्य और तर्क बल का सहारा ले उन्हें शब्द-जाल की सीमा में बाध नहीं पाता। दाता येन केन प्रकारेण गली निकाल कर उस शिकन्जे से अपने आपको मुक्त कर लेते है। प्रति पक्षी दाता की इस गणेश बुद्धि के समक्ष अपने आप को चारों खाने चित्त पाकर हाथ मलते हुए वाह ! वाह ! करने लग जाता हैं। उस समय यही दशा उपस्थित मडली एव बगाली महाशय की हुई।

दाता की हस्त रेखाओं से चमत्कृत होकर उस बगाली भद्र पुरुष ने विनती की, "यदि दाता अनुमति दें तो वे महामहिम डॉ राजेन्द्र प्रसाद जो भारतीय गणतत्र के प्रथम राष्ट्रपति से उनकी भेंट कराने की पहल कर सकते हैं। राष्ट्रपति जी स्वय सन्त पुरुष है और उन्हे दाता जैसी विभूति से मिलकर अति प्रसन्नता होगी।" इस पर दाता ने अपनी काया की ओर अगुली से सकेत करते हुए उत्तर दिया, "हमारे राष्ट्रपति जी सदा प्रसन्न रहें इसके अतिरिक्त मेरे राम को कुछ

नही करना है ।" इस कथन का स्पष्ट अर्थ प्रकट करते हुए दाता ने आगे रूपक मे यो समझाया, "यह कायारूपी राष्ट्र है जिसमे 'सुरता' रूपी सुन्दरी का वास है। इसके पति रूप मे वह परब्रह्म परमेश्वर सदा हृदय स्थल में निवास कर रहे है। यदि यह सुन्दरी इस प्रीतम को ही एक निष्ठ भाव से प्रसन्न करने में सफल हो जाए तो वह अमर सुहागिन है। मेरे राम को तो महज इसी राष्ट्रपति को सदा प्रसन्न रखने से सरोकार है।" फिर आगे कहा,

"औरों के पिया परदेश वसत है, लिख लिख भेजे पाती।
मेर पिया मेरे घर वसत है, कतहु न आती जाती ॥" –मीरा

तत्पश्चात् पुनः फरमाया,

"संतन को सीकरी सो कहा काम।
आवत जात पनहियाँ टूटी विसर गयो हरिनाम ॥"

दाता मे अवसर-वोध इस गजव का है कि वे कभी भावावेश में नहीं वहते। उनकी दृष्टि सदा यथार्थ के धरातल पर केन्द्रित रहते हुए ही उचित निर्णय तत्क्षण करने में सक्षम है। इनमें अवसर-वोध की अनुकूलता आंकने की अद्भुत शक्ति है। ये हर कदम फूंक फूंक कर धरते है और हर शब्द सोच सोच कर वोलते है। इस अंग्रेजी कहावत के मर्म को शायद ही इनसे अधिक कोई जान पाया है:–

"Look before you leap; Think before you speak."

ये एक ऐसे वटोही है जो चलने से पूर्व वाट की पूरी छानवीन कर लेते है। अस्तु इसी मर्म के अनुसार इन्होने उस वंगाली सज्जन द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रपति से मिलन का प्रस्ताव सविनय अस्वीकार कर दिया। सच है:–

"पूर्व चलने के वटोही वाट की पहचान करले।
किन्तु जग के पंथ पर यदि, स्वप्न दो तो सत्य दो
स्वप्न पर हो मुग्ध मत हो, सत्य का भी ज्ञान कर ले।"

क्या डॉ. हरिवंश राय 'वच्चन' ने अपनी इस काव्य पदावली में निहित तत्व को श्री दाता जैसे सन्तो से ही जाना है ?"

वास्तव में देखा जाय तो दाता का उपर्युक्त कथन उनकी स्वाभाविक विनम्रता और निरहंकार वृत्ति का ही परिचायक है जिसका काफी विवेचन लीलामृत भाग १ के 'सदगुरु समर्थ के रूप में दाता' नामक प्रकरण में किया गया है। अस्तु इस संदर्भ में इतना लेख ही पर्याप्त है कि महापुरुषो का यह नमनशील स्वभाव ही है जो उन्हें प्रतिष्ठा के शीर्षासन तक पहुँचाता है। भक्त प्रवर महाकवि गो. तुलसीदास जी जव प्रतिष्ठा के उच्चतम शिखर पर थे तव उन्होने भी ऐसा ही दैन्य भाव दर्शाया है:–

"आपु हौं आपु को नीकें कै जानत, रावरो नाम मरायो बढायो ।
कीर ज्यो नाम रटे तुलसी कहे जग जानकी नाथ पढायो ॥
सोइ है खेद जो वेद कहै, न घटे जन जो रघुबीर बढायो ।
हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोइ नाम गयद चढायो ॥"

'दाता अपने आप को अपने दाता का खर कहलाना पसन्द करते है जबकि तुलसीदास जी 'खर के असवार' बनते हैं । इस मामले में दाता उनसे भी आगे है । वस्तुत दाता 'खर' न होकर हरती' है— गणेश की भांति जो सब देवताओ में प्रथम पूज्य है और वन्दनीय हैं । वे लोकनायक हैं और है समग्र भारतीय अस्मिता के श्रेष्ठतम सर्वमान्य प्रतीक । 85130

इसी प्रवास में एक दिन सेवा में साथ गये बन्दों ने दाता से निवेदन किया "यहाँ हमें आनन्द नहीं मिला । हमारे लिए तो यही कथा चरितार्थ हुई, दिल्ली गये और भाड झोकी ।" दाता ने हँसते हुए कहा, 'क्यों थोथी बातें करते हो ? आनन्द दिया नहीं लिया जाता है । मेरा राम कुछ थक गया है इसलिये अभी तो सोयेगा । यदि तुम लोग ध्यान करना चाहते हो तो इस कम्बल को देखते रहना ।" आगे का वर्णन श्री जानकीलाल जी ध्यारा के शब्दों में —

ऐसा कह कर दाता एक चौकडीदार काली कम्बल ओढ कर लेट गये । मातेश्वरी जी सहित हम सब लोग दाता के चारों ओर बैठकर खुली आँखों से कम्बल को ध्यान से देखने लगे । थोडी देर में ही हमारे मन स्थिर होगये । हृदय में आनन्द की तरगें हिलोरें लेने लगी । हमारा मन निर्मल होगया । हमें किसी बात की कोई सुधि नहीं रही । अपने आप को भूल कर हमने 'अपने आप' को पा लिया । उस तन्मय तल्लीन अवस्था में समय चक्र का बोध भी समाप्त हो गया । दाता जब सोकर उठे तब हमारा ध्यान भग हुआ । हमें ऐसा लगा जैसे अभी ४-५ मिनिट ही हुए हो । अत हमने दाता से अर्ज किया, 'भगवन ! आप तो जल्दी ही उठ गये ।" दाता ने दिवार की घडी की ओर सकेत कर कहा कि उधर देखो । हमारे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा कि हमें ध्यान में बैठे एक घण्टे से भी अधिक समय हो गया था । आज जीवन में पहली बार समझ में आया कि वास्तविक ध्यान का अर्थ और आनन्द कैसा होता है । निःसदेह दाता ने तब हमारी कही गई उक्ति के कथन को उल्टा चरितार्थ करते हुए यह कहने को विवश कर दिया — दिल्ली गये और शहशाही लूटी ।'

वैसे तो दाता अनेक बार दिल्ली पधारे हैं किन्तु इसके बाद की दो बार की दिल्ली यात्रा का सक्षिप्त वर्णन प्रसगवश उचित होगा । यद्यपि दाता विश्व बन्धुत्व एव वसुधैव कुटुम्बकम की उदार भाव नीति निर्धारण करने वाले दिव्य

दृष्टि सम्पन्न महापुरुष तो है ही तथापि इस वृहत् दृष्टि की आड़ में स्वदेश व यहाँ के निवासियो की प्रगति और उत्थान का पक्ष भी इनकी सूक्ष्म दृष्टि मे सदा विद्यमान रहता है। ये केवल आध्यात्मिक क्रांति का नेतृत्व करके ही संतोष नही करते अपितु यहाँ की सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक, शैक्षणिक प्रगति के साथ साथ कृषि, पशुपालन और उद्योग ही नही देश के सर्वांगीण सामाजिक विकास के प्रति भी उतने ही जागरुक है। हमारी प्रगति और विकास की सोपान का हर कदम इनकी व्यापक दृष्टि से ओझल नही रहता।

अखिल भारतवर्षीय खाद्य एवं कृषि तथा औद्योगिक प्रदर्शिनी का आयोजन सन् १९५५-१९५६ में दिल्ली मे हुआ तो श्री समुद्रसिंह जी की प्रार्थना पर दाता दिल्ली पधारे। बीकानेर हाऊस मे उन्ही के यहाँ विराजना हुआ। सेवा मे श्री शिवसिंह जी एवं यह लेखक साथ था। दोनो ही प्रदर्शनियो को दाता ने घूम फिर कर देखा। विदेशो से आयी सामग्री और वस्तुओ की जहाँ सराहना की वहाँ यह भी स्पष्ट किया कि यदि उचित सुविधा, अवसर, संरक्षण और प्रोत्साहन मिले तो हमारा देश और देशवासी इससे भी अधिक प्रगति करके दिखा सकते है। सैकड़ो वर्षो की पराधीनता ने हमारे मन और मस्तिष्क मे हीनता पैदा कर दी है जिसकी वजह से हमें विदेशी वस्तुएँ श्रेष्ठ लगती है और हम अपने देश, काल, सीमा, परिस्थिति, ऋतु परिवर्तन और अपनी भूमि की उर्वरा शक्ति का सही मूल्यांकन नहीं कर पा रहे है। यह देश सोने की चिड़िया कहलाता था और विदेशी आक्रमणकारी यहाँ की अतुल धनसम्पत्ति, श्रीवैभव से ही आकर्षित होकर तो यहाँ आया करते थे। यह सब इतिहास की बात है, आप जानते है। आज भी हमारा देश वही है। माँ प्रकृति ने अपने समस्त मुक्त हस्त से यहाँ भरपूर श्रीवैभव, खनिज सम्पदा और सुषमा बिखेरी है। हमे तो केवल उचित दोहन और उपयोग करने की आवश्यकता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब हम अपने अन्यतम दुर्गुण, फूट, कलह और स्वार्थपरायणता से मुक्ति पाकर राष्ट्रहित का सर्वोपरि संधान करें। हमें अन्य शत्रुओं का उतना भय नहीं है जितना आन्तरिक शत्रुओ का।

हमारा देश कृषिप्रधान देश है। कृषि का मुख्य आधार खाद है। खाद हमें पशु-पालन से प्राप्त होता है। तदर्थ ही प्राचीन मनीषियों ने गाय को हमारी आर्थिक इकाई का मुख्य स्तम्भ और आधार बनाया था। हमारी आर्थिक और सामाजिक श्रेष्ठता पशुधन की संख्या पर निर्धारित होती थी। आज भी हमारी गायें इतनी समर्थ है कि यदि हम उनकी उतनी ही सार-सम्हाल, सुख-सुविधा और चारे-बाँटे की व्यवस्था करें जितनी विदेशी करते है, तो वे पुनः इस देश में दूध-घी की नदियाँ बहा सकती है। इसी प्रकार राजस्थान प्रान्त के मारवाड़ खंड के बाजरे की फसल, उसकी ऊँचाई, सिट्टे की डेढ़ फिट लम्बाई, उपज आदि किसी अन्य विदेशी उपज की समानता में कम नहीं ठहरती। मेवाड़ प्रान्त की मकई की फसल, उसके भुट्टे की एक फुट लम्बाई और प्रति एकड़ उपज समान स्थिति के किसी

मुकाबले में उन्नीस नहीं इक्कीस ही ठहरेगी। वस्त्र उद्योग में आज भी बनारसी वस्त्र, काजीवरम् की साड़ियाँ और हाथकरघे के वस्त्र विशेष स्थान बनाये हुए हैं। उद्योग-धन्धों की कुशलता में तो आज भी भारतीय मारवाड़ी, गुजराती, सिंधी आदि सिक्का जमाये हुए हैं।

अत हमारी प्रगति का मूल स्वर होना चाहिए— स्वदेश प्रेम पर आधारित स्वदेशी चिन्तन, क्रियान्वयन और भेदभाव भुलाकर अपनी शक्तिक्षमता का समुचित स्वार्थरहित प्रयोग। तभी हम पुन शीर्षस्थान प्राप्त कर सकेंगे अन्यथा प्रगति के ये सब्ज बाग तो आकाश कुसुम और दिवा-स्वप्न ही बने रहेंगे। हमारे चिंतन, मनन और क्रियान्वयन की विचारधारा में आमूल चूल परिवर्तन की प्रथमत आवश्यकता है। हमारे देश का भविष्य अति सुन्दर और उज्ज्वल है। ये हैं वे कुछ उद्गार भरे मार्मिक उद्गार जिन्हें दाता ने तब उन प्रदर्शनियों को देखकर प्रगट किये।

दिल्ली से लौट कर दाता को जयपुरवासियों के प्रेम के वशीभूत होकर तीन दिन तक और रुकना पड़ा। इसी बीच श्री जानकीलाल जी एव श्री माधवलालजी अवकाश समाप्त हो जाने से लौट गये। इस लेखक को भी अपने कार्यस्थान पर दिनांक १६-११-५२ को लौटना था। सत्रह दिन का अवकाश समाप्ति पर था। उसने दाता से निवेदन किया और जाने की आज्ञा चाही जिस पर दाता ने फरमाया "कल प्रात चार बजे रवाना होकर दस बजे तक पहुंच जावेंगे।"

इस आश्वासन के बावजूद भी मन में बेचैनी और घबराहट बनी रही। दाता और उनके कथन पर पूरा विश्वास होते हुए भी विश्वास न करना अपराध ही नहीं घोर अपराध है। किन्तु मन की गति विचित्र है। लेखक के मन की अशांति बनी ही रही कि सेवाकाल में कभी समय की चोरी की नहीं अवकाश शेष नहीं, नहीं पहुंच सकें तो क्या होगा? दूसरे दिन प्रात चार बजे ही वे रवाना हो गये। मार्ग में अजमेर भी नहीं ठहरे। फिर भी मन में संशय बना रहा कि समय पर नहीं पहुंच पाये तो क्या होगा? यही अहकार से परिपूर्ण भाव-विचार आते रहे। तभी अचानक जीप का एक टायर फूट गया। अतिरिक्त स्टेपनी नहीं थी अत उसे ही ठीक करके देवगढ़ पहुंचे। उस समय तक दस बज गये थे। कुछ आगे बढ़े कि पेट्रोल की टंकी में छेद हो गया और पेट्रोल निकलने लगा। उस पर साबुन लगाकर आगे बढ़े। तब तक दिन का एक बज गया था। अब तो मन में भयकर उथल पुथल हुई। मन असत्य का सहारा लेने लगा। सोचने लगा कि चार बजे भी पहुंच गये तो समय लगा कर हाजरी लगा दूँगा। इन कुविचारों के आते ही दाता ने लीला रच डाली। करेडा पहुंचते पहुंचते ही दिन के चार बज गये। मन में ईमानदारी का गर्व था अत पुन चिन्ता सताने लगी। यह विचार तो आया ही नहीं कि एक दिन के अवैतनिक अवकाश का ही तो प्रश्न है। दाता का स्वभाव विचित्र है। वे मन के अहकार पर कस-कस कर चोट मारा करते है। लेखक के साथ भी वही हुआ।

करेड़ा से आगे बढे कि पेट्रोल की टंकी ज्यादा फट गई और उसमें से सारा पेट्रोल निकल गया। पेट्रोल रायपुर से लाया गया तब तक रात्रि के आठ बज गये। वहाँ जाने पर ज्ञात हुआ कि उस दिन पूरा विद्यालय वन भ्रमण पर था। अतः मन में कमजोरी आयी और उसके प्रभाव में बहते हुए दाता से पूछ ही लिया, "भगवन! आज दस बजे पहुँचना था किन्तु विद्यालय के सभी विद्यार्थी एवं अध्यापक वन भ्रमण के लिए गये थे, विद्यालय लगा नही अतः हुक्म हो तो हस्ताक्षर कर दिये जाएँ।" यह सुनते ही दाता गंभीर हो गये और कुछ देर बोले ही नही। फिर कुछ नाराजगी के लहजे मे उत्तर दिया, "क्या तुम इसका उत्तर मेरे दाता से जानना चाहते हो। व्यक्ति कर्म मे स्वतंत्र है किन्तु फल तो कर्माधीन है।" इसके बाद लेखक को वही से रायपुर के लिए रवाना कर दिया। छः मील की दूरी पैदल चल कर रात्रि के दस बजे रायपुर पहुँचा और दाता रात्रि के दो बजे नान्दशा पहुँचे।

पैदल चलते हुए मार्ग में लेखक के मन मे विचारो की दौड़ चलती रही। हाँ और नही के उहापोह मे ही पूरा मार्ग कट गया। ईमानदारी और बेईमानी का झगड़ा होता रहा। कभी नैतिकता का पलड़ा जोर मारता तो कभी अनैतिकता हावी होती। अन्त मे यही निर्णय हुआ कि थोडे से लाभ के लिए इतनी बेईमानी नही करनी चाहिए। मन मे कुछ शान्ति आयी किन्तु रायपुर पहुँचते ही मित्रमण्डली के कथन पर मन में वापिस विकृति आ गई। मित्रो के आग्रह पर मन ने हार मान ली। रजिस्टर मे उपस्थिति अंकित कर दी गई व हस्ताक्षर भी। बात आयी-गई हुई किन्तु मन का चोर कुलमलाने लगा। आत्मा से आवाज उठी, "तुमने बेईमानी की है अतः तुम्हे इसका कठोर दण्ड मिलेगा।" मन और आत्मा का द्वन्द फिर भी शान्त नही हुआ। इसी उधेड़ बुन में सो भी नही पाये।

प्रातःकाल उठने पर पाया कि आँखे लाल होकर सूज गई है। कुछ समय बाद ही आँखो मे दर्द होने लगा। डाक्टर को बुलाया गया व आँखो में दवाई डलवाई गई किन्तु सब व्यर्थ। दर्द बढ़ता ही गया। दिन के तीसरे पहर तक तो असह्य हो गया। दर्द इतना बढा कि उठना-बैठना दुश्वार हो गया। अनेक उपचारो के बावजूद दर्द बढ़ता ही गया। हालात इतने बढ़ गये कि सिर फोड़ कर मर जाने की इच्छा होने लगी। शिवसिह जी ने दाता के चित्र के सामने पुकार भी करवाई किन्तु वह भी निष्फल। अन्त मे यही निर्णय हुआ कि नान्दशा पहुँचा जाए। अतः जैसे-तैसे नान्दशा पहुँचे। दाता ने भी हालत देख कर चिन्ता प्रकट की। दर्द बढ़ता ही गया। रात्रि के बारह बजते बजते तो इतनी पीड़ा होने लगी जिसका वर्णन करना कठिन है। उस दर्द से छुटकारे का कोई मार्ग दिखाई नही दे रहा था। अन्त में केवल एक ही मार्ग सामने आया कि जैसे तैसे प्राण त्याग कर इस दर्द से छुटकारा पाया जाए। कुएँ में कूद पड़ना ही सरल होगा। यह निर्णय कर सांकल खोल बाहर आया। दर्द आँखो का था व माया दाता की।

बहुत भटकने पर भी कोई कुआ नहीं मिला। हार-थक कर बाहर चबूतरी पर बैठा। दर्द से बेहाल, भयंकर तड़पड़ाहट, आखिर मुंह छूट ही गया और जोर जोर से फूट फूट कर रोने लगा।

रोने की आवाज सुनकर करुणामयी माँ का हृदय द्रवित हो गया। उसका वात्सल्य भाव जाग उठा। उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने देखा कि दाता सो रहे हैं। वे चरणों की ओर जा खड़ी हुई और विनयपूर्ण स्वरों में प्रार्थना करने लगी 'नाथ! मास्टर साहब बहुत दु:खी हो रहे हैं। उनका दर्द असह्य है। उनपर कृपा करो। उनके अपराध को क्षमा कर दो।" मां की इस ममतामयी प्रार्थना ने दाता के हृदय को विगलित कर दिया। दाता तो स्वयं करुणा के सागर हैं। वे किसी को कुछ भी कष्ट नहीं देते हैं फिर अपने बन्दों को क्यों देने लगे। किन्तु नाथ ही मर्यादा पुरुषोत्तम तथा विश्व के संचालन करता शासक भी। उनका जो भी कार्य होता है वह न्याययुक्त और बन्दे के हित का ही होता है। मां की प्रार्थना सुन वे उठे और बाहर पधारे।

बाहर आकर दाता ने पूछा, मास्टर साहब! क्या आँखें ज्यादा दुःख रही है? अरे! आप तो रो रहे हैं।" यह कह कर उन्होंने पुचकार लिया और अन्दर दाता की आसन वाली चबूतरी के पास ले जाकर बोले "यहां सो जाओ।" दाता यह आदेश देकर वापिस पधार गये। मैं वहां लेट गया। लेटते ही एक मिनिट भी नहीं बीता होगा कि नींद आ गई। सारा दर्द काफूर हो गया।

प्रातः सात बजे सोकर उठा तो दाता ने फरमाया, 'बकरी का दूध दोनों समय आंखों में डाला करना।" दर्द दाता की कृपा से तत्काल शान्त हुआ किन्तु उसका श्रेय स्वयं न लेकर दिया बकरी के दूध को। कैसी विचित्र लीला है दाता की।

एक छोटी सी बेईमानी से यह दशा हुई। दाता ने भी कृपा कर उसका फल तत्काल ही देकर क्षमा कर दिया। इस तरह आखें दुखाकर भगवान ने सदा के लिए आँखें खोल दी। ऐसी विचित्र लीला और नीति रीति है दाता के दरबार की।

o o o

काशी-गंगासागर-पुरी की यात्रा

दिसम्बर सन् १९५२ ई. के अन्तिम दिनो मे कड़ाके की ठण्ड मे श्री हरिराम जी नाथानी जीप से नान्दशा पहुँचे। उन्हे नान्दशा मे ही बना राजस्थानी भोजन चूरमा-दाल-बाटी विशेष प्रिय था। अतः उन्होने वही भोजन बनवाने की आज्ञा चाही। दाता ने कहा कि दाल-बाटी ही ठीक है। परन्तु उनकी विशेष अभिरुचि देखकर मुस्कराते लहजे में कहा, "अच्छा ! जैसी तुम्हारी मर्जी।" पड़ोस के गॉव से जीप भेजकर सामान मंगवाया गया और रसोई तैयार होने पर जीमने बैठे।

दाता ने बालभोग लगाया व अन्य सब लोगों को भी भोजन परोसा गया। दाता ने सर्वप्रथम एक ग्रास चूरमे का लिया ओर फिर प्रेम से लड्डू खाने लगे। कुछ बोले नही। जैसे ही अन्य लोगों ने चूरमे का ग्रास लिये कि उनके हाथ रुक गये। अन्यो को ठिठके हुए देख कर दाता ने विनोद पूर्वक पूछा, "क्या बात है ? आप लोग भोजन क्यो नहीं कर रहे है ? आपकी इच्छित वस्तु बनाई गई है फिर यह अरुचि क्यो ?" सभी हंसने लगे। उन्हे दाता की लीला का बोध हुआ। हुआ यह कि रसोई बनाने वाले महाराज ने भूल से रसोई में शक्कर के बजाय नमक ओर नमक के बजाय शक्कर का प्रयोग कर दिया। लड्डू अत्यधिक नमकीन कैसे खाया जा सकता था। तब दाता ने फरमाया, "सभी को एक रस बनना चाहिए। नमक ओर शक्कर का भेद समाप्त हो जाए तब समझना चाहिए कि साधनापथ पर कुछ आगे बढे है। जीवन में विष–अमृत, सुख–दुःख, हानि–लाभ आदि के द्वन्द पग-पग पर मिलते है। इन्हे समान रूप से स्वीकार करने पर ही व्यक्ति एकरसता को प्राप्त होता है। किन्तु आप लोगो का स्वभाव है, "मीठा मीठा गट्ट-गट्ट : कड़वा कड़वा थूं-थूं ! यह रसभेद अनुचित है।"

दाता जो कुछ कहते है वह स्वयं प्रयोग करके भी दिखाते है। उस बाल-भोग के नमक मिले हुए चूरमे को दाता ने बिना मुंह मटकाये आनन्द और प्रेमपूर्वक खाया जबकि अन्य लोग उस पहले ग्रास से अधिक नहीं खा पाये। ऐसे अनेको प्रसंग है जब दाता को बाल भोग में कड़वे फल, ककड़ी, सब्जी आदि खाने का अवसर मिला किन्तु उन्होने उसे बिना झिझक-हिचकिचाहट के रुचिपूर्वक खाया। भोजन के किसी पदार्थ को परोसने के बाद दाता तनिक भी जूंठा शेष नहीं रखते। दाता कभी कभी मुस्कराते हुए व्यंग में कहा करते है, "तुम लोग तो जूंठा छोड़ते नहीं, जबकि मेरा राम जूंठा रखता नहीं।" रखने-छोड़ने के अन्तर में ही कितना रहस्य सिमट आया है कौन जाने ?

अस्तु ! उस दिन फिर सबने दाता-भण्डार में ही बना भोजन किया। नाथानी जी का कलकत्ता जाने का कार्यक्रम था। इसलिए उन्होने दाता से

गगासागर पधारने हेतु प्रार्थना की। दाता ने उत्तर दिया "मेरे दाता सर्वव्यापक है। कोई ऐसा स्थान नहीं जहा वे नही हों। सभी तीर्थ उनके हैं और वे सभी तीर्थों में है।" नाथानी जी ने सविनय विशेष आग्रह करते हुए पुन आग्रह किया "प्रभु! कार तो कलकत्ता जा ही रही है। पास ही गगासागर है। हमें कोई कष्ट होगा नही। अवश्य पधारना हो।" इस प्रेममय एव भावपूर्ण विनय ने स्वीकृति को राह दिखा दी।

मातेश्वरी जी, कु हरदयाल सिंह और सेवा में शिवसिंह जी को साथ लेकर दाता भीलवाड़ा पधारे। दूसरे दिन वे प्रात कार द्वारा नाथानी जी व गोविन्दजी के साथ जयपुर दो दिन ठहरकर, भर्तृहरि आश्रम होते हुए अलवर पहुचे। इस मार्ग पर दाता जब भी पधारते है तब भर्तृहरि आश्रम में अवश्य पधारते है। इस बार भी वे आश्रम पर पधारे और दो घण्टो के लगभग अकेले पहाडी पर रहे। वहाँ से अलवर जाते समय मार्ग में सडक पर एक बड़ा शेर मिला। वह करीब पाच मील तक रोशनी में कभी कार के आगे, कभी पीछे और कभी बगल में दौड़ता रहा। अन्य लोग उसे देख भयभीत होगये किन्तु दाता ने मुस्कराते हुए उन्हें आश्वस्त किया और कहा कि मेरे दाता की लीला-क्रीडा देखते जाओ। सभी शेर ने सडक के बीचोबीच आकर सिर झुकाते हुए एक पजा ऊपर उठाया और इस प्रकार अपने श्रद्धापूरित मनोभावो को प्रकट करते हुए झाडियो में ओझल हो गया। रात्रि विश्राम अलवर में करके दिल्ली पहुँचे। वहाँ नाथानी जी के आवास पर ही विराजे।

अगले दिन दाता प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ रामकृष्ण जी डालमिया के यहा पधारे। श्रीमती दिनेश नन्दिनी की विशेष प्रार्थना पर भोजन वहीं हुआ। दाता ने उनकी एक सासारिक पुकार भी सुनी।

इटावा रात्रि विश्राम करते हुए मार्ग की बाधाओ को सुगमता से पार करके कानपुर होकर इलाहाबाद मे झूसी सकीर्तन भवन जाकर श्रद्धास्पद ब्रह्मचारी प्रभुदत्त जी महाराज के अतिथि बने। प्रभुदत्त जी महाराज ने दाता को भुजा पसार कर हृदय से लगा लिया। उन दिनों उनका मौन व्रत था। वे केवल 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेवा का ही उच्चारण करते थे। शब्दो के बलाघात और आरोह-अवरोह द्वारा भाव प्रकट कर देते थे। विशेष आवश्यकता पडने पर ही यदा-कदा स्लेट पर थोड़े शब्द लिख कर आशय स्पष्ट कर देते। आश्रम गगा के किनारे एक रमणीय स्थान है। झूसी प्राचीनकाल में राजा पुरुरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर के नाम से विख्यात नगरी थी।

अगले दिन दाता ब्रह्मचारी जी के साथ अपनी मडली सहित त्रिवेणी सगम पर स्नानार्थ पधारे। यह तीर्थ स्थान प्रयागराज के नाम से प्रसिद्ध है। इसे सभी तीर्थों का अधिपति कहा जाता है। ब्रह्मचारी जी की सुसज्जित नौका में विराज

कर जल में संगम स्थान पर पहुँचकर स्नान हुआ। गंगा का जल श्वेतवर्णीय था जबकि यमुना का जल नीलवर्णीय। दोनो नदियो का प्रवाह जहाँ मिलता है वही संगम है। ब्रह्मचारी जी ने भावमग्न होकर दाता की शिवरूप मे पूजा की और मस्तक पर पुष्प चढ़ाये। इस चित्ताकर्षक छवि को गोविन्द जी ने तुरन्त ही कैमरे मे समेट लिया।

श्रद्धेय ब्रह्मचारी जी ने दाता के सम्मान मे एक वृहद् प्रीतिभोज का आयोजन किया। उसमे अनेक संत सम्मिलित हुए जिनमे प्रसिद्ध उड़ियाबाबा,. हरिबाबा, आनन्दमयी माँ आदि थे। यह संतसमागम अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसके द्वारा पारस्परिक परिचय तो हुआ ही किन्तु सतके आग्रह पर दाता को इसमे भावाभिव्यक्ति का सुन्दर सुयोग भी प्राप्त हुआ। दाता को विवश होकर प्रवचन करना पड़ा।

"अपनी स्वभावगत विनम्रता दिखलाते हुए दाता ने 'अपने दाता' की सर्वज्ञता, सर्व व्यापकता और सर्व समर्थता की महत्ता का वर्णन किया। तदन्तर संतो की महिमा का बखान करते हुए उन्हें पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर का साक्षात् जीवित स्वरूप बतलाते हुए कहा कि उनकी चरण वन्दना और चरण धूलि के प्रताप से ही अधमो का आजतक उद्धार होता आया है। संत ही तीर्थों के पावन स्वरूप है, जिनकी धूलि के स्पर्श मात्र से तीर्थ अपना तीर्थत्व प्राप्त करके पापियो को पावन करने की क्षमता अर्जित करते है। शिव, राम और कृष्ण के ये चलते-फिरते स्वरूप है जो लोकहित में जन्म धारण करके सत्संग प्रसाद द्वारा ज्ञान, भक्ति और मुक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित करते रहते है। त्रिगुणमयी और त्रिगुणातीत सत्य स्वरूप को धारण करने वाली यह आद्याशक्ति ही वास्तविक त्रिवेणी-संगमस्थली है। वस्तुतः आदिनाथ भगवान शिवशंकर ही त्रिभुवन गुरु है और संत उनके अभिन्न गण है जो भू माँ का भार हल्का करने हेतु सदा त्याग, तपस्या का अवलम्बन करते हुए यत्र-तत्र-सर्वत्र विचरण कर रहे है। संत प्रथम पूज्य है, उनके बाद देवता—

"संत आधी देव मग" —श्री तुकाराम

उन्होने कहा कि जिस प्रकार सृष्टि का कालचक्र अविश्रान्त भाव से निरन्तर गतिमान रहता है, उसी प्रकार संत-समुदाय भी प्राणियो के उद्धार की कल्याणमयी कामना लेकर विचरण करते है। यही सनातन संत परम्परा नित्य प्रवाहमान होती हुई हमारी आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति शक्ति बनी है, जिसने इस देश को गुरुत्व प्रदान किया है।

श्री दाता ने आगे फरमाया, "गुरु, गोविन्द, गणेश, गंगा, गाय, गायत्री, गीता और गुणगान नामावली का यह अष्ट 'ग' समुदाय अष्टदलीय कमल की पंखुड़ियो की भाँति, संगीत को 'सा रे ग म प ध नि सा' की अष्ट पदावली बन कर विश्व में अनुगूंजित हो रही है। हमारे स्वाभिमान का मूल स्वर यही है, जिसे स्वयं



प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी जी दाता के साथ
(सिरपर पुष्पार्पण)

जगदगुरु श्रीकृष्ण ने बासुरी की मधुर स्वर लहरियों में प्रसारित किया है, जिसे योगिराज भगवान शिव ने डमरु की तान पर नृत्य करते हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को रसप्लावित करने हेतु प्रकट किया है।"

'किंबहुना सत ही सत्य के द्रष्टा, पुष्टिकर्त्ता और प्रचारक है। उनकी चरण-शरण ही मेरे दाता की लीलामयी कौतुक-क्रीडा का द्वार खोलकर, उनसे अरस-परस और अभेद बनाती है। योग, भक्ति और ज्ञान आदि समस्त मार्गों का प्रमुख सार, तत्व-निचोड़ यही है। अत प्रभुप्राप्ति अथवा यों कहें कि स्वरूप प्राप्ति का एकमात्र माध्यम इनके श्री मुख से नि सृत शब्द-बोल-कथन ही सत्सग है।

'मेरा राम तो मेरे दाता का एक अबोध और अज्ञानी बच्चा है। मेरे राम के तो हाथ लम्बे हैं नहीं जो सब के चरण स्पर्श कर सकू। यहाँ तो इतना छोटा दायरा रखते हैं।"

तदनन्तर दाता ने बैठे बैठे ही सिर झुका कर भूमि पर सभी सत भगवानो के श्रीचरणो का प्रतीक एक वृत्ताकार गोला बनाते हुए उसमें से धूलि लेकर त्रिपुण्ड्र धारण करके प्रणाम किया और जय जय श्री सदगुरु समर्थ के निनाद के साथ सादर जयशकर के अभिवादन वाक्य के साथ प्रवचन समाप्त किया।

इसके तुरन्त बाद ही ब्रह्मचारी प्रभुदत्त जी महाराज ने 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवा' कहते हुए अत्यन्त आत्मीय स्नेह-पूर्वक दाता को हृदय से लगा लिया। प्रेमावेग से उनकी भागवती भक्ति दोनो नेत्रों से गगा-यमुना के रूप में प्रवाहित हो चली।

सभी सत महानुभाव दत्तचित्त होकर परम शांति और आनन्दपूर्वक प्रवचन सुनते हुए मुग्ध हो गये। उन सभी के आनन्द की कोई सीमा न रही। उड़िया बाबा ने कहा, 'आपकी यह सरस विनम्रता ही आपके महान धर्मगुरु होने की द्योतक है।" हरिबाबा ने उनका अनुमोदन करते हुए कहा, "सतो को ऐसा सम्मान देने वाले आप शिवशम्भु है।' इसके बाद सभी ने सम्मिलित स्वर में दाता की भूरि भूरि प्रशसा करते हुए उच्चारण किया, "दाता तू ही तू।'

यह समागम दृश्य परमानन्द से परिपूर्ण, दिव्य एव मनोहारी था और है भी अवर्णनीय।

अगले दिन विदाई के समय दाता और प्रभुदत्त जी दोनो के ही प्रेमाश्रु छलक पड़े। ब्रह्मचारी जी ने सकेत भाषा में लौटते समय दर्शन देने का अनुरोध किया। दाता ने कहा, *'उसकी महर हुई तो दर्शन करेंगे।'*

बनारस में नाथानी जी के मामा चमरिया जी का भवन, बिडला भवन के पास ही है उसी में बिराजना हुआ। बनारस का पुराना नाम वाराणसी और काशी भी है। पौराणिक गाथानुसार प्राचीन दिव्य सप्तपुरियों में से एक मोक्षदापुरी यह भी है –

"अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः ॥"

भगवान विश्वनाथ की यह नगरी विद्या, दर्शन एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रही है। किसी धार्मिक विवाद मे यहां के मनीषियो द्वारा दिया गया निर्णय सर्वमान्य होता रहा है ।

अगले दिन काशीघाट पर स्नान करके भगवान विश्वनाथ के दर्शन किए । यहाँ दाता ने अपनी विशिष्ट मुद्रा मे 'लटका' (नमस्कार) किया । आनन्द मे आत्मलीन होकर मूंदे नेत्रो से हाथ पसारे हुए भावमग्न लगभग सात मिनिट तक खड़े रहे । यह दृश्य तद्रूप तदाकार अवस्था से परिपूर्ण दिव्य एवं अलौकिक था ।

विश्वनाथ का यह मन्दिर भी मुगलकाल मे औरंगजेबी क्रूरता का ग्रास बना । उन्होने समझा कि मूर्ति और मन्दिर को खण्डित कर देने से वे भारतवासियो के दिलो-दिमाग से 'काफिरीबुत पूजा' के भाव सदा के लिए समाप्त कर देगे । यह सोचना उनकी भयंकर भूल थी । भारतीय सनातन संस्कृति तो हिन्दू मतावलम्बियो के हृदयस्थल के भाव राज्य मे प्रतिष्ठित है, जिनका खण्डन तो न कोई आजतक कर पाया है और भविष्य मे भी न कोई कभी कर सकेगा चाहे कितना ही क्रूर, निर्मम, अत्याचारी आतंक क्यो न फैलावे ।

"फानूस बनकर हवा जिसकी हिफाजत करे,
वह शमा क्या बुझे जिसे रोशन खुदा करे ॥"

साध्य-वेला मे सन्त समुदाय के दर्शन हेतु तथा विभिन्न घाटो को देखने हेतु भ्रमण हुआ । रात्रि मे विश्राम करने के पूर्व एक साधु महाराज दर्शन हेतु आये । उन्होने भूतकाल की अनेक घटनाएं बताई । दाता ने कौतुक करते हुए पूछा, "कुछ बाते भविष्य की भी बताने का कष्ट करें ।" महाराज सिटपिटाते हुए मौन हो गए। तब दाता ने उन्हे समझाया, "यह तो निम्न कोटि की साधना है। इसमे कुछ भी नहीं धरा है । यह साधना मूल लक्ष्य से भटकाकर पथभ्रष्ट करती है । अनमोल मानव जीवन प्राप्त करके भी यदि व्यक्ति उस परम लक्ष्य को पहचान कर भी प्राप्त नही कर सका तो क्या लाभ है– भजन बिन बैल बिरानो है ।" इस सम्मति को शिरोधार्य करने का आश्वासन देते हुए वे साधु महाराज वहाँ से विदा हुए।

भविष्यद्रष्टा का प्रश्न आ ही गया है तो इस संदर्भ मे दाता के तद्विषयक विचार पाठको की उत्कंठा-शमन हेतु समाहित करना अच्छा रहेगा । बहुत वर्षो पुरानी एक घटना है । संध्याकालीन 'हरे-हरे' के पश्चात् दाता ने उपस्थित सत्संग मण्डली से पूछ लिया, "बोलो भूत, भविष्य एवं वर्तमान की बात कौन जानना चाहता है । जो जानना चाहता है वह आगे आ जावे ।" किसी मे साहस नही हुआ । केवल डॉ. रणविजय सिंह जी ठाकुर ठिकाना सराना आगे बढे । दाता ने उनसे पूछा, "आप प्रत्येक काल की बातें जानना चाहते है । जानने के बाद आप दुःखी

तो नहीं होवेंगे। सोच लीजिये। आप वर्तमान की बातों से तो परिचित है ही। इन घटनाओं से क्या आप परेशान नहीं हैं? यदि आप त्रिकालज्ञ बन गये तो अपने परिवार के, रिश्तेदारों के, अन्य इष्ट-मित्रों के भविष्य का एवं भूत के सम्बन्धो का बोध होने पर आप उसकी जानकारी के भार से इतने चिन्तित-पीडित हो जायेंगे कि सहन करना कठिन हो जावेगा। उस बोझ से मन ही मन घुट-घुट कर मर जायेंगे। अतः भविष्य-बोध की इच्छा रखना उचित नहीं है। कुछ नहीं जानने में ही सार है। भविष्य की जानकारी करना बोझा ढोने के मानिन्द है। यदि कभी प्रभु कृपा से किसी को त्रिकाल-दर्शी बोध हो भी जाये तो भी उसे जानकर भी अनजान बने रहने में लाभ है। एक हो 'नन्ना' सहस्र दुःख दूर कर देता है। मेरे दाता का निराला स्वभाव है वह किसी की भी मान और अहकार की बात पूरी नहीं करता। अतः भविष्य का बोध हो जाने पर भी उसे तब तक मुख पर न लाओ जब तक की वह घटना घटित न हो जाये। यदि बीच में ही मुह खोल दिया और वह घटना प्रभुलीला से घटित नहीं हुई तो फिर आपकी क्या दशा होगी इसका तो अनुमान लगा लें। यह एक ऐसा दल-दल है जिससे निकल बचना कठिन है। यदि आपको जानना ही है तो 'दाता' को जानने की इच्छा करो। जिससे आपको आनन्द की प्राप्ति हो सके।" इस पर सराना ठाकुर साहब वापिस पीछे हट गये।

बनारस से रात्रिकाल में ही प्रस्थान करके पटना पहुँचे। मार्ग में कार का टायर फट गया किन्तु प्रभुकृपा से कार उलटते उलटते बच गई और कोई चोट ग्रस्त नहीं हुआ। पटना से आगे बढने पर सोननदी आयी। उस नदी के पाट का विस्तार चार मील का था। पुल टूटा हुआ था अतः कार सहित सभी रेल के खुले डिब्बे में चढ कर उस पार पहुँचे। हजारीबाग की पहाडियों को पार करके गिरडी जाते समय मार्ग में बीच सडक पर एक शेरनी लेटी हुई बच्चों को दूध पिला रही थी। कार की रोशनी पडते ही सिंह शावक तो डर कर भाग गये किन्तु शेरनी पसरी हुई पडी रही। अतः कार को एक ओर से निकालना पडा। अत्यधिक रोमांचकारी दृश्य था। गिरडी में किशोरी भाई के यहां विश्राम हुआ। ये भीलवाडा प्रवास में नाथानी जी के यहां दाता के दर्शन और सत्संग लाभ प्राप्त कर चुके थे। यह स्थान देश में अभ्रक व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ अनेक व्यक्तियों ने दर्शन व सत्संग लाभ प्राप्त कर आनन्द मनाया। अगले दिन वहाँ से प्रस्थान कर कलकत्ता पहुँचे।

कलकत्ता में नाथानी परिवार की ओर से भव्य स्वागत हुआ। मध्य बाजार में मुख्य सडक पर ही इस परिवार का सुन्दर सातमंजिला निवास स्थान है। दाता के ठहरने की व्यवस्था सब से ऊपर वाली मंजिल में की गई। नाथानी जी के पिता सेठ श्री रामेश्वरलाल जी एवं अग्रज श्री सत्यनारायण जी तथा समस्त परिवार ने इस भावभक्ति पूर्ण प्रेम से सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था एवं सेवा की, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोडी है।

पांच दिवसीय इस प्रवास मे घूम-फिर कर कलकत्ता देखा गया। इस महानगर की विशालता आश्चर्यकारी है। एक दिन दाता मंडली सहित दक्षिणेश्वर पधारे। गगा किनारे अवस्थित यह सुन्दर काली मन्दिर रानी रासमणी द्वारा वनवाया गया था। युगावतार परमहंस देव श्री रामकृष्ण की यह पावन साधना भूमि और वैलूर मठ आज विश्व प्रसिद्ध तीर्थ स्थल वन गये है। आधुनिक आध्यात्मिक नवजागरण के ये शक्तिपीठ आज भी शान्ति, शक्ति और आनन्द की प्रभावी तरंगे प्रसारित करते हुए मुमुक्षुजनो और पर्यटको को एक अनिर्वचनीय सुखद अनुभूति कराते है। परमहंस देव के पादपद्मों की धूलि से ओतप्रोत यहाँ का अणु अणु आज भी पावनी शक्ति धारण किये हुए है। यहाँ के वायुमण्डल की चन्दनी सुवासदग्ध हृदय को सात्विक शीतलता प्रदान करती है। शास्त्रो के कथन को अपने आचरण द्वारा उजागर करने की अद्भुत क्षमता महापुरुष किस अलौकिक साम्य गति-विधि से संजोते संवारते है, उसका पावन प्रमाण यह दिव्यभाव सम्पन्न भूमि है। नव नव तीर्थों का निर्माण इस प्रकार होता रहता है। इस मन्दिर की विशाल परिधि मे एक चबूतरे पर द्वादश ज्योतिर्लिंगो के प्रतीक स्वरुप वारह शिव मन्दिर है। मन्दिर से संलग्न एक कमरे मे परमहंस देव रहते थे जबकि नोवतखाने में माँ शारदा मणि का निवास था। पास ही माँ शारदा एवं रानी रासमणि के समाधि मन्दिर वने है। निकट ही पंचवटी है, जिसके पवित्र आंगन मे और शीतल छाँह में वैठ कर परमहंस देवजी ने नानाविधियो से साधना सम्पूर्ण करते हुए विभिन्न भावानुभूतियो और अखण्ड समाधि अवस्था प्राप्त की थी। दाता और मातेश्वरी जी ने सभी जगह अत्यंत उमंग, उत्साह ओर आनन्द मिश्रित हर्षपूर्वक एक दूसरे को देख देख कर मुस्कराते हुए भ्रमण किया। परमहंस देव के निवास वाले कमरे मे उनके द्वारा प्रयुक्त वस्तुएं स्मृतिचिन्ह के रूप मे सुरक्षित है।

तदनन्तर वैलूर मठ में पधारे। इस आधुनिक आध्यात्मिक केन्द्र का निर्माण परमहंस देव के पट्ट-शिष्य स्वामी विवेकानन्द (नरेन) ने करवाया था। परमहंस देव के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् उनके पवित्र अवशेष का पात्र 'अस्थि-कलश' यहाँ समारोहपूर्वक प्रतिष्ठापित किया गया। परमहंस देव का यह मन्दिर आधुनिक वास्तुकला का सुन्दर नमूना है। इसी मे स्वामी विवेकानन्द की समाधि भी वनी हुई है।

परमहंस देव के इस मन्दिर मे मातेश्वरी जी ने केवल हाथ जोड कर नमस्कार ही किया। यह देख कर दाता ने पूछा, "यहाँ साष्टांग प्रणाम क्यो नहीं किया ?" उन्होने झिझकते हुए उत्तर दिया, "आपके और आपके आसन के अतिरिक्त आजतक इस वन्दे ने अन्यत्र इस प्रकार (साष्टांग) प्रणाम नही किया है, और न करना ही चाहती हूँ।" इस पर दाता ने मुस्कराते हुए आज्ञा दी, "चलो ! पहले देखो तो सही, फिर चाहे तो प्रणाम करना!" मातेश्वरी जी ने तत्काल ही आज्ञा का पालन करते हुए परमहंस देव के श्री विग्रह को देखते हुए समर्पण सहित

साष्टाग प्रणाम किया। उनके उठकर खडे होने पर दाता ने उन्हें पुन पूछा 'बोलो! बताओ! कैसा रहा।' तो सलज्ज भाव से मुस्कराते हुए स्वीकार किया, "यहाँ तो दाता ही अभिन्न एव अभेद रूप से विराजमान है, पूर्ण रूप से एकाकार! वही रूप वही छवि वही भाव-भगिमा भरी पैनी तिरछी चितवन, वही सरल निश्छल मन्द मन्द मुस्कान होठों पर वही लाली, नेत्रों में वही उन्मेष मुखमण्डल पर वही तेजोमय प्रभावर्तुल।'

इस पर दाता ने वैसे ही चितवन से मुस्कराते हुए, "इसीलिए तो पूछा था, सशय तो नहीं ?"

प्रत्युत्तर उनके प्रात कालीन कमल की भाति खिले हुए प्रसन्न चेहरे और अर्धोन्मीलित नेत्रों ने स्वत ही प्रकट कर दिया– 'नहीं लेशमात्र भी नहीं। सर्वांग तदरूप–तदाकार।

––और तब दाता-माता के टकराये विहँसते नेत्रों के मिलन ने सकेत ही सकेत में अन्तरपट के भाव राज्य की एक माधुरी सुगन्ध महका दी।

—वातावरण मलयानिल हो गया। दर्शक उस दिव्यानन्द में ओतप्रोत हो गये। ऐसे अनिर्वचनीय आनन्द का वर्णन कैसे किया जाए ?"

अगले दिन दाता कलकत्ता की प्रसिद्ध कालिका के आदि एव नवनिर्मित मन्दिरों में दर्शन हेतु गए। नये मन्दिर में महाकाली की विशाल मूर्ति रौद्र रूप धारे लाल लपलपाती जिह्वावाली प्रतिष्ठापित है। वहाँ उस समय बलो चढाई जाती थी अत वातावरण बडा वीभत्स और भयानक था। चारो ओर रक्त ही रक्त प्रवाहित हो रहा था। अत वहा से दाता अति शीघ्र ही लौट आये।

दाता के मनोभाव इस टिप्पण में फूट पडे, "कैसे ना समझ स्वार्थी लोग है ये, जिन्होंने धर्म को अधम बना दिया है। काली तो काल का कलेवा करती है। वह मान-मद का रस पान करती है। वह काल कलेवा है मानव मन का निकृष्टतम आसुरी अहकार जिसे वह महामाया अवश्य खडित करके दम लेती है। मान मद से मदान्धो का मानमर्दन करने में उसे रस प्राप्त होता है। यदि कोई व्यक्ति इन भोले भाले मूक पशुओ की बलि चढा और शराब की धार देकर तुष्ट होता है तो उससे उसके अहकार और मद में वृद्धि ही होती है, कमी नहीं। इस प्रकार धीरे धीरे वह स्वय मर्दन का पात्र बन कर काली का कलेवा बनता जाता है। ऐसे जघन्य विधि-विधान और परिपाटी के लिए यदि कोई दोषी है तो वह है केवल ब्राह्मण समाज! जिसने स्वय अज्ञान व स्वार्थपरायण वासना तृप्तिहेतु ऐसी वीभत्स यवनिका का निर्माण किया। दूसरा दोषी है क्षत्रिय समाज जो ऐसे कुकृत्यो में जान-बूझकर सहयोगी बना केवल विषयभोग वासना की क्षणिक पूर्ति के लोभलालच में।

और प्रतिफल सामने है! आज इन दोनो ही समाजो की दशा सबसे अधिक हीन व मलिन है! यदि इन्होंने यह हिंसा वृत्ति और सुरापान अब भी नहीं त्यागा

तो इनका हाल वद से वदतर ही होगा। मेरे दाता के नीति नियोजन का प्रतीक चिन्ह 'न्यायतुला' है। इस संदर्भ मे सम्भावी काव्य पंक्तियां दृष्टव्य हैः–

"वकरी खाती पात है, जिसकी काढ़ी खाल।
जो वकरी को खात है, उनका कौन हवाल।।
राम किसी को मारे नही, नही है खोटा राम।
आप ही आप मर जावसी, कर कर खोटे काम।।" –संत कवीर

दिनाक १३–१–५२ ई. को दाता कार द्वारा कलकत्ता से रवाना होकर ३८ मील दक्षिण दिशा मे स्थित 'डायमण्ड हारवर' पहुँचे। सेठ रामेश्वरलाल जी एवं उनकी पत्नी भी गंगा-सागर की इस यात्रा मे साथ चले। पूरा नाथानी परिवार वहां तक पहुँचाने आया। नाव में वैठ कर जहाज मे चढे। जहाज मे ३०० यात्रियो के लिए स्थान था। दो कम्पार्टमेन्ट प्रथम श्रेणी के आरक्षित करवाये गये। एक में दाता, मातेश्वरी, कुं. हरदयालसिंह और शिवसिंह जी थे और दूसरे में नाथानी परिवार। अन्य लोग द्वितीय श्रेणी के कक्षो मे। जहाज की व्यवस्था उत्तम थी। पूरी रात चल कर जहाज उषा वेला में गगा सागर संगम पर पहुँचा। नावो के द्वारा टापू पर पहुँचे।

गंगा के सागर मे मिलने के मुहाने पर प्राचीन काल में कपिल मुनि का आश्रम था। भौगोलिक परिवर्तन के कारण वह आश्रम तो नष्ट हो गया, किन्तु उसकी स्मृति ही शेष रह गई। उसी स्थान के आसपास नया आश्रम वना है जो देशवासियों के भक्तिभाव का केन्द्र है। कपिल मुनि षट्शास्त्रो में से एक सांख्य योग के प्रसिद्ध प्रवर्तक थे, जिनकी गिनती भगवान विष्णु के चौवीस अवतारो में की जाती है।

गंगावतरण और इस स्थान के सम्वन्ध मे एक आख्यायिका है। प्राचीन काल मे इस आर्यावर्त प्रदेश के जम्वूद्वीप पर रघु के पूर्वज राजा सगर राज्य करते थे। उन्होने एक अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। वह यज्ञ चक्रवर्ती सम्राट वनने हेतु किया जाता था। उस आयोजन में एक सुसज्जित अश्व जोड़ा जाता जो स्वतंत्रता पूर्वक सभी दिशाओ में घूमता रहता जिसकी रक्षा सेना करती। जिस राज्यसीमा से वह अश्व निकलता उसके राजा को या तो आयोजनकर्ता की आधीनता स्वीकार करनी होती अथवा युद्ध। युद्ध में परास्त होने पर उसे करभार देकर आधिपत्य मे रहना होता। इस प्रकार राजा सगर का वह अश्व भी विचरण कर रहा था। उसकी रक्षा हेतु राजा के एक सहस्र पुत्र सेना सहित उद्यत थे। देवराज ने छल पूर्वक उस अश्व का हरण कर कपिल मुनि के आश्रम में वांध दिया। मुनि तपस्यारत थे। उन्हें इस कुत्सित घटना का भान नहीं था। जव सगर पुत्र अश्व को ढूंढ़ते ढूंढ़ते वहां पहुंचे और अश्व को देखा तो शोर मचाने

लगे। उन्होंने तपस्या में रत मुनि के साथ घोर अभद्र व्यवहार किया। मुनि की तपस्या टूटी। उन्होंने नेत्र खोले और उनकी क्रोधाग्नि से सगर पुत्र सेना सहित तत्क्षण भस्म हो गये।

सगर के पौत्र अंशुमान ने अश्व प्राप्त करके यज्ञ सम्पूर्ण कराया किन्तु राजा अपने पुत्रों के अपघात से दुःखी हुआ। सगर का प्रपौत्र राजा भागीरथ हुआ जिसने पितरों के उद्धार हेतु अति कष्टसाध्य तपस्या की। उसने भगवान विष्णु को प्रसन्न कर स्वर्गलोक से गंगा के भूमि पर अवतरित होने का वर प्राप्त किया। तत्पश्चात कैलासवासी भगवान शंकर को प्रसन्न कर स्वर्ग से गंगा के अवतरित होने पर उसके वेग को मस्तक पर धारण करने का वर प्राप्त किया। इस प्रकार स्वर्ग लोक से गंगा का हिमालय पर्वत पर अवतरण हुआ। भागीरथ ने उसके प्रवाह को मार्ग दिखाते हुए उसे इस गंगासागर संगम तक पहुँचाया। गंगाजल के प्रवाह-प्रभाव से सगर के पुत्रों का उद्धार हुआ। इस कथा के फलस्वरूप ही गंगा के नामों के पर्याय विष्णुपदी, शिवप्रिया और भागीरथी है।

हमारे इस आध्यात्मिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सम्पदा से परिपूर्ण देश में पुण्यसलिला नदियां केवल जलधारा-स्रोत ही नहीं बल्कि सामाजिक प्रगति में सहायक अर्थ व्यवस्था की एक ठोस धुरी मां और देवी के समतुल्य माननीय समता प्राप्त सांस्कृतिक धरोहर और ऐश्वर्य वैभव की साकार प्रतिमाएं रही है। गंगा का महत्व उन सभी में सर्वोपरि है जो सहस्रों वर्षों से हमारी भारतीयता की एक अमिट पहचान बनी हुई है। यह हमारे लिए जन्म धारण कराने वाली माँ से भी अधिक ममतामयी, वात्सल्य स्नेह, समृद्धि और पावनता प्रदान करने वाली ऐसी माता है जिसकी गुणगाथा का गान करते करते हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि, संत महापुरुष भक्त-गण, कवि और धर्मग्रन्थ नहीं थकते। इसके जलपान और स्नान तो क्या, मात्र दर्शन से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है —

'गंगा दर्शनात मुक्ति'

संस्कृत के महाकवि पण्डितराज जगन्नाथ ने अपनी विश्वप्रसिद्ध रचना गंगा लहरी में माँ भागीरथी की आराधना हेतु स्तुति, वन्दना और अर्चना के भाव भक्तिमय सुमन समर्पित किये है। वे सब भाव हमारे इस विशाल देश को सुदूर कोनों में बसे समस्त भारतीय जनमानस का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसी अटूट निष्ठा आस्था, श्रद्धा और दृढ़ विश्वास है इस माँ के ममतामय आंचल के प्रति हमारे मन में। गंगा पवित्रता का पर्याय है अशिक्षित ग्रामवासी भी चाहे एक बार तो ईश्वर के नाम पर झूठी सौगन्ध ले लें किन्तु गंगा माता के नाम की वह झूठी सौगन्ध भूलकर भी नहीं खा सकता ऐसा कल्पनातीत सत्याचरण है हमारी इस माँ के प्रति जन जन का। यह सदासवथा अमृतवाहिनी रही है हमारे लिए जिसके जल की पवित्रता की वैज्ञानिक-परीक्षणों द्वारा भी पुष्टि हुई है।

हमारा यह धार्मिक अन्धविश्वास नही है अपितु अनुभूत आध्यात्मिक सत्य है कि गंगा साक्षात् माता है जो सदा देती ही देती है। हमने नदियो, पर्वतो, तीर्थों, पुरियो, वृक्षो और यहाँ तक की मिट्टी का भी व्यक्ति के समान धरातल पर मानवीयकरण किया है। यह वर्गीकरण हमारे लिए गौरव की वस्तु है। अनेक सिद्ध महापुरुषो एवं श्रद्धालु धर्मप्राण व्यक्तियो ने उनके उस मानवीय स्वरूप के प्रत्यक्ष दर्शन किये है।

अस्तु गंगोत्री के उद्गम स्थल से गंगा सागर तक लगभग २५२५ कि. मी. लम्बी यह गंगा हमे और हमारी धरती को निहाल और खुश हाल करती हुई उसे सुजला सुफला बनाती हुई, हमारे त्रितापो का नाश करती हुई सागर मे विलीन हो जाती है। वही पुण्य स्थली गंगासागर संगम के नाम से प्रख्यात तीर्थ है। जन जन मे यह कथन प्रचलित है—

'सब तीर्थ बार बार गंगा सागर एक बार।'

कपिल मुनि के चबूतरे के पास दर्शनार्थियो की काफी भीड़ थी। अतः मुनि की मूर्ति के दर्शन करने मे काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। कु. हरदयाल को तो शिवसिह जी ने कन्धे पर बिठा कर दर्शन कराये। यह टापू काफी लम्बा चौड़ा है और उस पर यात्रियो के ठहरने के लिए फूस की अनेक अस्थायी झोपड़ियाँ थी। स्नान समुद्र के पानी मे ही होता है। यह स्थान भी पन्डे-पुजारियो की लूट-खसोट से वंचित नही है। एक मारवाड़ी सेठ स्नान कर रहा था। उसके वस्त्र जिसमे उसकी नकदी थी एक लफंगा ले भागा। यह सब पंडे-पुजारियो की मिलीभगत से ही हुआ। दाता यह दृश्य देख रहे थे। इससे उनका मन खिन्न हो गया। उन्होने करुणा करके उस सेठ को आर्थिक सहायता दिलवाई।

प्यास लगने पर कच्चे नारियल को तोड़ कर, उसका दूधिया पानी पीकर ही सभी को संतोष करना पड़ा। स्नानोपरान्त दाता शीघ्र ही जहाज पर लौट आये। सन्ध्याकाल मे सरकार की ओर से घोषणा हुई, "भयंकर तूफान आने वाला है। द्वीप पर कोई न ठहरे। अपने अपने जहाजो पर लौट जावे। चालको और मल्लाहो को सावधानीपूर्वक अपने अपने जहाजो, स्टीमरो और नावो की रक्षा करना चाहिए।"

इस घोषणा से यात्रियो मे खलबली मच गई। सभी तूफान की आशंका से भयभीत हो गये। जिस जहाज मे दाता विराजमान थे, सब यात्रियो के आ जाने पर रवाना हो गया। भयाक्रान्त यात्रियो ने दाता के समक्ष उपस्थित होकर रक्षा हेतु प्रार्थना की। दाता ने फरमाया, "रक्षा करने वाला मेरा दाता है। वह सर्व समर्थ है। सब मिल कर उसके नाम का कीर्तन करते रहो। सदा उसी का सहारा रखो।"

मौत का भय क्या नही करवा देता। अतः द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के यात्रियो ने अपने अपने कक्षो मे कीर्तन करना चालू किया। गोविन्द जी और नाथानी द्वितीय श्रेणी में थे। गोविन्द जी ने कीर्तन मे पहल की। कीर्तन के बोल थे—

"डगमग डगमग नाव मझधार है।
तेरा ही आधार दाता तेरा ही आधार है ॥"

सभी ने साथ दिया। दाता और नाथानी जी के पिताजी और माताजी ने भी अपने अपने कक्षों में कीर्तन किया। दाता द्वितीय और तृतीय श्रेणी के केबिनों में जा जाकर सान्त्वना और तसल्ली देते रहे। द्वितीय श्रेणी के कीर्तन के बोल सुनकर दाता ने फरमाया –

"डिग मत डिग मत नाव मजेदार है।
तेरा ही आधार दाता तेरा ही आधार है ॥"

तब सभी इसी बोल का कीर्तन करने लगे।

प्रथम बोल जहां घबराहट और निराशा प्रकट करते है वहीं दाता के बोल मन में आस्था और बल का सचार करते हैं। यही जीवन का यथार्थ है। मानव-जीवन की डगमगाती मझधार में पड़ी नैया ही जब प्रभु के आश्रित हो जाती है तो उसकी निराशा आशा में और अस्थिरता दृढता में परिणत हो जाती है। तब यह मानवजीवन द्वन्द और संघर्ष से भरा होने पर भी मजेदार आनन्ददायक बन जाता है। इस प्रकार रातभर कीर्तन होता रहा। रात्रि के तीन बजे तीव्र वेग से तूफान आया जिसका प्रभाव दो घण्टे तक रहा। जहाज प्रातः सात बजे 'हारबर' पहुंचा। प्रातःकाल सुनने में आया कि रात में कई नावें और स्टीमर उलट गये और अनेक यात्री समुद्र में डूब कर मर गये।

इस जहाज के अंग्रेज कप्तान ने राय बहादुर सेठ रामेश्वरलाल जी को बताया कि उसने उसके जीवन में ऐसा भयकर 'साइक्लोन' कभी नहीं देखा। उसने कहा "हमारे जहाज की रक्षा भी महात्मा जी के आशिर्वाद एवं कीर्तन से हुई।" उसने स्वयं दाता के समक्ष उपस्थित होकर धन्यवाद दिया। दर्शनों से प्रभावित होकर उसने आज्ञा प्राप्त कर कैमरे से दाता का चित्र भी उतारा। दाता की कृपा और हरि नाम के प्रताप से उस जहाज के यात्रियों की यों रक्षा हुई।

नाथानी परिवार भी 'साइक्लोन' की खबर से चिन्तित था। पर सभी को सकुशल लौटे हुए देख कर उनके हर्ष की कोई सीमा नहीं रही। चारों ओर आनन्द का वातावरण छा गया।

एक दिन वे वहां के बाजार में घूमने गये। बाजार में एक बडा जनरल स्टोर था। हरिराम जी ने बताया कि विश्व में मिलने वाली सारी वस्तुएं इस स्टोर में मिलती हैं। कार कुछ देर के लिए स्टोर के सामने रुकी। स्टोर का मालिक बाहर आया। वह नाथानी जी से परिचित था। जब उसे दाता का परिचय मिला तो उसने दाता को स्टोर में पधारने हेतु निवेदन किया। दाता की इच्छा न होते

हुए भी उनके आग्रह पर उन्हें स्टोर में जाना पड़ा। स्टोर में प्रवेश करने पर वहाँ संग्रहीत विचित्र विचित्र वस्तुओ को देखकर उनके पूर्व कथन की सत्यता सिद्ध हो रही थी। नाथानी जी ने दाता से प्रार्थना की "जो भी वस्तु पसन्द हो,खरीदने का कष्ट करे।" इस पर दाता ने मुस्कराते हुए फरमाया, "मेरे राम को कुछ नही चाहिए।" हरिराम जी ने निवेदन किया, "आप यहाँ पधारे है तो कुछ न कुछ तो खरीदना ही है, अन्यथा स्टोर और उसके मालिक की अवमानना होगी।" तब दाता ने कहा, "तुम लोग नही मानते हो तो जैसी आपकी मर्जी। अच्छा! कांटा निकालने का एक चिपिया दे दो।" स्टोर का स्वामी दाता के कथन को समझ नही पाया। हरिराम जी ने उनको समझाया। तब वह लज्जित होकर बोला "इतनी छोटी वस्तु यहाँ नही मिलती है।" दाता ने सविनोद हँसते हुए कहा, "यहाँ तो विश्व की हर आवश्यक वस्तु मिलती है। कॉटा निकालने का चिपिया आपके दृष्टिकोन से छोटी वस्तु हो सकती है, किन्तु जिसको कॉटा चुभा हो, उससे उसका महत्व और मूल्य पूछे!" जब एकबार खटकता हुआ काटा ही निकल गया तो फिर दुःख दर्द रहेगा ही नही। इन गूढ़ रहस्यात्मक शब्दो को सुनकर स्टोर का मालिक, उसके नौकर और नाथानी जी हतप्रभ रह गये। वे सब दाता के चरणो में झुक गये। यह है एक झलक जो दिखने में तो साधारण किन्तु दाता के व्यक्तित्व को उजागर करती है।

अगले दिन संध्या को रेल द्वारा श्री जगन्नाथ के दर्शनार्थ उनके पवित्र धाम की यात्रा हुई। यह पुरी हिन्दूमतावलम्बियो के अनुसार भगवान के चार पवित्र धामो मे से एक है। कहते है कि पहले वहाँ नीलांचल नामक पर्वत था। वहाँ नीलांचल माधव की मूर्ति थी। अब तो केवल श्री जगन्नाथ जी पर लगा छत्र ही 'नीलछत्र' कहलाता है। भगवान् जगन्नाथ के प्रसाद की महिमा तो जगत् प्रसिद्ध है। कथन प्रचलित है, "श्री जगन्नाथ के भात को, जगत पसारे हाथ।" रथ यात्रा के मुख्य पर्व पर प्रतिदिन यहां सहस्त्रों मन चावल का भोग लगता है। यहां के महाप्रसाद मे छुआछूत, ऊँच-नीच, जाति-पाति का कोई दोष और भद माना ही नही जाता है।

यहाँ एक सराय में ठहरने का प्रबन्ध किया गया। स्नान हेतु समुद्रतट पर पधारना हुआ। प्रसिद्ध स्वर्ग द्वार नामक स्थान पर दाता ने स्नान करने के पूर्व महाप्रभु चैतन्य की प्रेम भरी दिव्य लीलाओं का मधुर आर्द्र कण्ठ से मार्मिक गुणगान किया और बताया, "यह वही स्थान है जहाँ महाप्रभु श्री चैतन्य देव ने नीलांचल-वासी नीलकमल सदृश सुन्दर देह धारे माधव श्रीकृष्ण के प्रबल प्रेमाकर्षण वेग में समुद्र की लहरो को अपने प्रियतम का आमंत्रण जान यह कहते हुए दौड़ पड़े 'मेरे प्राणेश्वर मुझ से मिलने के लिए व्याकुल और अधीर हो उठे है। इन नील लहरो की भुजा पसारे वे मुझे अपने वक्ष में समाने हेतु आतुर है। अब देरी दोनो ओर असह्य है।' यह कहते हुए वे समुद्र की लहरो में कूद पडे। अपनी नश्वर शरीर

लीला ब्रह्मलीन कर दी। इस प्रकार वे विलीन हो गये अपने लीलामयनील घनश्याम मे। राधाकृष्ण में समाकर अभिन्न हो गई उनकी काया। श्री चैतन्य महाप्रभु राधा के अवतार माने जाते है। इस कलिकाल में जीवो के उद्धार हेतु उन्होने प्रियतम श्रीकृष्ण के नाम सकीर्तन महत्व को अपने चरित्र से उजागर किया। अन्त में उसी दिव्य प्रेमी का नाम सकीर्तन करते हुए अपनी जीवनलीला विसर्जित कर दी। धन्य है ऐसे महापात्र, धन्य है उनकी लौकिक और अलौकिक दोनों ही लीलाए।"

यहाँ कहना होगा कि दाता श्री उसी नाम-सकीर्तन परिपाटी का पूर्णतया पालन कर रहे है। ऐसे ही महापुरुषो का गुणगान करने वाली यह अखण्ड कीर्तन पदावली दाता और उनके भक्त समूह के कण्ठो का हार बनी हुई है –

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा।
हरे दाता हरे राम राधे गोविन्दा॥

इस लीला प्रसग को सुन कर मातेश्वरी अत्यन्त भावविभोर हो गइ। दाता के स्नानोपरान्त उन्होने ज्यो ही समुद्र में प्रवेश किया तो एक बडी लहर के साथ समुद्र कँवर समुद्र में चली गई। सभी हतप्रभ देखते रहे गये। शिवसिंह जी के मुख से हठात निकल पडा हे मातेश्वरी! क्या तुम भी उसी भाव प्रवाह पथ का अनुगमन करना चाहती हो। क्या एक अश पूर्ण में समाने को इतना शीघ्र व्याकुल हो गया है? मगर नही! नहीं! तुम्हारे प्रियतम प्राणाधार तो तट पर ही है तो भला तुम्हें वहाँ हटयरथल में कौन लगाने वाला है! तुम इस समय इनसे दूर कैसे जा सकती हो? अभी तो इस जीवन के नाटकीय पात्रो का निर्वाह होना शेष है। पटाक्षेप में अभी समय अवशेष है। अधर में ही कैसे अर्न्तधान हो सकती हो?'

तभी लीला की एक प्रबल लहर किनारे की ओर लौट पडी। सबने आश्चर्य मिश्रित हर्ष से देखा कि आने वाली लहर के साथ मातेश्वरी है। उदासी प्रसन्नता में बदल गई। शिवसिंह जी, गोविन्द जी आदि प्रेमोन्माद में भाव विभोर होकर रो पडे और हर्ष से नृत्य करने लगे। दाता इस खेल को चुपचाप प्रसन्नतापूर्वक देखते रहे। उनके चेहरे पर किसी प्रकार के भाव नही थे।

स्नानोपरान्त दाता सभी को लेकर मन्दिर में दर्शनार्थ पधारे। मन्दिर दो परकोटों में बना भव्य और विशाल है। चारों ओर चार-द्वार है। मुख्य मन्दिर के तीन भाग है, श्री मन्दिर जगमोहन और भोगमण्डप। श्री मन्दिर सब से ऊँचा है जिसमें श्री जगन्नाथ विराजमान है। उनके दर्शन मनमोहक हैं। वहाँ दर्शनो के समय अत्यधिक भीड़ रहती है, किन्तु प्रभुकृपा से सभी को बड़ी आसानी से दर्शन हुए। दाता ने वहा 'लप्का' (प्रणाम) किया। दर्शनोपरान्त वही के प्रसाद से भोग लगाया। उसी मस्ती में भोजन हुआ। शाम को रेल द्वारा कलकत्ता लौट आये।

कलकत्ता में पाच दिन और ठहरना हुआ। नाथानी परिवार दाता को वहाँ से इतना शीघ्र आने देना नहीं चाहता था। आजकल-आजकल करते हुए दिन

निकलते गये। नित्य नये उत्साह और उमंग के साथ सत्संग, कीर्तन और भगवत् चर्चा होती रही। अनेक भक्तो एवं दर्शक दाता के सत्संग एवं दर्शनो से लाभान्वित एवं कृतार्थ हुए। अन्त में दाता ने उस परिवार से विदा ली। विदाई के समय सभी के नेत्रो में प्रेमाश्रु थे।

वहाँ से पटना, बनारस आदि स्थानो में होते हुए झूंसी पहुँचे। ब्रह्मचारी जी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। उन्होने पूर्ववत ही भाव-भीना स्वागत किया। वे दाता को कुछ दिनो के लिये वहीं रोकना चाहते थे, किन्तु इस यात्रा में समय अधिक हो जाने के कारण दाता ने सरल, मधुर एवं विनम्र स्वर में ठहरने से क्षमा चाही। श्रद्धेय ब्रह्मचारी जी ने आगामी कुंभ-महापर्व पर पधारने का सांकेतिक निमंत्रण दिया और साश्रु नयनो से विदाई दी और वहाँ से दाता एक दिन दिल्ली ठहर कर जयपुर होते हुए नान्दशा पधारे। दाता के नान्दशा लौटने की सूचना इस लेखक को एक दिन पूर्व स्वप्न में ही मिल गई थी। स्वप्न और सूचना इस प्रकार थी, "दाता नान्दशा पधार गये है। इस सूचना के मिलते ही हम सब रायपुर से नान्दशा जाने को तैयार हुए कि अचानक जोर की वर्षा हुई। वर्षा इतनी हुई कि चारो ओर पानी ही पानी हो गया। हम सब घुटने तक पानी रोदते हुए नान्दशा रात्रि के लगभग दस बजे पहुँचे।"

प्रातः उठते ही स्वप्न की बात मित्र-लोगो को बताई तो सभी हंसने लगे और कहने लगे कि दाता तो पधार सकते है किन्तु स्वप्न की वर्षा कहाँ। बादलो का कहीं नाम-निशान नहीं और वर्षा का कोई आसार भी नहीं है। स्वप्न की बातें भी कभी सच्ची होती है क्या? बात आयी गई हुई। दिन भर कार्य में व्यस्त रहे। दिन में सुरास के कुभावत भक्त गिरधारी ने सुरास के भोजन का निमंत्रण दिया। गिरधारी भाई के प्रति हम सब की अच्छी श्रद्धा थी। वह दाता का अच्छा भक्त रहा है, इसलिए निमंत्रण स्वीकार कर लिया। चार बजे वह बुलाने आ गया। उसके आने के बाद सूचना मिली कि दाता पधार गये है। दर्शनों की इच्छा बलवती हुई। वे दाता के वियोग से व्याकुल तो थे ही। दाता जब गंगा-संगम के लिए रवाना हुए तब मैंने भी साथ चलने की प्रार्थना की थी किन्तु स्थानाभाव से दाता ने मना कर दिया था। इस पर मन बड़ा खिन्न रहा था। दाता ने महर कर इतनी आनन्द वृष्टि की कि जिसका वर्णन करना कठिन है। मन का भ्रम व खिन्नता उस महर की लहर में समा गया और दाता के दर्शनो की उत्कण्ठा बढ़ने लगी। अतः उस समय भोजन के स्थान पर दर्शनो की इच्छा जोर पकड़ गई। गिरधारी भाई से बड़ी अनुनय विनय की कि पहले दर्शन कर आने का समय दे दें किन्तु वह टस से मस नहीं हुआ। उसकी अवहेलना करने का साहस भी नहीं हुआ। अतः ज्यों ही विद्यालय का समय पूरा हुआ हम सुरास 'जो रायपुर से दो मील दूर है' वहाँ गये। वहाँ जाने पर देखा कि भोजन बनने को काफी देर है। मन मसोस कर रह गये। सूर्यास्त हो गया। जैसे तैसे भोजन किया। मकान के बाहर निकले तो देखते क्या

हैं कि आकाश में बादल छा रहे हैं। कुछ ही देर में वर्षा प्रारम्भ हो गई। सर्दी होने के बावजूद भी हम वहां नहीं ठहरे। मार्ग में बुरी तरह भींग गये। रायपुर आते आते वर्षा रुक गई। हम लोगों ने कपड़े बदले और नान्दशा के लिए चल पड़े। मार्ग में चारों ओर पानी ही पानी था। घुटने तक पानी रौंदते हुए नान्दशा पहुंचे। स्वप्न की सत्यता पर सभी को आश्चर्य हुआ। दाता के दर्शन कर हम बड़े आनन्दित हुए।

दाता एकरस और समरस हैं। उनके लिए तीर्थों का महत्व लोकमर्यादा के अनुसार ही है। वैसे तो दाता स्वयं ही अपने आप में श्रेष्ठतम तीर्थ है। यह यात्रा तो स्वयं की व तीर्थों की मर्यादा के निर्वाह हेतु हुई।

0 0 0

विरोध की भयंकर आँधी

महापुरुषो का अवतरण लोक हितार्थ ही होता है। जब मानव अपने दैवी गुणो को छोड़कर आसुरी प्रवृत्तियो को अपनाकर अपने वास्तविक रूप को भूलने की चेष्टा करता है, जब वह काम, क्रोध, मद, लोभ एवं अहंकारवश संसार जाल मे बुरी तरह फँसता है, तब उनके उद्धार हेतु, उनके कल्याणार्थ महापुरुषो का पदार्पण होता है। उनका हृदय कोमल, अन्तःकरण स्वच्छ एवं आचरण उत्तम होता है। स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन करने मे उनकी रुचि होती है। वे सभी दैवी गुण उनमें होते है जो श्रीमद्भगवद् गीता मे बताया गया है :–

"अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥"

'संत हृदय नवनीत समाना' गोस्वामी जी ने महापुरुषो के लक्षण बताते हुए उनके हृदय को नवनीत से भी श्रेष्ठ बताया है। इनका हृदय परदुःख-कातर होता है। वे दूसरो के तनिक से भी दुःख को सहन नही कर सकते है। पर-पीड़ा से उनका हृदय द्रवीभूत हो जाता है और पर-पीड़ा को दूर करने की चेष्टाएँ जागृत हो जाती हैं।

किन्तु आज का मानव विचित्र स्वभाव लिए हुए है। जो व्यक्ति उसको इस मायाजाल से जिसमें वह फंसा हुआ है निकालने की चेष्टा करता है उसके लिए वह समझता है कि इसमें उसका कोई स्वार्थ होगा। काम, क्रोध, मद और मोह मे अन्धा जो ठहरा। अहंकार उसे सोचने कब देता है। वह तो समझता है कि मैं ही सब कुछ हूँ। सभी कार्यो का कर्ता-धर्ता मैं ही हूँ। इस मदान्धता में चिन्तन शक्ति उसकी क्षीण हो जाती है और साथ ही प्रवृत्तियां विवेकशून्य होती हैं। भला करने वालो का भी सदैव बुरा सोचता है तथा सदैव उन्हें दुःखी करने के प्रयास में रहता है। यह तो अजीब सी प्रवृत्ति है। हिरन और खरगोश किसी को कष्ट नहीं पहुँचाते। वे हरी हरी घास मात्र खाते है किन्तु दुष्टलोग उन्हें मारकर खा जाते हैं। महापुरुष किसकी हानि करते है? वे केवल हरि हरि ही करते है। किन्तु विरोध पग-पग पर होता है। वे महापुरुषो के जीवन को कठिनाइयो से परिपूर्ण कर देते हैं।

इतिहास साक्षी है कि जितने भी महापुरुष और भक्त हुए है उनका जीवन कठिनाइयों और विपत्तियो से युक्त ही रहा है। समाज के ऐसे स्वार्थी और

अहंभावी व्यक्ति विशेष रूप से परिजनों ने सदा ही अच्छे व्यक्तियों का विरोध ही किया है। वैसे तो ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। विरोध की अग्नि और संघर्ष की करारी चोटों से ही वे हीरों की तरह चमक उठते हैं। कांटों की बाड़ ही फसलों की रक्षा करती है। कहा भी है –

"निंदक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।"

ऐसे लोग ही महापुरुषों को महापुरुष बनाते है। नरसीमेहता को ही ले, किसका क्या अहित किया था उन्होंने ? सगा भाई सारंगदेव ही दुश्मन बन कर सामने आया! संत ज्ञानेश्वर को ब्राह्मण समाज ने अपमानित कर कष्ट पहुंचाया। मां मीरा को परिजनों ने जहर पिलाया! चैतन्य महाप्रभु संत कबीर गोस्वामी तुलसीदास आदि को क्या क्या कष्ट नही उठाने पड़े। स्वयं भगवान राम और कृष्ण को कितनी विपत्तियों संकट संघर्ष एवं विषमताओं का सामना करना पड़ा यह सब कोई जानता है। वस्तुतः विरोध की विकट घाटियों को अविचल भाव और स्थिर मन से पार करने से ही उन्हें यह पदवी प्राप्त हुई है। व्यक्ति के जीवन में आये संकट और संघर्ष ही उसका परीक्षा काल है।

दाता इसके अपवाद नहीं रहे। इनको तो विरोध की एक घाटी से नहीं वरन अनेक घाटियों से निकलना पड़ा। विरोध इन्हें तो अपने समाज ग्रामवासियों और परिजनों से इतना सहना पड़ा कि जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। एक दिन तो ऐसा भी आया जब जननी भी पराई हो गई। जब परिजन ही दुश्मन बन बैठे तो समाज के व्यक्तियों और अन्य लोगों का क्या कहना ? यह सत्य है कि भगवान अपने भक्तों की कठिन परीक्षा लेता है किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि परीक्षा में सफल होने की शक्ति भी उसी की होती है'।

जैसा कि लीलामृत भाग १ में आपने पढ़ा होगा कि दाता द्वारा सेना की नौकरी छोड़ कर घर लौटने पर संत और महापुरुष के रूप में जब इनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैलने लगी और जब लोगों की भौतिक कामनाओं की पूर्ति एवं कष्टों का निवारण होने लगा तो कारों और मोटरों का तांता बन्धा रहने लगा। दाता के प्रतिदिन बढ़ते हुए सम्मान को देखकर परिजनों एवं स्वार्थीजनों की ईर्ष्या जागृत हो गई। प्रथम तो केवलमात्र ईर्ष्या ही रही किन्तु धीरे धीरे यह ईर्ष्या द्वेष में बदल गई। द्वेष की भावना दुश्मनी के अंकुर जमा लेती है। ऐसे व्यक्ति खुले विरोध की तलाश में रहते है। अवसर मिलने पर ऐसा किया भी।

गरीब परवर होने से दाता ने सदैव गरीबों का ही पक्ष लिया। उनका प्रयास गरीब किसानों, शोषित एवं पतित वर्ग के लोगों को ऊपर उठाने का रहा है। इस प्रवृत्ति से जागीरदार एवं पूंजीपति वर्ग असन्तुष्ट हो गया। दोनों ही वर्गों की प्रवृत्ति

किसानो और गरीबो के शोषण की रही है, अतः दाता उनके लिये आँखो मे तिनके के समान थे।

कोशीथल के नगर कीर्तन मे जब धर्म के ठेकेदारो ने निम्न वर्ग के लोगो को भगवान के संकीर्तन मे भाग लेने से वंचित किया तब दाता ने उसका विरोध कर जो घोषणा की उससे भी समाज के उच्च वर्ग के लोग असन्तुष्ट हो गये थे। वे दाता के प्रति शत्रुता रखते हुए बदला लेने का मौका देखने लगे। उनकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि से सीधा विरोध करने का साहस तो उनमें था ही नही अतः वे अवसर की तलाश मे थे।

नान्दशा मे आयोजित राजपूत सभा मे दाता ने जो उद्बोधन दिया उससे क्षत्रिय समाज के स्वार्थी अग्रणी लोग भी दाता के विरोधी हो गये। जब उन्होने अच्छी तरह से समझ लिया कि दाता उनके पक्ष मे नही हो सकते है तब वे दाता को हर प्रकार से शक्तिहीन बनाने की चेष्टा मे लग गये। द्वेष के वशीभूत होकर उन्हे हर प्रकार से अपमानित करने एवं बदनाम करने की कोशिश में लग गये। वे उन्हे दूध में से मक्खी की तरह समाज से निकाल फेंकने की चेष्टा करने लगे।

रायपुर के गौ-हत्या के मसले को लेकर आसपास के मुसलमानो को कुछ स्वार्थी तत्वो ने इनके विरुद्ध कर दिया। मुसलमान इन्हे अपने धर्म के कट्टर विरोधी मानने लगे। जागीरदार एवं वणिक वर्ग ने अन्दर ही अन्दर ऐसा जाल बिछाया जिससे अनेक लोग धीरे धीरे दाता के विरोधी बनते गये।

इन दिनो दाता गायो के साथ जंगल मे जाया करते थे। चरणोट की जमीन जागीरदार नान्दशा की थी। वर्षाऋतु मे चरणोट की भूमि में यत्र-तत्र फसल की बुवाई की जाती थी और फसल बड़ी होने पर नुकसान स्वयं कराते व दोष दाता के सिर मंड देते थे। नुकसान के कई झूंठे मुकदमे भी दाता पर लगाये गये। इस प्रकार हर तरह उन्हें तंग करने की चेष्टा की जाने लगी।

नान्दशा में तीनो तालाबो के ऊपरवाली भूमि गोचर भूमि थी जिसमे परम्परा से नान्दशा कि ही नहीं वरन् आसपास के अनेक गांवो के मवेशी भी चरने आया करते थे। दाता भी अपनी गायो को इसी गोचर भूमि मे या आसपास के गांवो की गोचर भूमि मे चराया करते थे। नान्दशा के ठाकुर इस चरनोट की भूमि को बेचना चाहते थे। उन्होने इस भूमि में गायो को जाने से रोक दिया जिससे आसपास के लोगो को कठिनाई हो गई। इससे अनेक किसान नान्दशा के ठाकुर से असन्तुष्ट हो गये और इस तरह एक जबरदस्त विवाद खड़ा हो गया। लोग दाता के पास फरियाद लेकर आये। दाता ने ठाकुर को (भाई होने से) समझाने की चेष्टा की किन्तु स्वार्थी कानो ने तनिक भी नहीं सुनी। अन्त मे दाता ने उन्हें राज्य सरकार के पास फरियाद करने का परामर्श दिया। दाता द्वारा गरीबो के इस समर्थन से ठाकुर नाराज होकर जबरदस्त विरोधी बन गया। इस घटना से दाता ठाकुर के

सीधे सघष में आ गये। यह विवाद कई वर्षो तक चलता रहा। भिन्न भिन्न अदालतों से भिन्न भिन्न निणय होते रहे। अपीलो पर अपीलें होती रहीं। अन्त में फैसला जनता के हित में गया किन्तु तब तक परिस्थितिया बहुत कुछ बदल चुकी थीं अत निणय का लाभ जनता को न मिल सका। इधर मूरवामी सघ अपने आन्दोलन में दाता के प्रभाव का काम में लेकर लाभ उठाना चाहता था। दाता से इस सहयोग में सूखा उत्तर पाकर वे भी इनसे नाराज हो गये और वे लोग भी शत्रुता का भाव रखते हुए दाता को नीचा दिखाने के प्रयास में सहभागी हो गये। ऐसी स्थिति में ठाकुर की शक्ति एक-एक ग्यारह की हो गई।

उसी गाँव में मोडा गाडरी नामक एक व्यक्ति जो कुछ किसानों का अगुआ था, जागीरदार साहब के अत्याचारों से दुखी होकर नान्दशा तो छोडना चाहता था किन्तु अन्यत्र न बसकर धरणोट की भूमि में ही एक नया गाँव बसाकर रहना चाहता था। इस प्रकार वह भी जागीरदार साहब एव धरणोट की भूमि चाहनेवाले व्यक्तियों के सीधे सघष में था। इस तरह यहा त्रिकोणात्मक सघर्ष छिड गया।

ऐसे वातावरण में एक रात्रि को किसी ने मोडा गाडरी को गोली से मार दिया। दाता के विरोधियों को जो अवसर की ताक में थे, अच्छा मौका मिल गया। उन्होंने षडयत्र रचकर हत्या का आरोप दाता और उनके सहयोगियों पर लगाने की चेष्टा करते हुए यह अफवाह फैला दी कि दाता ने मोडा गाडरी को मरवा दिया है। अच्छी बात के फैलने में समय लगता है किन्तु बुरी बात कानों-कान पहुँच जाती है। बात की बात में यह सवत्र फैल गई।

घटना की रात्रि को मैं अपने दो सहयोगी अध्यापक श्री कैलाशचन्द्र और श्री कन्हैयालाल के साथ नान्दशा दाता के पास ही था। श्री रामकृष्ण शुक्ल की शिष्या वनस्थली विद्यापीठ की अध्यापिका बहन चन्द्रकला भी नान्दशा में ही थी। सदैव रात्रि के दस बजे तक सत्सग-कीतन होता था। उस दिन भी सदैव की भाँति सत्सग-कीर्तन हुआ। अगले दिन इतवार होने से हम लोग वहीं सो गये। प्रात काल उठते ही इस घटना का पता चला और यह भी पता चला कि सारा दोष दाता पर लगाया जा रहा है। हमें बडा आश्चय हुआ तथा साथ ही क्रोध भी आया किन्तु बेवस थे। विरोधी दल ने अवसर का लाभ उठा कर दाता को अपने पक्ष में लेने की अन्तिम चेष्टा की। उन्होंने दाता को डराया-धमकाया किन्तु सब व्यर्थ रहा। गरीबों का मसीहा गरीबों के खिलाफ क्यो कर जाता ? दाता ने नि शक हो निडरता से षडयत्रकारियों के प्रत्येक कुटिल प्रस्ताव को ठुकरा दिया ?

हत्या का मुकदमा सीधा दाता पर न लगाकर दाता के सहयोगियों श्री जीवन सिंह जी, श्री गोकुल नाई और लाल नाई पर लगाया गया। मामला इस प्रकार बनाया गया कि जीवनसिंह जी ने दाता के कहने से गोली लगाई और दोनों नाई साथ थे। देखने में ठाकुर साहब समुद्रसिंह धना ब्राह्मण, रघुनाथ लुहार नगजीराम

तेली, माधवसिंह, लालसिह आदि थे। पुलिस तफतीस के आधार पर तीनो को अपराधी मान गिरफ्तार कर रायपुर ले गयी। इस प्रकार उस समय दाता पुलिस की पकड़ से वच गये। संभवतः ऐसा इसलिए किया गया होगा कि दाता भयभीत होकर आत्म-समर्पण कर देंगे।

पुलिस में तो इस प्रकार की कार्यवाही चली, उधर विरोधियो ने जोर-शोर से प्रचार प्रारंभ कर दिया। सर्वत्र यह वात फैला दी गई कि दाता ने एक गरीव गाड़री को मरवा दिया हे और पुलिस उन्हें पकड़ कर ले गई। घरघर यही वात फैल गई। अधिकतर लोगो ने सुनी-सुनाई वात पर विश्वास कर लिया। चारो ओर दाता की आलोचना-प्रत्यालोचना होने लगी। विरोध की हवा ही नही चली वरन् भयंकर आँधी चली कि यदि मैं घटनास्थल पर न होता, यदि वस्तुस्थिति से जानकारी न होती और साथ ही दाता की असीमकृपा नही रही होती, तो संभवतः मैं भी विश्वास करने लग जाता कि हत्या वास्तव मे दाता ने ही करवाई है। वहुत से व्यक्ति जो अपने आपको दाता के परमभक्त मानते थे, उनके मुंह से भी यही सुना जाने लगा, "दाता ने वेचारे गाड़री को मरवा दिया। यह काम दाता ने अच्छा नहीं किया। हम नही जानते थे कि दाता इस तरह के छिपेरूस्तम हैं। वेचारे ने उनका विगाड़ा भी क्या था?" जव अपने आदमियो से ही यह सुना जाने लगा तो हम लोगो का घवराना स्वाभाविक था।

उधर पत्र-पत्रिकाओ के पन्ने रंगे जाने लगे। वडे वडे अक्षरो मे शीर्षक थे- 'दाता गिरधारीसिंह जी ने हत्या करवा दी: गरीव को मार डाला: हत्यारे को कड़ी सजा दी जाये' आदि। इस तरह के अनेक समाचार प्रकाशित हुए।

तीसरे दिन तो रायपुर और नान्दशा मे कांग्रेस, जनसंघ, हिन्दूमहासभा, साम्यवादी दल आदि अनेक दलो के नेता आ धमके। सामने वे ही लोग थे। वास्तविकता सामने प्रस्तुत करने वाला कोई नहीं। हमारी कौन सुनतां? नगारे की आवाज में तूती की आवाज का क्या मूल्य। जो वात कही गई उसी पर विश्वास किया उन लोगों ने। इसी को सत्य मान विरोधियो की पूरी सहायता का आश्वासन उन नेताओ की ओर से मिला। नेताओ के सहयोग से विरोधियों को काफी वल मिला। आसपास के गाँवो के लोग भी इसी प्रचार से प्रभावित होकर मान वैठे कि हत्या दाता ने ही करवाई है। इस तरह घर-घर में दाता के प्रति घृणा का वातावरण वना दिया गया। कतिपय लोग ही जानते थे कि दाता निरपराध है और दाता को फंसाने के लिये दुश्मनो का रचा हुआ जाल है किन्तु विरोध के सामने आने का साहस नही था। कुछ लोगों ने तनिक साहस भी दिखाया किन्तु उन्हे कुचल देने का भय दिखाया गया। भय से वे भयभीत होकर चुप हो गये।

हम चन्द लोग ही ऐसे थे जिन्हें गलत प्रचारको पर आक्रोश था और समय समय पर उनकी करतूतो का वखान कर देते। हम लोगो ने नान्दशा जाना नही

छोड़ा इस पर लोग हमारे भी पीछे पड़े। हमें डराया धमकाया गया, मृत्यु का भय दिखाया गया, समाज से सम्बन्ध विच्छेद का भय और मुकदमे में फंसा देने का भय दिया गया किन्तु दाता की कृपा से उनकी चालें सब व्यर्थ ही रहीं। पुलिस भी हमें डराने-धमकाने में पीछे नहीं रही। किन्तु दाता की लीला ही विचित्र है। ज्यों ज्यों लोग हमें दाता से दूर करने का प्रयास करते रहे त्यों त्यों हम दाता के नजदीक होते गये। साथ ही दिन प्रति दिन अन्याय एवं अत्याचारों से जूझने के भाव उग्र रूप से उभरते गये।

हम लोगों के मन में विश्वास हो गया कि लोग चाहे कुछ भी कर लें, भगवान के यहाँ न्याय है। वहाँ अन्धेर नहीं है। वहाँ दूध का दूध और पानी का पानी है। कहा भी है 'उथपै पुनि को जाहिं राम थपै। जिसकी राम रक्षा करता है उसको नष्ट करने वाला कौन है ? राम जिसको बनाना चाहता है वह अवश्य बनेगा और राम जिसको नष्ट करना चाहता है उसको बचाने वाला कौन ? ठीक ही कहा है –

"जाको राखे साईयाँ, मार सके न कोय।
बाल न बाका करि सके, जो जगवैरी होय॥"

हमारे साथी सोहनलाल जी एवं जानकीलाल जी ने जब यह बात सुनी त्यों ही स्थिति का जायजा लेने हेतु वकील साहब नारायणलाल जी को लेकर रायपुर आ गये। वास्तविकता मालूम पड़ने पर वे लोग भी स्थिति का सामना करने को तैयार हो गये। चन्द्रकला बहन ने जब जयपुर पहुँचकर वहाँ के सत्संगियों को वास्तविकता बताई तो वे तथा अजमेर के सत्संगी नान्दशा आ पहुँचे। उन लोगों के आने से हम लोगों को काफी बल मिला किन्तु भयंकर आंधी जो उस समय उस क्षेत्र में चल रही थी उससे रक्षा करने का काम तो दाता का ही था। वे ही इस स्थिति से उबार सकते थे।

उधर दाता शान्त और चुप थे। उनके चेहरे पर किसी प्रकार की शिकन या चिन्ता की रेखा नहीं थी। जब भयभीत होकर हम लोग कहते कि अब क्या होगा तो हमें आश्वस्त करते हुए कहते "घबराने की बात नहीं। मेरे दाता की जो मरजी होगी वही होगा। किसी के करने-धरने से क्या होता है। यदि दाता को जेल दिखानी होगी तो अवश्य दिखायेगा। रोकने वाला कौन होगा ! मेरा राम तो दाता की रजानुरज है। चाहे वह हाथी पर बैठावे चाहे हाथी के पैरों से कुचलवा दे। उसकी रजा में मेरी रजा है। तुकाराम महाराज ने ठीक ही कहा है –

ठेविले अनंते तैसेची रहावे।
चित्ती असो द्यावे समाधान॥

अत: ईश्वर जिस स्थिति में रखे उसी में आनन्द मानना चाहिए।"

घर के व्यक्ति भी फैलते हुए समाचारों को सुन सुन कर दु:खी होते थे। उन दिनों नित्य नई नई अफवाहें आती थीं। मातेश्वरी जो जगत जननी और लक्ष्मी

स्वरूपा है। वह सब जाननेवाली है। वह जानती है कि यह खेल सब दाता का ही है किन्तु दिखावे के रूप मे वह भी इस भयंकर आँधी से भयभीत और चिन्तित दिखाई देने लगी। उसके खेल ही निराले है। माँ सती त्रिकालदर्शी थी। वह जानती थी कि भगवान विष्णु नर-लीला करने को राम के रूप मे अवतरित हुए है और सीता लक्ष्मी का अवतार है। यह सब कुछ जानते हुए भी राम को सीता के वियोग मे विलाप करते हुए देख कर भ्रमित हो गई। फिर समन्दर कँवर समुद्र की विकराल तरंगो से कैसे बच सकती है। हत्या के सातवे दिन यह अफवाह जोर से चली कि पुलिस दाता को गिरफ्तार करने आ रही है। इससे माँ चिन्तित हो गई। उनका दाता के प्रति विश्वास मे तो किसी बात की कमी नही थी किन्तु दाता की माया के आवरण से वे वर्तमान वातावरण से प्रभावित होकर विचलित हो गई। यह खबर सुनकर माँ चिन्तित हुई और उनके नेत्रो से आँसू छलक पडे। जब वे बहुत घबराई तो वे ही सिद्ध पुरुष जो उनकी बीमारी के समय उपस्थित हुए थे, प्रकट हुए। उन्होने कहा, "यह कमजोरी क्यो ? यह आँधी का झोका तो जैसे आया है वैसे ही चला जावेगा। घबराने की बात नहीं। दाता पर विश्वास रखो, हिम्मत रखो।" इन शब्दो को कह कर वे अन्तर्ध्यान हो गये। मातेश्वरी जी प्रसन्न हुई। उनको प्रसन्न देख कर हम सब प्रसन्न हो गये। सबसे बड़ा सम्बल मिला। हम मस्त होकर गा उठे :-

प्रभु की बड़ी अनोखी रीत,
हंसना सीखा हमने रो के, सब कुछ पाया सब कुछ खो के।
हार में देखी जीत, प्रभु की बड़ी अनोखी रीत। ....

दाता पर तो उस वातावरण का कुछ भी प्रभाव नही हुआ। उनकी रीति नीति मे तनिक सा भी अन्तर नही आया। वे पूर्ण रूप से स्थितप्रज्ञ थे। न उन्हे विषयो की चिन्ता थी ओर न उनमे किसी प्रकार का क्रोध ही था।

'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रस वर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥"

विषयो के साथ साथ दाता ने तो राग की भी निवृत्ति कर दी थी। हम सब लोग षड्यंत्रकारियो पर आक्रोश कर रहे थे किन्तु दाता किसी को दोषी नही मान रहे थे। उनका कथन था कि 'दाता' की इच्छा बिना कुछ होता नहीं है। मेरा दाता तो घट घट में निवास कर रहा है। जितना वह ठाकुर साहब मे है या थानेदार साहब में है उतना ही वह अन्य में, मन्दिर और सभी में है। दोष लगानेवाला भी वही है और जिस पर दोष लगाया जा रहा है वह भी वही है। सब कुछ वही है अतः चुप होकर उसका खेल देखते रहो।

साधारण व्यक्ति हो, सरकारी कर्मचारी हो या पुलिस के लोग, प्रभावशाली व्यक्तियो का या धनी लोगो का प्रभाव तो पड़ता ही है। पुलिस भी प्रभाव मे

थी ही। जिस प्रकार मामला सामने प्रस्तुत किया गया जो गवाह प्रस्तुत किये गये उसी के आधार पर मामला तैयार किया गया विशेष छानबीन कर तथ्य पर पहुँचा जा सके, ऐसी कोई बात हुई नहीं। केस को सगीन बना कर गंगापुर 'मुन्सिफ मजिस्ट्रेट' के यहा प्रस्तुत कर दिया गया। मुल्जिमो की ओर से वकील श्री नारायणलाल जी ने नि शुल्क पैरवी की, जबकि विरोध में पुलिस पैरोकार के अतिरिक्त और भी तीन-चार उत्तम वकील खड़े किये गये। लालू नाई को तो प्रारंभ में ही मजिस्ट्रेट ने जमानत पर रिहा कर दिया। मुकदमा चलता रहा। विपक्ष में अनेक गवाहदार थे। पक्ष में एक गवाह भी नहीं। गवाहों के बयानो को देखते हुए आशा की कोई किरण नहीं थी। हम सभी लोग निराश से थे। एक गवाह के बयान शेष थे। वह मरने वाले व्यक्ति का लड़का था। वकीलों द्वारा पूरी तरह पढा-पढा कर तैयार किया गया था। उससे क्या आशा की जा सकती थी। किन्तु कुदरत दाता की। उस गवाह के बयान ने मामले को ही पलट दिया। वकीलों के प्रयास सब विफल हो गये। उस सोलह वर्ष के बालक ने वास्तविकता उगल दी। सब खड़े खड़े देखते ही रह गये। मजिस्ट्रेट को वास्तविकता का पता चला। उसने अभियुक्तो को जमानत पर रिहा कर दिया और मुकदमे को सैशन कोर्ट के सुपुर्द कर दिया। लोग देखते रह गये। वे चाहते क्या थे और हो क्या गया। ठीक ही कहा है –

जितने तारे गगन में, उतने शत्रु होय।
जा पै कृपा रघुनाथ की, बाल न बाका होय॥

दाता की जिस पर कृपा होती है उसका कोई क्या कर सकता है।

सैशन कोर्ट में कुछ समय तक मुकदमा चलता रहा। यहाँ भी वकील की जिरह से कुछ गवाह डावाडोल हो गये और अन्त में मुकदमा खारिज कर दिया गया। सैशन कोर्ट के फैसले में भी एक विचित्र और अनहोनी बात सुनने को मिली। जज साहब के सामने जीवनसिंह जी अपराधी के रूप में उपस्थित थे। उनके शरीर के गठन रूप-रंग और आकृति को देखकर जज के मस्तिष्क में यह बात जच गई कि यह व्यक्ति अवश्य कत्ल कर सकता है। उसे सजा मिलनी ही चाहिये। उसने फैसले के एक दिन पूर्व निर्णय लिख कर रख दिया जिसमें अभियुक्त को सजा होनी थी। जब फैसला कोर्ट में पढा गया तो उसमें 'अभियुक्त को बरी किया जाता है' लिखा मिला। इस पर जज साहब को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। यह सब कैसे हो गया। इस बात को उन्होंने चीफ जज के सामने स्वयं स्वीकार की। यह जज धावाई साहब थे। बाद में वे दाता के दर्शन करने हेतु भी आये थे।

इस षडयन्त्र के केन्द्र बिन्दु जागीरदार साहब और उनके सहयोगी ही थे। मरने वाले व्यक्ति की पत्नी ने ही यह भण्डाफोड़ किया। उसने दाता व अन्य

कई लोगो के सामने स्वीकार किया कि चार बीघा जमीन का लालच उसे दिया गया था। दाता को फंसाने की कार्यवाही सब कुछ उनकी थी। चूंकि मुकदमा खारिज हो गया इसलिए जमीन तो नही दी सो नही दी वरन जो कुछ है उसी को छीना जा रहा है। दाता तो बडे दयालु है। उन्होने उसे न केवल क्षमा कर दिया वरन रोजी रोटी की भी व्यवस्था कर दी। हम लोगो ने उन पर मुकदमा चलाने को निवेदन किया किन्तु दाता ने यह कह कर टाल दिया, ''यह सब दाता का खेल है।''

o o o

हरनिवास - गृहप्रवेश

हवेली से अलग होने के पश्चात दाता ने कच्चे नोहरे में लगभग छ वर्ष तक निवास किया। वहाँ केवल एक कमरा और बाहर दरवाजे में दो चबूतरे थे। उसमें अब निर्वाह सम्भव नहीं था। ई सन १९५० और उसके बाद तो दर्शनार्थियो और सत्संगियो की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने से उनके विश्राम और भोजन-व्यवस्था करने में कठिनाई अनुभव की जाने लगी। उस समय तक घर में तीन बालिकाएँ एक बालक एक पत्नी और एक स्वय ऐसे छ सदस्य थे। दाता का कोमल हृदय किसी के कष्ट को सहन करने में प्रारंभ से ही असमर्थ रहा है। वे दूसरो के दु ख और कष्ट को देख कर द्रवीभूत हो जाते है और उसे दूर करने को तत्पर हो जाते हैं। यह उनकी दृढ संकल्प-शक्ति और कर्मठता है कि जिस किसी कार्य को करने का बीडा वे उठा लेते है वह कार्य अवश्य ही श्रेष्ठता और सुन्दरता से सम्पन्न होता ही है। बाधाए और कठिनाइयाँ उन्हें तनिक भी विचलित नहीं कर पातीं। अत उन्होंने नया निवासस्थान बनवाने का निश्चय किया।

मकान के लिए भूमि की आवश्यकता हुई जो प्रभु-कृपा से पूरी हुई। सन १९५१ में सेठ जाहरमल जी से गाँव से सटी हुई दो बीघा कृषि भूमि एक हजार रुपयो में क्रय कर ली। उस भूमि के आधा बीघा आँगन में एक नये मकान बनवाने की योजना बनी। सत्संगी अधिशासी अभियन्ता श्री चुन्नीलाल जी बतरा ने एक आधुनिक प्रकार के फ्लैट का नक्शा बना कर प्रस्तुत किया। दाता ने हँसते हुए उस प्रस्ताव को यह कहते हुए निरस्त कर दिया कि जहाँ रहना है उसके परिवेश और वातावरण के अनुकूल ही कार्य करना श्रेयस्कर होता है। इस संकेत के यथार्थ बोध को श्री बतरा और अन्य सत्संगी नहीं समझ सके किन्तु दाता की नजर में तो भविष्य स्पष्टतया झलक रहा था। दाता ने स्वय ही अपनी योजना के अनुसार मकान का निर्माण प्रारंभ करवाया जो ग्राम्य वातावरण, सुविधा और सुरक्षा की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। कुछ ही वर्षों बाद की विरोधी घटनाओं ने दाता के उक्त कथन की दूरदर्शिता स्वत प्रकट कर दी।

उस समय दाता भंडार में आय की अपेक्षा व्यय अधिक हो रहा था। ऐसी विषम स्थिति में भी दाता ने इस भार की चिन्ता किए बिना ही अपने दाता का नाम लेकर उसकी महर के आसरे निर्माण कार्य का श्रीगणेश करा दिया। सभी को आश्चर्य हो रहा था कि इतना विशाल निर्माण कब और कैसे होगा ? परन्तु दाता की लीला ही विचित्र है। जो पूर्णतया उस पर आश्रित रहता है उसकी नैया

का खेवनहार वह स्वयं हो जाता हे। आप्त वचन है कि आश्रित वन्दो के सभी योगक्षेग का निर्वहन वे दीनदयालु ही करते हे।

प्रभु के इसी वरद रक्षा-वन्धन मे सन्निहित आश्वासन के प्रति दाता की वाल्यकाल से ही अटूट आस्था रही हे। अव जव लोक मे उसे उजागर करने का अवसर आया तो फिर उनकी निष्ठा ओर आत्मविश्वास कैसे डगमगा सकते है? दाता समय समय पर सत्संग मण्डली के समक्ष इस प्रान्त के मारवाड़ क्षेत्र के प्रसिद्ध चारण सन्त महापुरुप ईश्वरदास जी जीवन वृत्त एवं उनके परम इप्ट देव सदगुरु के प्रति समर्पित दृढ़-विश्वास-भक्ति का वर्णन अनेक वार करते रहते है। इस प्रसंग मे उनके द्वारा रचित निम्नांकित उद्धरण मे पयुक्त होता हे :-

"अलख भरोसे ऊवले, आदण ईसरदास।
ऊवलत्ता मे ऊर दे रख पूरा विश्वास॥"

दाता की अनेक चारित्रिक विशेपताओ मे से एक यह हे कि उनकी कथनी मे सदा पूर्ण सामंजस्य वना रहता है।

'कथनी थोथी जगत में, करणी उत्तम सार।'

इनकी कथनाभिव्यक्ति का सहरूगुणा रचनात्मक अनुपालन एवं प्रयोग इनकी कार्य विधा का अनिवार्य अंग है। महापुरुपो के चरित्र की यह ही दृढ़ता-विशिप्टता लोक को उनका पदानुगामी वनाने में प्रेरक शक्ति का संचार करती हे। अस्तु अपने परम-आराध्यदेव सद्गुरु समर्थ के श्री चरणारविन्दो की पवित्र रज का स्मरण करते हुए उन्होने अलख के आसरे उवलते हुए आदण में अपने विश्वास की मुट्ठी भर की खिचड़ी उंडेल ही दी और जव दो वर्प की कालावधि पश्चात् वह विश्वास फलीभूत होकर आकार को प्राप्त हुआ तो पक्ष और विपक्ष दोनो वर्गो की ही आँखे उसकी चकाचोध से चकरा गई। जितने मुंह उतनी ही वाते इतना सुन्दर नवनिर्माण कार्य कैसे सम्पूर्ण हो गया? इसका उत्तर देने की हमे आवश्यकता नही है। पूज्य गोस्वामी जी ने ही डंके की चोट उसे पहले ही यो प्रकट कर रखा है :-

'जे गुरुचरणरेणु सिर धरहिं।
ते नर सकल विभव वश करहिं॥'

यहाँ आपको स्मरण होगा कि लीलामृत भाग १ के आवू गुरु शिखर प्रसंग मे दाता ने अपने सदगुरु समर्थ के दर्शन प्राप्ति के अवसर पर उनकी चरण-धूलि मस्तक पर त्रिपुंड की भाँति लगाते हुए यह उद्‌गार व्यक्त किए थे :-

'हे नाथ! आपके पावन चरणपादुका की यह धूलि, इस अधम दीन-हीन पामर कूकर के मस्तक की विभूति वन कर शोभा श्रृंगार वने।" उन्होने चरण-पादुका न मांगकर उनकी धूलि ही मांगी। उसे सिंहासन पर नही शिरासन पर प्रतिप्ठित किया तो फिर यह नवनिर्मित भवन, सकल वैभव वश में करने की क्षमता

के अनुपात में तो वस्तुत एक सामान्य कण ही ठहरता है। जितनी आवश्यकता अनुभूत हुई तदनुकूल ही पूर्ति की आकांक्षा हृदय राज्य में जगी उससे अधिक नहीं। यही साधु-स्वभाव है।

"साधु न पल्ले बाधहि, उदरसमाता लेय।
आगे पाछे हरि खडे, जब मागे तब,देय ॥" सत कबीर

तब दाता ने इस भवन का नामकरण किया 'हरनिवास । इसके साथ साथ इसका भावी सरक्षक-पहरेदार जो अब तक गोकुलाष्टमी को उत्पन्न होने के कारण 'गोकुल के बालनाम से पुकारा जाता था, उसका भी नामकरण हुआ 'हरदयालसिंह'। यह दाता की अपरिग्रह वृत्ति का परिचायक है कि उनके नाम पर कोई जमीन-जायदाद नहीं है। उन सब पर कु हरदयालसिंह का स्वत्व है। दाता का अपना कुछ नहीं है।

सभव है आपको यह जानने की उत्सुकता जगी हो कि इस भवन में क्या क्या भाग बने? आवश्यक जानकारी इस प्रकार है – एक आयताकार उत्तराभिमुख मकान जिसके बीचोबीच ऊँचा-चौडा किलेनुमा लोहे का कपाटयुक्त प्रवेश द्वार, जिसके बाहर मुख्य मार्ग से सटे दोनों ओर दो चबूतरे। चौडी ढकी हुई पोल जिसके दाहिनी ओर एक वर्गाकार बडा हॉल तथा उसके अन्दर खुले दो द्वारों का एक कमरा, पोल में बायीं ओर सलग्न बरामदा और दो द्वारो वाला लम्बा कमरा तथा बरामदे में प्रवेशद्वार लिए हुए एक बडा सत्सग हॉल जिसके अन्दर भी एक कमरा खुले दो द्वारों का और हॉल का एक द्वार दक्षिण दिशा में खुले चौक की ओर खुलता हुआ। मध्य भाग दिवारों से चार आयाताकार खण्डो में विभक्त खुला स्थान, पीछे के पर्याय दक्षिणी भाग में पाच कमरे जिनमें से एक में तहखाना बरामदा और सलग्न रसोईघर खुले पक्के आगन सहित। पश्चिमी-दक्षिणी भाग में लम्बा घास-घर दो भागों में। उसके आगे गो-शाला। फिर उत्तरी पश्चिमी भाग के कोने में एक कुआ-आधा अन्दर और आधा बाहर। उसके साथ एक खुला रसोईघर और तीन कमरे। कुंए का नाम 'शिव-सागर रखा गया। कुंए के बाहर वाले आधे हिस्से में गाँव के समस्त निवासियों को बिना किसी जातिगत भेदभाव के पानी भरने की पूर्ण स्वतत्रता है क्यों कि गाँव में इसके पहले मीठे पानी का एक ही कुआं गढ के पास जागीरदार का है जिस पर वे जब उनकी इच्छा नहीं होती, तो पानी भरने की मनाही और रोक लगा देते है। पूर्व में पीछे की ओर के दक्षिणी कोने में एक नोहरा है जिसमें शौचालय और स्नानगृह की व्यवस्था है। पूर्व दिशा की ओर आगे और पीछे के भाग में ऊपर चढने के लिए दो जीने है। इस प्रकार इस मकान को बनवाने में हरप्रकार की सुविधा का ध्यान रखा गया। दाता की कृपा,से मई सन्‌ १९६३ में यह भवन बनकर पूरा हुआ। केवल प्लास्टर का थोडासा कार्य शेष

रहा जिसे बाद में धीरे धीरे पूरा करा लेने का विचार रहा। इसके निर्माण कार्य मे श्री बतरा साहब की विशेष रुचि, देखरेख और कम व्यय मे ठोस कार्य कराने की चेष्ठा प्रशंसनीय रही। सामान्यतया कुछ सत्संगियो का भी शारीरिक, आर्थिक और मानसिक सहयोग प्राप्त हुआ।

गृहप्रवेश हेतु आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी विक्रम संवत् २०१०, ई. स. १९५३ का शुभ मुहूर्त निश्चित हुआ। यह दाता का जन्म दिन भी है। इस अवसर पर गुरु-पूर्णिमा का सत्सग भी होता है, जिसमे प्रायः सभी सत्संगी उपस्थित होते है। इस अवसर पर सत्संगियो के अतिरिक्त सम्बन्धी एवं परिजन भी आमंत्रण पर आये।

दाता लोक और वेद दोनों के अनुकूल समयोचित आचरण करते है। निन्दा और स्तुति दोनो ही से परे हट कर ये जीवन के यथार्थ का आनन्दपूर्वक निर्वाह करने में एक ओर जहां दक्ष है, वही सड़ी गली रुढ़ियो और अन्धविश्वासो के परित्याग में भी क्रान्तिकारी भूमिका अदा करने में उतना ही कुशल साहस दिखाते है। ये सब को साथ लेकर आगे बढ़ने में विश्वास करते है। एक ओर तो सांस्कृतिक उच्च परम्परा का पालन होता रहता है ओर दूसरी ओर सामाजिक दशा में भी परिवर्तन होकर अपेक्षित सुधार। हमें यह सदा स्मरण रखना है कि दाता एक सद्गृहस्थ है न कि गृहत्यागी-बैरागी-सन्यासी। इन्हें 'अपने दाता' से गृहस्थ धर्म के पालन का ही सदुपदेश मिला। प्रत्येक वस्तुस्थिति के परिपेक्ष्य में इस तथ्य को नकारना नहीं है बल्कि इसे दृष्टिगत रखते हुए ही इनका सम-सामयिक मूल्यांकन करना है।

अस्तु, इस आयोजन में भी जहां शास्त्रविधि का पालन हुआ, वहीं पर्दा परिपाटी का त्याग करके महिलाएं मांगलिक गीत गाती हुई दाता और मातेश्वरी जी के गठ-जोडे के साथ साथ चल पड़ी। दाता अपने करकमलो में प्रज्वलित दीपक थामे हुए और मातेश्वरी गठ-जोडे के साथ सिर पर मांगलिक कलश लिए हुए नोहरे से हर-निवास को चल पडे। पीछे पीछे भक्तजन व अन्य लोग बड़ी मस्ती से कीर्तन करते हुए जा रहे थे। अहा! कितना मनोहारी दृश्य था वह जिसकी स्मृति आज भी बनी हुई है। इस हर्षोल्लास में दो सौ गज की दूरी को पार करने में एक घण्टे का समय लग गया। दाता ने दीपक ले जाकर सत्संगभवन में रखा जहां अखण्ड कीर्तन प्रारंभ हो गया। भीतरी भाग में पण्डित श्यामसुन्दर जी शर्मा, जयपुरवालों ने विधि-विधान से वास्तु-पूजन यज्ञ आदि कर्म सम्पन्न करवाये।

उस दिन लगभग एकहजार व्यक्तियों के लिये भोजन-प्रसाद बना। पूरे दिन सत्संग एवं प्रसाद चलता रहा। अखण्ड कीर्तन तीन दिन तक चलता रहा। त्रयोदशी को शाम को ग्रामवासियों के मनोरंजन के लिए आतिशबाजी का कार्यक्रम हुआ। यह कार्यक्रम अपने आप में निराला और ग्रामवासियो के लिए अत्याकर्षक था। रात्रि को डाक्टर साहब जगन्नाथ जी के निर्देशन में रायपुर नवयुवक मण्डली

की ओर से 'भक्त अम्बरीष' का नाटक मच पर प्रस्तुत किया गया। नाटक से सभी लोग, सत्सगी और ग्रामवासी सभी आनदविभोर हो उठे। इस प्रकार पूण, आनन्द उल्लास सहित हरनिवास में यह शुभ प्रवेश पूर्ण हुआ।

इस अवसर पर आसपास के अनेक क्षत्रिय परिवार ठाकुर एव जागीरदार भी आये। सत्सग मण्डली में भी राजा महाराजा, उमराव, उच्चाधिकारी प्रतिष्ठित व्यवसायी एव अन्य सामान्य जन, हर तबके और जाति के लोग इस समारोह में सम्मिलित हुए। भोजन-प्रसाद के बाद दाता ने उपस्थित जन-समुदाय के समक्ष अपने दाता की महत्ता का वणन करते हुए कहा, "जो व्यक्ति मेरे दाता पर पूण-तया आश्रित है उसे कुछ भी करने को शेष नहीं रहता है। मेरे राम को न तो कोई आवश्यकता है और न कोई खच ही। दो रोटी और दो लगोटी चाहिए जो दाता आज भी दे रहा है। आप लोग मेरे दाता के प्रति प्रेमाकर्षण से आते हैं और आवास के अभाव में कष्ट पाते है। वर्षा, सर्दी और गर्मी के दिन खुले मे रहना पडता है, इस लिए मेरे दाता ने दया कर इस भवन का निर्माण आप लोगो के लिए करवाया है। इस जीवन में दाता ही सार हे, वही परम निधि हे। अत उसे कभी मत भूलो। बन्दा तो खाली हाथ ही आता है और खाली हाथ ही जाता है। धन-दौलत, महल-मालीया सब यही पडे रह जायेंगे। परोपकारवृत्ति रखते हुए जो जीवित रहते हैं उनका जीवन ही सार्थक है। अन्य तो पशुवत भार ढोते हैं धर्मेण हीना पशुभि समाना'।

दाता ने और भी कइ बातों पर प्रकाश डाला। इस प्रकार बडे उत्साह एव आनन्द के साथ गृहप्रवेश का कायक्रम सम्पन्न हुआ। सत्सग का कार्यक्रम तो प्रतिपदा तक चलता रहा। आतिशबाजी का आयोजन भी पूर्णिमा तक होता रहा। आतिशबाजी का आयोजन सेठ दयाल जी ने किया था। रात्रि के मनोरजक कार्यक्रमों ने इस आयोजन के चार चाद लगा दिये।

o o o

अनुराग की सहज धारा

दाता सत्यस्वरूप है और समय समय पर अपने शिष्यो को पात्रानुसार सत्य का भान कराते रहते हैं। इनकी अहेतुकी कृपा से अनेक लोग निहाल हो चुके है। ऋषि-महर्षि एवं महामुनियो ने जिस शक्ति को प्राप्त करने में अपने शरीर को सुखा कर कांटा कर दिया, युग युग तक जिन्होने तपस्या की, फिर भी जिस शक्ति को प्राप्त करने मे कठिनाई का अनुभव किया, उस परम शक्ति को इनकी कृपा की एक झलक मे अनेक लोगो को प्राप्त कर निहाल होते देखा गया है। समुद्रसिह जी जैसे प्राणी को एक ही फटकार मे समदर्शी बना दिया गया। एक नही अनेक उदाहरण ऐसे है जिन पर दाता ने अहैतुकी कृपा कर उनकी काया पलट कर दी। श्री रामप्रकाश जी महाराज पर जो कृपा हुई वह किसी से छिपी नहीं है।

रामप्रकाश जी महाराज का परिचय

श्री रामप्रकाश जी महाराज रामस्नेही सम्प्रदाय मे एक उच्च कोटि के संत और चिकित्सक हुए है। सैकड़ो की संख्या मे इनके अनुयायी थे। चिकित्सा क्षेत्र मे इनका अच्छा अनुभव होने से अनेक रियासतो के राजा-महाराजा भी इनसे उपचार करवाया करते थे। उदयपुर के महाराणा साहब ने इस सम्प्रदाय के बड़े महाराज का चातुर्मास उदयपुर मे इन्ही के कारण कराया था। इनके अतिरिक्त अनेक ठाकुर, राव राजा और बड़े बड़े जागीरदार भी चिकित्सा हेतु इनके पास आया करते थे। इस सम्प्रदाय की मुख्य गद्दी शाहपुरा पर बड़े महाराज श्री निर्भयराम जी के मुख्य उत्तराधिकारी आप ही थे किन्तु आपके सुधारवादी विचारो के कारण श्री निर्भयराम जी से मतभेद था। आपने इस मतभेद के कारण अपनी गद्दी का अधिकार छोड़ दिया। आप बड़े त्यागी, परोपकारी और उच्च विचारो के संत थे। देवगढ़, आमेट, करेड़ा आदि स्थानो के राजा इन्हें बहुत मानते थे। इन्ही के प्रयासो से इन स्थानो पर राम-द्वारो का निर्माण किया गया। रामस्नेही सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय के लोग भी इनके प्रति अपार श्रद्धा रखते थे। इनके अनेक कण्ठीवन्ध शिष्य थे। दाता के पिता श्री जयसिह जी भी इनके कण्ठीवन्ध शिष्य थे। इनके रामस्नेही शिष्यो मे प्रमुख शिष्य श्री जतनराम जी है।

रायपुर चातुर्मास

एक वर्ष इनका चातुर्मास रायपुर मे हुआ था। रायपुर का रामद्वार वहाँ के विद्यालय के निकट ही है। संयोग से मैं भी इसी विद्यालय में प्रधानाध्यापक था। धीरे धीरे मेरा सम्पर्क श्री रामप्रकाश जी से हुआ। इनकी त्यागवृत्ति और सेवाभाव

से मैं बडा प्रभावित हुआ। सम्पर्क बढने पर इनका सहज स्नेह मुझे मिला। उस समय मैंने दाता के दर्शन नही किये थे और उनके विरोधी तत्वो के सम्पर्क में आने से उनका विरोध करता था। एक दिन मैंने रामप्रकाश जी महाराज से दाता के सम्बन्ध में जिज्ञासा वश जानने हेतु निवेदन किया तो उन्होंने बताया, 'उनके माता-पिता दोनों ही मेरे शिष्य है। वर्ष मे एक-दो बार जाया करता हूँ। मैंने तो वहाँ महापुरुष जैसी कोई बात नहीं देखी। वह तो निरा छोकरा है। वहाँ कुछ नहीं धरा है। जो कुछ सुनने को मिला, वह सब आडम्बर है। इस कथन से मैं दाता के प्रति और भी अश्रद्धा रखने लगा।

कुछ समय बाद रायपुर हाईस्कूल खुलवाने के उद्देश्य को लेकर दाता के पास जाने का सुअवसर मिला। वहाँ जाने पर मेरा विवेक जागृत हुआ और मै दाता के चरणो में श्रद्धा रखने लगा। कुछ ही वर्षो के बाद श्री रामप्रकाश जी महाराज का चातुर्मास पुन रायपुर में हुआ। उस समय विद्यालय के कुछ छात्रो और अध्यापको का स्नेह भी दाता के चरणो में हो गया था। शिवसिंह जी भी मेरे ही पास रहने लगे थे। वे दाता के अनन्य सेवक है। हम लोग आमतौर से शाम को नान्दशा जाकर सत्सग में सम्मिलित होते थे। जिस दिन नान्दशा नहीं जा पाते उस दिन विद्यालय मे ही भजन कीर्तन का आयोजन करते। दाता के चित्र के सन्मुख बैठ कर यह कार्यक्रम देर रात तक किया करते थे। रामप्रकाश जी महाराज भी भजन-कीर्तन की आवाज से आकर्षित होकर हमारे यहा आ जाया करते थे। दाता की तस्वीर देखकर कई दिन तक यही कहते रहे, 'तुम लोग किस चक्कर में पड गये हो? भगवान को छोड कर एक साधारण व्यक्ति को ईश्वर मान कर पूजा करते हो। राम या कृष्ण की तस्वीर सामने रखो तो कुछ सार भी निकले, तुम्हारा कल्याण भी हो।"

हम लोग तो तब तक दाता के रग में गहरे रग गये थे। अत हम लोगो पर उनके कथन का कोई प्रभाव नहीं हुआ। उनके प्रति अपार श्रद्धा होने से उनके कथन का बुरा भी नहीं मानते थे। धीरे धीरे वे प्रतिदिन आने लगे। उनके आने से सत्सग में आनन्द की वृद्धि होने लगी। हमारी सत्सग के प्रति रुचि और कीर्तन-भजन में हमारी मस्ती देखकर कभी कभी वे द्रवीभूत हो जाते। धीरे धीरे उन्होने दाता का विरोध करना बन्द कर दिया।

नान्दशा गमन

एक दिन उन्होने नान्दशा चलने की इच्छा प्रकट की। उनके इस इरादे से हम भयभीत हो गये। भयभीत होने का कारण था श्री रामप्रकाश जी के दाता के प्रति पूर्व के विचार। अत हमने उन्हें टाल दिया। किन्तु उनकी नान्दशा चलने की इच्छा तीव्र होती गई। अनेक बार टालमटोल के बाद एक दिन वे विद्यालय के बाहर आकर खड हो गये। हमारा नान्दशा जाने का समय हुआ और

ज्यो ही विद्यालय के बाहर निकले, उनको बाहर खडे देखा। मजबूर होकर उन्हे साथ लेना पड़ा। दाता नोहरे के बाहर एक पत्थर पर बैठे हुए थे। श्री राम प्रकाश जी महाराज को देखकर खडे हो गये तथा आगे बढ़ कर दोनो हाथो से चरण-स्पर्श कर प्रणाम किया। फिर बडे आदर के साथ उन्हें दरवाजे मे ले गये व एक पाटे पर उनका आसन लगा दिया। कुछ देर इधर उधर की बातें होती रही और फिर श्री रामप्रकाश जी महाराज आराम करने लगे व दाता अन्दर पधार गये। कुछ समय पश्चात् उन्हे दूध पिलाया गया।

रामप्रकाश जी महाराज पर कृपा

ठीक ८.३० बजे दाता का पधारना हुआ। वे चबूतरे पर जहाँ उनका आसन था विराज गये। सदैव की भाँति सत्संग प्रारंभ हुआ। गुरु-महिमा के कुछ पद बोलने के बाद कीर्तन आरंभ हुआ। कुछ समय तक तो दाता आसन पर बैठे ही बैठे कीर्तन करते रहे। हम लोग भी नीचे आंगन मे बैठे हुए दाता के साथ साथ बोल रहे थे। कुछ समय पश्चात् दाता करताल हाथ में लेकर चबूतरे पर खडे हो कर कीर्तन करने लगे। कीर्तन मे ही उनका नृत्य प्रारंभ हो गया। धीरे धीरे नृत्य एवं कीर्तन दिव्य होता गया। सभी उपस्थित लोग भाव-विभोर हो गये। कुछ लोगो को तो तन की सुधि भी नही रही। उनका बोलना बन्द हो गया। मूक दृष्टि से पागलो की तरह वे दाता को निहारने लगे। श्री रामप्रकाश जी सोते ही सोते कीर्तन का आनन्द ले रहे थे। ऐसा दिव्य व मनमोहक कीर्तन था वह जिसका वर्णन करना संभव ही नहीं है। आनन्द का स्रोत बहने लगा। नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु टपक रहे थे। श्री रामप्रकाश जी भी प्रेम-विभोर हो अपने तन-बदन की सुधि खो बैठे थे। दो घण्टो तक कीर्तन हुआ होगा किन्तु लगा कि कुछ ही मिनिट बीते हैं कीर्तन अपूर्व व अनोखा था। जिसका वर्णन लेखनी और वाणी से परे है।

कीर्तन के पश्चात् कुछ देर तक दाता विराजे रहे। दाता के मुख-मण्डल पर दिव्य प्रकाश था। अनुराग की सहस्रो धाराएँ फूट पड़ रही थी। हम सब उन धाराओ में स्नान कर निहाल हो गये। फिर दाता विश्राम हेतु अन्दर मकान मे पधार गये और हम लोग वहीं दूसरे चबूतरे पर लेट गये।

प्रातःकाल दाता का बाहर पधारना हुआ। दाता के पधारते ही श्री राम प्रकाश जी महाराज अपने स्थान से उठे। उन्होंने दण्डवत भूमिष्ठ होकर दाता को साष्टांग प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़ कर सामने खडे हो गये। शरीर उनका रोमांच और नेत्रों मे प्रेमाश्रु। वे कुछ बोल नहीं सके। हम लोगो के आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना नही रहा। आश्चर्य इस बात का था कि एक दिन पूर्व तो दाता ने श्री रामप्रकाश जी के धोक दी थी और दूसरे दिन प्रातः ही रामप्रकाश जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और दाता ने उनका प्रणाम स्वीकार किया। आनन्द इस बात का हुआ कि अब रामप्रकाश जी महाराज दाता की निन्दा और विरोध नहीं करेंगे।

बाद में दाता से आज्ञा लेकर रायपुर लौट आये। मार्ग में हमने श्री रामप्रकाश जी महाराज को इस परिवर्तन के लिए पूछा किन्तु उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि बाद में किसी दिन बतावेंगे। यद्यपि उन्होंने कुछ नहीं बताया किन्तु हमने स्पष्ट लक्षित किया कि उनके व्यवहार और आचरण में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है। उसके बाद वे दिन में एक दो बार विद्यालय में आने लगे। कहाँ तो वे दाता के नाम के भजनों का विरोध करते और कहाँ अब आगे होकर उन्हीं भजनों को बोलने को कहते। अब वे दाता के गुण-गान से कभी नहीं अघाते थे। हमारा प्रेम दाता के चरणों में उत्तरोत्तर बढ़े इसकी कामना अब वे निरन्तर करने लगे। रात्रि को हारमोनियम, तबले आदि वाद्य यंत्र लेकर भजन हेतु बैठ जाते। रात्रि कब आयी और कब भोर हो गया, इसका कुछ भी भान नहीं रहता था। उस समय के आनन्द का वर्णन करना सम्भव नहीं।

हम दो प्राणियों पर उनका विशेष प्रेम था, मैं और शिवसिंह जी। हम दोनों ही साधारण से संसारी जीव हैं, फिर भी न मालूम क्यों उनकी हम दोनों पर विशेष कृपा और प्यार था। वे हमको कभी कभी कहा करते थे 'दाता प्रेम की मूर्ति हैं। प्रेम ही दाता के रूप में प्रकट हुआ है। दाता की तुम लोगों पर अवश्य कृपा होगी। चिपके रहो। उन्हें छोड़ कर कहीं न जाना। दुनिया में चल रही आँधी और तूफान में न आ जाना। आँधी में जिनकी जड़ें मजबूत नहीं होती वे उखड़ जाते हैं। तुम लोग जमे रहो।' दाता के चरणों में हमारा अनुराग बना रहा, इसमें दाता की कृपा तो है ही किन्तु इस प्रेम को बनाये रखने में श्री रामप्रकाश जी का भी पूरा योग रहा है।

एक दिन शिवसिंह जी को व मुझे रामद्वारे में ले गये। वहाँ ले जाकर एकान्त में उन्होंने वह बताया जो उन्होंने नान्दशा में देखा था। इस रहस्य को बताते हुए उनकी दशा विचित्र सी हो गई थी। आँखों में उनके प्रेमाश्रु थे। रोते रोते उन्होंने बताया, "तुम लोग दाता को जानते नहीं हो। मैं भी इतने दिन अन्धकार में ही था। यह तो दाता की ही कृपा है कि उन्होंने जगा दिया। दाता साक्षात् कृष्णस्वरूप हैं। उस दिन कीर्तन में मुझे इसी स्वरूप के दर्शन कराये थे। एक-दो मिनिट नहीं पूरा एक घण्टा। दाता नृत्य कर रहे थे कि एकदम वहाँ तेज प्रकाश फैल गया। प्रकाश इतना तेज था कि आँखें चौंधिया गईं। फिर मैं देखता क्या हूँ कि दाता तो हैं नहीं, उनके स्थान में कृष्ण खड़े हैं। हाथ में मुरली है, पीताम्बर पहने हैं व गले में वैजयन्ती माला है और मोर मुकुट धारण कर रखा है। वे नृत्य कर रहे हैं। वर्षों की मेरी तपस्या एक क्षण में पूरी हो गई। दाता विश्व के सम्राट हैं इस बात को तुम लोग भूल न जाना। यह किसी को बताने की बात नहीं। यह रहस्य रहस्य ही बना रहना चाहिये। विशेष स्नेह और बार बार की तुम्हारी जिज्ञासा की वजह से मैंने तुम्हें बताया है वरना यह बात बताने की नहीं है।'

उनके इस प्रकार के कथन से हमें अपूर्व आनन्द की अनुभूति हुई। हमें रोमांच हो आया ओर वरवस ही नेत्रो से अश्रुधारा वह चली। हमने उनके चरण स्पर्श कर लिये।

हमने देखा कि जव से उन पर दाता की कृपा हुई, तव से उनका जीवन ही परिवर्तित हो गया। अस्वस्थ रहने के कारण उन्होने अन्न तो छोड़ ही रखा था। शरीर रक्षा के लिए वे दूध या कद्दू का सेवन करते थे। उनके पास लाखो की सम्पत्ति थी। उनके अनेक सेवक और भक्त थे जो उनकी प्रत्येक आज्ञा को सिर आँखो पर उठाने को तत्पर रहते किन्तु हमने जो परिवर्तन देखा वह अपूर्व ओर अद्भुत था। दाता के वन्दो के अतिरिक्त किसी अन्य का आहार लेना वन्द कर दिया, रामस्नेहियो की रीति-नीति सव छोड़ दी, अव तक की वटोरी हुई सम्पत्ति की ओर आँख उठाकर भी नही देखा, लाखो रुपयों की औषधियाँ जिनके पास थीं उन्ही के पास रह गई, वे तो त्याग और तपस्या की मूर्ति हो गये। वे निरन्तर दाता की मस्ती मे रहने लगे। उनका जीवन उज्ज्वल और पवित्र हो गया।

लोग कहते है कि प्रभु निराकारी है, उनके दर्शन कभी होते नही हे, वह तो केवल ज्ञानियों के जानने की वस्तु हे। किन्तु श्री रामप्रकाश जी पर जो कृपा हुई उससे सिद्ध होता हे कि वह प्रभु जाना जा सकता है। जो व्यक्ति उसके दर्शन करना चाहे कर सकता है। अनुराग के वन्धन में वंधकर वन्दे के सामने प्रकट होना ही पड़ता हे। प्रेम में ऐसी ही शक्ति है। जव व्यक्ति अपने अहंकार को छोड़ कर अपना सर्वस्व उसे अर्पण कर देता है तव वन्दे के सामने केवल मात्र वही रह जाता हे। जैसे वन्दे के भाव होते है तदनुरुप उसे रुप वना कर आना ही पड़ता हे। 'जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन वैसी।' रामप्रकाश जी व्यवहार में माया-मोह मे लिप्त तो थे किन्तु हृदय उनका निर्मल था। वे सदा सेवा में रत रहते थे तथा पर-दुःख कातर थे। अहंकार और भ्रम के आवरण के कारण प्रभु से दूर थे। जव उन्होने अपना अहंकार दाता के चरणो में समाप्त कर दिया तो भ्रम का परदा अपने आप नष्ट हो गया। जो कार्य पूरे जीवन की तपस्या से नहीं हुआ वह कार्य दाता के क्षणमात्र के दर्शन से हो गया। धन्य हैं वे जिन्होने प्रभु के महर प्राप्त कर ली।

दाता के चरणो में आने के पश्चात् लगभग चार वर्ष तक वे और जीवित रहे। इन चारों वर्षो में उनका एक भी पल दाता के स्मरण विना नहीं निकला। दाता की उन पर इतनी कृपा थी कि जव वे चाहते तव उन्हें दाता के दर्शन हो जाते। सन् १९५४ में पुष्कर में उनका चातुर्मास हुआ। वहाँ अगस्त्य मुनि के आश्रम पर उन्हे न केवल दाता के दर्शन हुए वरन् दाता की कृपा से सभी चिरंजीवियो के दर्शन हो गये। इन दर्शनो की चर्चा श्री चाँदमल जी जोशी को वताते हुए कहा, "दाता की अपूर्व महर है। दाता की कृपा से मुझे पुष्कर में वैठे वैठे सभी महापुरुषो के दर्शन हो गये। मेरे जैसा भाग्यशाली और कौन हो सकता है।"

सन १९५५ में माण्डल पधारना हुआ। यह सेवक उस समय माण्डल में ही नियुक्त था। उस समय होली के अवसर पर दाता को फसाने के लिए एक नया षडयंत्र रचा गया। यह देखकर उनका हृदय आवेश से भर गया। वे छटपटाने लगे और माण्डल के सत्सगियों को बुरी तरह डाटने लगे। उन्होने कहा, 'अरे ! तुम लोगों के होते हुए दाता की ओर कोई आँख उठाकर देखे, तुम्हारे लिए डूब मरने की बात है।' जब तक वहा का पूरा विवरण प्राप्त नहीं हुआ तब तक उन्होंने पानी तक नहीं पिया। ऐसा अटूट प्रेम हो गया उनका दाता से।

रामप्रकाश जी महाराज का निर्वाण

सन १९५७ में उनका चातुर्मास विजय नगर में हुआ। उनके जीवन का वह अन्तिम चातुर्मास था। उनका विराजना खारी नदी के किनारे कोगटो के बगीचे में हुआ। श्री रामसिंह जी एव श्री चाँदमल जी उनकी सेवा में रहते थे। अन्तिम समय आया जान एक दिन उन्होने चाँदमल जी को बुला कर कहा, 'बेटा चाद ! एक बार दाता के दर्शन और करा दो। उनको कष्ट देना उचित तो नहीं है किन्तु यह मन मानता नहीं। उनके दर्शन हो जाने से इसकी तुष्टि हो जावेगी। मेरी ओर से जाकर अर्ज करो।" दाता की तो उन पर अनन्त कृपा थी। वे जब चाहते तभी उनको दाता के दर्शन हो जाते थे फिर उन्होने ऐसा क्यो कहा। इसमें भी कोई रहस्य रहा होगा। श्री रामसिंह जी और श्री चाद जी ने अन्तिम दिनो में बडी सेवा की थी। सभवत उन्हीं पर कृपा करना चाहते हो। जो भी हो दाता तुरन्त ही रामप्रकाश जी को दर्शन देने हेतु पधार गये। दर्शन कर उन्होने केवल इतना ही कहा "अब मुझे कुछ नही चाहिये मैं कृतार्थ हो गया।

कुछ ही दिनों बाद एक दिन शाम को उन्होंने रामसिंह जी और चादमल जी को कहा, "जल्दी ही भोजन कर वापिस आ जाओ। जब वे दोनों व्यक्ति वापिस आये तो उन्होंने महाराज को नीचे आसन लगा कर बैठे हुए देखा। उन्होने हाथ के सकेत से पास बुलाया और बडे प्यार से पुचकारते हुए कहा "तुम लोग खूब प्रसन्न रहना। घबराने की बात नहीं। मेरे शरीर छोडने का समय आ गया है। मैं दाताधाम जा रहा हूँ। तुम लोग घबराना नहीं। मेरी दो इच्छाएं हैं उन्हे पूरी करना। मेरा अन्तिम सस्कार चन्द्रशेखर के हाथ से हो और मेरी छाती पर पत्थर न रखा जाय। दाता के चरणों में प्रणाम अर्ज करना और सब सत्सगियो को जो मेरे भाई है, जय गुरु महाराज की राम राम कह दें।" यह कहने के बाद उन्होने समाधि ले ली और उनके देखते ही देखते दाता में लय हो गये। समय रात्रि बारह बजे का था। दोनों ही व्यक्तियो के नेत्रो से आँसू बह चले। उनके शिष्य जतनराम जी हुरडा से अपना चातुर्मास छोडकर पहले ही आ गये थे। विजय नगर से कई लोग आ गये। हम लोगो को सूचना मिलते ही दौड पडे। प्रात- का समय हो गया था। जिस रूप में शरीर छोडा उसी रूप में वे थे। हम लोग चरणो में लेट गये। आसपास के गावों के लोग भी उमड पडे। हजारो व्यक्तियो ने

उनके दर्शन कर श्रद्धाजलि अर्पित की। उनके शरीर को विमान मे सजा कर पूरे विजयनगर मे घुमा कर नदी किनारे ले जाया गया। नदी किनारे पहुँचते पहुँचते चार बज गये। पूरे दिन हल्की हल्की बूंदे पड़ती रही मानो प्रकृति दुःखी होकर उस महान विभूति के निधन पर प्रेमाश्रु वहा रही हो। ज्यो ही नदी पर पहुंचे तो जोर की वर्षा हो गई। सभी पानी से तर हो गये। ऐसा लगा मानो प्रकृति देवी ने स्नान करा सब को पवित्र कर दिया हो। नदी मे भी पानी वहने लगा। आधे घण्टे में दाहस्थान पानीरहित हुआ। चिता सजाई गई। चंदन की लकड़ी और नारियलो के मध्य उनका पार्थिव शरीर रखा गया और चिता मे आग लगा दी गई। देखते देखते ही उनका नश्वर शरीर पंचभूतो मे मिल गया। सभी ने महाराज का व दाता का जय-जयकार किया। दाता का एक अतीव प्यारा वन्दा दाता मे लीन हो गया। एक सुगन्धित पुष्प अपनी सुगन्धि से सभी को सुवासित कर समाप्त हुआ।

दाता वडे ही दयालु है। दया के सागर और प्रेम के भण्डार है। जो निःस्वार्थ भाव से उनसे प्रेम करता है वे उसी के हो जाते है। अपने वन्दे मे प्रेम के अतिरिक्त वे और कुछ भी नही देखते। जो उनका हो जाता है उसको वे अपना लेते है। श्रीमद्भगवत् गीता मे भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है:-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

रायपुर के अध्यापक एवं छात्र

एक वार एक व्यक्ति ने दाता से पूछा, "वावूजी! जव वडे लोग आपके पास आते है तव तो आप उनसे वहुत ही घुल-मिल कर खूब वातें करते है किन्तु सामान्य जन के आने पर कम ध्यान देते है? आपके व्यवहार मे यह पक्षपात और अन्तर क्यो है?" दाता का उत्तर था, "मेरे दाता न तो किसी पर कम और न किसी पर अधिक कृपा करते है। उनकी तो सभी जीवजून पर समान कृपादृष्टि रहती है। पक्षपात करने का दोप लगाना ठीक नही। वे तो गुण दोप और पक्षपात से परे है। जो कुछ पक्षपात अथवा अन्तर दिखाई देता है वह आपकी दृष्टि का भ्रम है। संस्कार और कर्म ही व्यवहार में फर्क लाते है।" इसी को अधिक स्पष्ट करते हुए दाता वोले, "कर्म करने मे मनुष्य स्वतंत्र है और फल भोगने में परतंत्र। सूर्य सर्वत्र समान रूप से चमकता है किन्तु कोई तो वृक्ष की छाँह मे ही वैठ कर उसके ताप से वच जाता है जवकि कोई धूप मे ही वैठा रह कर कष्ट पाता है। इसका दोष सूर्य को कैसे दिया जा सकता है! एक वात विचारणीय है कि यदि कोई व्यक्ति जिसका उसके समाज और अन्य वर्गों मे कोई प्रभाव नहीं है सुधरता है तो वह अकेला ही सुधरेगा। किन्तु किसी ऐसे व्यक्ति पर मेरे दाता की कृपा हो गई जिसके सम्पर्क में अनेक व्यक्ति नित्य आते है तो उसके सुधरने पर समाज के अनेक व्यक्तियो का सुधार स्वतः हो जाता है। उदाहरणार्थ

यदि एक प्रधानाध्यापक पर मेरे दाता की महर हो गई तो वह तो सुधरेगा ही, साथ ही वह अनेक अध्यापको और छात्रों को सुधार देगा। एक जज सुधर जावेगा तो हजारो वकील, मुवक्किल और उसके प्रभाव में आने वाले लोग भी सुधर जायेंगे। बड़े आदमी के सुधरने पर हजारों अनुयायी अधर्म को त्याग कर धर्म पर आरुढ हो जाते है। मेरा दाता तो ऐसा चतुर खिलाडी है ऐसा श्रेष्ठ सेनापति है जो ऐसी कुशल व्यूह रचना करता है कि विपक्षी को पैदल मात खाकर आत्मसमर्पण करने हेतु विवशतापूर्वक बाध्य होना पडता है। इसीलिये तुम्हें दाता का व्यवहार भिन्न लग रहा होगा। दाता की कृपा तो बन्दे के भावो के अनुसार ही होती है। भोजन में जितना गुड डालोगे उतना ही मीठा होगा।

भगवान के पास अनेक अध्यापक आते है। श्री दाता उन्हें फरमाते हैं 'मेरा राम तो मास्टर का दास है। अध्यापको की मेरे राम पर बड़ी कृपा है। बाबा का भाग बड़ा है। जहाँ देखो वहाँ मास्टर ही मास्टर मिलते हैं।" दाता अध्यापकों पर विशेष कृपा इसीलिए करते है कि यदि एक अध्यापक भी सुधर गया तो वह समाज के अनेक बालकों को सुधार देगा। वैसे कहा भी जाता है कि अध्यापक देश का निर्माता है। उसके सत्य आचरण का, उसके चरित्र का उसके शिष्यों के जीवन पर अच्छा प्रभाव पडता है। वे चरित्रवान दयालु और परोपकारी बनते हैं।

आज का मनुष्य भ्रमित और डावाडोल है। स्वार्थ के वशीभूत वह भला बुरा कुछ भी सोचने में असमथ है। उसकी मति निरन्तर पाप कम में लगी रहती है। ऐसी अवस्था में सत्कर्म एव प्रभु के चरणो में अनुराग का होना तो नितान्त असमव सा है। फिर चरित्र का निर्माण हो तो कैसे हो! इसके लिए तो सत्सग जरुरी है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने चेतावनी देते हुए राम चरित मानस में लिखा है—

बिनु सतसग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएं बिनु राम पद होइ न दृढ अनुराग॥

फिर आगे लिखते हैं—

'मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान विरागा।'

गोस्वामी जी ने सत्य फरमाया है। बिना अनुराग के प्रभु का मिलना कतई सभव नहीं। जहाँ ऋषिमुनि, योगी, तपस्वी, ज्ञानी और विरागी अपने योग, तप, ज्ञान और वैराग्य के बल पर भगवान को प्राप्त नहीं कर सके वहाँ गोप-गोपिया अपने प्रेम के बल पर भगवान के नित्य दर्शन कर सकीं। रामप्रकाश जी का जीवन अनुराग के बल पर ही आनन्दमय हो सका। नान्दशा के पास के गूजर ग्वाल-बालो ने भी अपने प्रेम के बल पर दाता को मनमाना नचाया। रायपुर क्षेत्र के

कुछ अध्यापक एवं छात्र भी इस माने मे पीछे नही रहे। एक समय ऐसा आया जब वे भी दाता के विशेष प्रेमी बन गये तब दाता ने उन्हे अनुराग मे नहला दिया।

रायपुर विद्यालय के क्रमोन्नति के मामले को लेकर कुछ अध्यापक दाता के सम्पर्क मे आये। दाता-सत्संग के प्रभाव से उनकी श्रद्धा दाता के चरणो मे हो गई। कक्षा ९ वीं मे प्रवेश लेने वाले ४५ छात्रो पर भी अपने अध्यापको का प्रभाव पड़ा और वे भी दाता के प्रति आकर्षित हुए। प्रतिदिन भजन-कीर्तन होने लगा। नान्दशा मे दाता के यहां प्रति दिन रात्रि को सत्संग होता था, उसमे भी ये लोग सम्मिलित होने लगे। सत्संग और हरिकथा कभी व्यर्थ नही जाते। धीरे धीरे सत्संग में जाने वाले अध्यापक एवं छात्रो के मन निर्मल और आचरण शुद्ध होने लगा। कीर्तन मे वे भाग लेते। कीर्तन बोलते बोलते भावविभोर हो जाते। बड़ा ही आनन्दमय वातावरण था।

दाता के चरणो मे विशेष स्नेह रखने वाले अध्यापको मे छगनलाल, रामचन्द्र जोशी, कंवरलाल पन्डा, मोहनलाल, कैलाशचन्द्र आदि है। छात्रो मे फतहसिंह ख्यातीलाल कोठारी, भंवरलाल हिरण, रामपाल सोमाणी, विनोद सोमाणी, बसन्ती लाल कोठारी, सोहनलाल, रामेश्वरलाल आदि है। चतुर्थश्रेणी के कर्मचारियो मे शंकरलाल उपाध्याय, बद्रीलाल पारीक, बालूलाल आदि है। उन दिनो एक उत्तम सत्संग मंडल का निर्माण हो गया था। प्रति रविवार या अवकाश के दिन तो सब के सब नान्दशा अवश्य जाते थे। दाता स्वयं बच्चो के साथ बच्चे ही बन जाते थे। जिस प्रकार भगवान कृष्ण गोपो के साथ रह कर क्रीडा किया करते थे उसी प्रकार दाता भी इन बालको के साथ उसी प्रकार की क्रीडाएं करते थे। वर्ष के छः माह के लिए नान्दशा का तालाब पानी से भरा रहता था। जब तक तालाब मे पर्याप्त पानी रहता तब तक वे तालाब मे ही स्नान करते थे। स्नान के समय जब दाता मूड मे होते तो जल-क्रीडा करने लग जाते। बालको के साथ मिलकर जल में अनेक क्रीडाएं करते। कभी आंख मिचौनी खेलते तो कभी एक दूसरे को पकड़ने की। बड़ा अद्भुत और अद्वितीय खेल चलता। घण्टो इस प्रकार के खेल चला करते। जो बालक तैरना नहीं जानते थे, वे किनारे खडे खडे तन्मयता से दाता को व अन्यो को देखा करते। कभी कभी जल मे ही कीर्तन प्रारंभ हो जाता जो देर तक चलता। कभी दाता पानी मे ही लेट कर समाधिस्थ हो जाते और तैरने वाले दाता के शरीर के किसी भाग को छू कर ध्यानस्थ हो जाते। इस प्रकार की क्रीडाएँ आये दिन हुआ ही करती। दाता के साथ रहने में बड़ा ही आनन्द आता था। इस आनन्द की प्राप्ति के लिए वे खाना-पीना तक छोड़ देते थे। सन १९५३ से दाता ने हरनिवास मे आवास कर लिया। हर-निवास मे सत्संग भवन की व्यवस्था थी। वहां जम कर सत्संग और कीर्तन होता। अखण्ड कीर्तन भी किया जाने लगा। माह मे चार-पांच अखण्ड कीर्तन हो ही जाते। धीरे धीरे तीन तीन या पांच पांच दिन का कीर्तन भी होने लगा। सभी बालक

व अध्यापक इन कीतनो में अवश्य सम्मिलित होते । बालको और अध्यापकों के आनन्द में इतनी वृद्धि हुई कि वे प्रति दिन रायपुर से नान्दशा आने लगे। कीतन में इतने मस्त होते कि रायपुर आते जाते भी मार्ग में उनके कानों में कीतन की गुंजार होती रहती । उनका जीवन ही कीर्तनमय हो गया ।

दाता बालको से हसी-मजाक भी किया करते थे। छोटे-मोटे चुटकुलो से उनका मनोविनोद भी कर दिया करते थे। नटवर नागर जो ठहरे। बच्चों को आकर्षित करने हेतु कभी कभी चमत्कार भी जता दिया करते। नित्य नई बातें देखने को मिलती व नई नई घटनाएं घटित होती। अध्यापक कैलाश जी भींडर के निवासी थे। वे नये नये ही आये थे। रायपुर में आकर बालको व विद्यालय का जो सुन्दर वातावरण देखा तो वे हतप्रभ हो गये। उन्हें दाता के प्रति आकर्षण हुआ। बिना किसी को कुछ बताये ही वे नान्दशा के लिए निकल पडे। मार्ग जानते नहीं थे। रात्रिभर भटकते रहे किन्तु नान्दशा नहीं जा सके। दूसरे दिन और प्रयास किया। लगन पक्की और चाह सच्ची थी। कुछ दूर गये होंगे कि उन्हें प्रकाश की एक 'लौ' दिखाई दी। वे लौ के पीछे पीछे चले। वह लौ उन्हें हरनिवास ले गई। वापिस लौटते समय भी उसी लौ ने उन्हें रायपुर पहुंचा दिया। कितने आनन्दित हुए वे इस चमत्कार को देखकर !

रविवार के दिन हम सब लोग बहुधा वहीं भोजन करते। दाल-बाटी का भोजन होता। दाता के पास बैठ कर ही भोजन करते। दाता कौर कौर में भिन्न भिन्न स्वादों का रसों का अनुभव कराते तथा साथ ही बताते भी जाते कि ये थोथी बाते है। इनसे चक्कर से सदैव दूर रहने को कहते। श्रम करने में भी सदा बालकों का उत्साह बढाया करते थे। एक बार सात बीघा मक्का को आठ बालको ने एक रात्रि व आधे दिन में काट कर एकत्रित कर दिया। गायों में भी ये लोग कभी कभी दाता के साथ जाते। वहां दाता की बासुरी बजाते देखते। बासुरी के स्वर को सुन गायें एकत्रित होकर दाता के चारों ओर घूमर देती। कुछ गायें तो दाता के संकेत पर नाचती थीं। गायें क्या थीं कामधेनु का अवतार ही थीं। वे दुखी और आर्त प्राणियों की मनोकामना की पूर्ति करने वाली थीं।

उन दिनो के आनन्द का वर्णन करना तो बडा ही कठिन है। हम सब लोगो पर विशेष कर श्री गिरधर हाईस्कूल के बालको पर तो अपार कृपा थी।

दाता की कृपा से सब लोग अपने कर्तव्य-पालन में भी कोई कसर नहीं रखते थे। अपना काम कर लेने पर उन्हें दाता के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। न खाना पीना अच्छा लगता न खेलना-कूदना। बालकों का दृष्टिकोण बहुत ऊंचा था। उन्हें लोगो को पुकारें करते देख उनकी बुद्धि पर तरस आता था। कितने भोले है ये लोग जो दाता से तुच्छ वस्तुओं की माग कर रहे हैं। भगवान को ही क्यो नहीं माग लेते जिससे सब टटा ही मिट जाये।

इन छात्रों के माध्यम से दाता अजीव अजीव लीलाएं किया करते थे। वहन सज्जन कॅवर के विवाह मे कोठारी साहव भूरालाल जी ने विन्दोरे के लिए आग्रह किया। उनके अधिक आग्रह पर दाता ने इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि भोजन हरनिवास मे ही वनाया जाय। उन्होने लगभग सो व्यक्तियों का भोजन तैयार करवाया। कोठारी साहव के घरभर का भोजन भी वही था। कोठारी साहव के विशेप आग्रह पर कुछ रायपुर वाले छात्रों को भी वुला लिया गया। केवल दस वालक आ पाये। भोजन वनने पर उन्होंने दाता को हरीहर के लिए कहा। दाता ने कहा, "पहले वालको को हरीहर करा दो।" इस पर आठ बच्चे भोजन करने हेतु वैठे। दो छात्र फतहसिंह जी और भंवरलाल जी हिरण परोसने में रहे। कुदरत दाता की। वे आठो ही वालक सो व्यक्तियो के बने भोजन को खा गये। कोठारी साहव देखते ही रह गये। जव दाता ने उन्हें वुलाकर भोजन करने के लिए कहा तो वे चुप हो गये। दुवारा भोजन वनवाना कठिन था। अतः अपना सा मुंह लेकर घर जाना पड़ा। इस तरह के तमाशे आये दिन होते थे।

इन छात्रों और अध्यापको की वजह से यदा-कदा दाता का पधारना रायपुर भी हो जाता। खूव सत्संग होता। एकवार हाईस्कूल के कमरे में सत्संग चल रहा था। क्वार्टर 'जिसमें मैं रहता था' खुला पडा था। मोका देखकर कोई वहां से घी का पीपा ले उड़ा किन्तु वह विद्यालय की सीमा के वाहर नही जा सका। वह सीमा के वाहर तव ही जा सका जव उसने उस घी के पीपे को छोड़ा। इस तरह दाता हमे पुचकारते, आनन्द देते ओर हर संकटों से हमारी रक्षा करते।

एकवार वोराने के मोहनलाल जी मास्टर साहव के वच्चा हुआ जिसके उपलक्ष मे उन्होने दाता की पदरावणी की। रायपुर मण्डली को भी दाता के साथ ही वुलाया गया। भोजन की सुन्दर व्यवस्था की। दाता मण्डली के साथ एक दिन पूर्व करेड़ा पधारे थे। अगले दिन ग्यारह वजे वोराना का कार्यक्रम था। करेड़ा वालो ने प्रातः ही पकोड़ी का नाश्ता तैयार किया। दाता को तो भक्त के भावो की परीक्षा करनी थी। जानवूझ कर करेड़ा मे ही देरी कर दी। ग्यारह वजे पकोड़ी का कार्यक्रम चला तो लगभग एक वजे तक चलता रहा। प्रत्येक व्यक्ति ने भरपेट से भी अधिक पकोड़ी खाई। मोहनलाल जी वार वार वोराना चलने का आग्रह करते किन्तु दाता ने ध्यान ही नहीं दिया। अन्त में उन्होने कहा, "भगवन! यदि आपको इतना नाश्ता यहीं करना था तो मेरा नुकसान क्यो करवाया। मेरा काफी विगाड़ा होगा।" दाता कुछ वोले नहीं, केवल मुस्करा दिये।

वहाँ से चल कर दो वजे वोराना पहुंचे। तीन वजे भोजन करने वेठे। सभी पंक्ति में वैठ गये। दाता ने मुझ को, चान्दजी को और माधवलाल जी को एक पतल देकर स्वयं के सामने विठा दिया। वालभोग लगने के वाद सवने भोजन प्रारंभ किया। हम तीनों ही व्यक्ति साधारणसा भोजन करने वाले थे। उस दिन भूख थी नहीं। भोजन करने की उस समय इच्छा भी नहीं थी किन्तु आदेश था

अतः बैठना ही पड़ा। ज्यों ही भोजन करना प्रारंभ किया कि पता नहीं हम तीनों को क्या हो गया ? भूख इतनी तीव्र हो गई कि तगारी भर भर मिठाई पतल में उडेली जाने लगी पर मिठाई पतल में आते ही साफ हो जाती। परोसने वाले भी आश्चर्य से देखने लग गये। वे परोसते परोसते थक गये और इधर हमारी भूख जागृत होती जा रही थी। हमारी यह स्थिति देखकर मोहनलाल जी चिन्तित हो गये। उन्होंने खड़े हो हाथ जोड़ कर दाता से प्रार्थना की "भगवन ! गलती की माफी चाहता हूं। आपनी माया को रोकिये। न्यौते हुए मेहमानों के भूखे रहने की नौबत आ गई है।' दाता ने हँसते हुए कहा आप तो कह रहे थे कि हमारा भोजन् योंही पड़ा रहेगा। अब हम जब जीमने बैठे तो उठाने लग गये हो ? न्यौता देकर भूखे रखते हो ? खैर तुम्हारी मर्जी। हमें क्या ? नान्दशा जाकर खायेंगे।'

दाता ने हमें उठने का संकेत किया। संकेत पाते ही उठ गये किन्तु हमारी भूख बुझी नहीं थी। हमने रायपुर जाकर नाश्ता किया व फिर शाम को नान्दशा जाकर भोजन किया। यह सब कैसे हुआ ? दाता ही जानें। ऐसी थी कृपा दाता की रायपुर वाले बच्चों पर।

एक दिन शाम को नान्दशा में हम सबने दाल-बाटी का डटकर भोजन किया। इतना भोजन किया कि बैठा भी नहीं जा सका। विद्यार्थीलोग तो सो गये। हम लोग भी बैठे नहीं रह सके इसलिए लेट गये। निद्रा आयी नहीं थी। ऐसे ही लेटे लेटे बातें कर रहे थे। एकाएक मुझे भूख महसूस हुई। सोते सोते ही मैंने सम्राट से कहा, राजा साहब भूख लगी है।" उन्होंने जवाब दिया "मुझे भी ऐसा ही महसूस हो रहा है। हमें पता नहीं था कि पास खड़े खड़े दाता हमारी बात सुन रहे है। उन्होंने पूछा, 'राजा ! भूख लगी है क्या ?" हम लोग क्या करते। स्वीकार करना ही पड़ा। दाता अन्दर गये। उन्होंने मातेश्वरी जी को पूछा, 'कुछ है क्या रे ?' मातेश्वरी जी ने उत्तर दिया, "बाटिया तो बची नहीं। हुकम हो तो अभी रोटी बना देती हूँ। दाता उन्हें शीघ्र ही तैयार करने को कह कर बाहर पधार गये। मुझे राजा साहब को और शिवसिंह जी को दाता अन्दर ले गये। बाद में गोवर्धनसिंह जी को भी बुलवा लिया। पांचवें दाता स्वयं ही गये। मातेश्वरी जी ने करीब एक सेर आटा लिया और रोटियाँ बनाने बैठी। हमे दुःख तो बहुत हुआ कि व्यर्थ ही मातेश्वरी जी को कष्ट दिया किन्तु दाता के सामने बोलने का साहस नहीं था। दाता सहित हम सब खाने को बैठे। उस समय दस बजे थे। मातेश्वरी जी रोटियाँ बनाती रही और हम खाते रहे। रात्रि के चार बज गये जब जाकर होश आया। तब तक हम लोग खाते रहे व मातेश्वरी जी भोजन बनाती रहीं। विचित्र बात यह हुई कि न तो हमारी भूख ही मिटी और न वह आटा ही समाप्त हुआ और न भोजन बनानेवाली मातेश्वरी ही थकीं। कैसी विचित्र लीला थी प्रभु की। आज का वैज्ञानिक शायद इन बातों को मानने के लिए

तैयार न हो किन्तु महापुरुषो के लिये इस तरह की लीलाओ मे कोई विचित्रता नही है। भाव जगत की बाते ही निराली है। जब द्रौपदी का चीर बढ़ सकता है तो फिर ये बाते क्यो नही हो सकती है।

उन लड़को मे अधिकतर वैश्य समाज के थे जिनके माता-पिता उन दिनो के वातावरण के प्रभाव से भयभीत होकर अपने लड़को को दाता के यहाँ जाने देना उचित नही मानते थे अतः उन्होने उन्हे वहाँ जाने से मना किया किन्तु जिन्होने वास्तविकता का अनुभव कर सच्चे आनन्द की अनुभूति कर ली है, वे कहाँ भ्रमित हो सकते है ? उनपर अपने पिताओ के कथन का, डराने-धमकाने का कोई असर नही हुआ। उन्होने अपने पिताओ को समझाते हुए कहा, "आप लोग स्वयं जाकर देख ले कि हम किस मार्ग पर चल रहे हैं। दूसरो के कहने के अनुसार चलना अच्छा नही। जांच करने के बाद यदि आप यह पावे कि हम गलत मार्ग पर है तो हम लोग वहाँ जाना बन्द कर देंगे।" इस पर कुछ लोग जांच करने भी पहुँचे किन्तु उनकी अवस्था मे भी परिवर्तन आ गया। सच है एक लकड़ी अग्नि की क्या जांच करेगी। यदि वह लकड़ी अग्नि के सम्पर्क मे आयेगी तो क्या वह स्वयं अग्नि न हो जावेगी !

मेरे लिए भी ऐसा ही हुआ। मेरे पिता नैष्ठिक ब्राह्मण थे। त्रिकाल संध्या करने वाले तथा वेदो के उपासक थे। प्रारंभ मे वे शिव के उपासक थे। बिना रुद्राभिषेक किये अन्न-जल भी ग्रहण नही करते थे। हवन, यज्ञ आदि मे उनका विश्वास था। बाद में शिव-पूजा के साथ ही साथ चारभुजा के उपासक भी हो गये। साधु-संतो के परम सेवी किन्तु रुढ़िवादी ब्राह्मण थे और जाति-पांति और छुआछूत मे पूरा विश्वास रखते थे। जब उन्हे मालूम हुआ कि उनका पुत्र एक राजपूत के यहाँ जाता है, साष्टांग प्रणाम करता है और वहाँ की रोटी खाता है तो उन्हे बड़ा अटपटा लगा। वे बस द्वारा नान्दशा पहुँच गये। ज्यो ही मैने उन्हे देखा, मन मे भय का संचार हो आया और मन ही मन दाता से प्रार्थना करने लगा। वे सीधे दाता के पास पहुँचे। साधारण नमस्कार के बाद एक ओर बरामदे में बैठ गये। कुछ देर बाद दाता उनके सामने जाकर चुपचाप बैठ गये। मेरे पिता भी लगभग आधा घण्टे उन्हे देखते रहे। बिलकुल शान्त। किसी प्रकार की कोई आवाज नही। कुछ समय बाद वे अचानक उठे और दण्डवत लेटकर उन्होने दाता को साष्टांग प्रणाम् किया। उनको दाता मे अपने इष्टदेव के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। वे गदगद हो गये। अश्रुबिन्दुओ से युक्त आर्तवाणी मे कहा, "हे देवाधिदेव पारब्रह्म परमेश्वर ! मुझ क्षुद्रबुद्धि को क्षमा करो। मेरी मति भ्रमित थी किन्तु तुम तो कृपालु हो। नाथ ! मैं आपकी शरण मे हूँ। त्राहिमाम् त्राहिमाम्।" मैं देखता ही रह गया कि यह क्या हो गया। मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नही। मैं प्रसन्नता से नाच उठा और दाता की जय-जयकार कर उठा। फिर तो दाता ने उन पर महर ही कर दी। आनन्दरूपी भण्डार के ताले ही खोल दिये। यहाँ

तक कि दाता अपनी गायों को एक वर्ष के लिये उनके पास रख देते हैं मेहर कर स्वयं अपनी मण्डली के साथ ढोकलिया ग्राम में जाते हैं। ग्राम में श्री गोविन्दप्रसाद जी और सोहनलाल जी को बालक होने का आशीर्वाद देते है और अपने भक्तों की रक्षा करते है। मेरी मा की बीमारी को दूर कर उसे बिल्कुल स्वस्थ करते है गववालों और कोटडी गाँववालो को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं, वहन की शादी में पधारते है वहीं दो दिन विराज कर सभी को आनन्दित करते हैं हजारों प्रकार से महर कर उन्हें कृतार्थ करते है यही नहीं उनको ऐसी मृत्यु देते हैं जिसके लिए बडे बडे महापुरुष तरसते हैं। अन्त समय स्वयं उनके समक्ष उनके इष्ट देवता के रूप में उपस्थित होकर उन्हें कृतार्थ करते है। ऐसे है दाता-दयाल। जिस पर महर हो जाती है उसे निहाल कर देते हैं।

रायपुर के युवा वर्ग पर दाता की अनन्त कृपा रही। एक मास्टर के रूप में दाता ने उनको अनुराग-तड़ाग के जल से स्नान करा करा कर निर्माण किया। दाता की अनन्त महर से यह वर्ग बहुत कुछ बन पाया। आज वे बालचरित्र के धनी, ईमानदार श्रमशील, परसेवी, कर्मनिष्ठ और ईश्वरप्रेमी हैं। इनमें से कई आज उच्च पद पर हैं किन्तु उनका जीवन सीधा सादा और सरस है। क्यों न हो दाता ने उनका निर्माण स्वयं अपने हाथों से जो किया।

दाता प्रेम के भूखे हैं। जो उनसे सच्चे हृदय से प्रेम करता है उसे वे अपना बना लेते है। दाता को कुछ नहीं चाहिये। न वह रुपयों-पैसों का भूखा है न किसी वस्तु का। सोचो! वह विश्व का मालिक है। उसको किस बात की कमी है। आप सोचते होंगे कि दाता कुछ देने लेने से प्रसन्न हो जावेगा तो यह आपका भ्रम मात्र है। उसको तो चाहिए प्रेम, और वह भी नि स्वार्थ। बन्दा जिस भाव से पूजा करता है उसी भाव से पूर्ति होती है। आप उसके बन जाओ तो वह फिर आपका है। दाता ने कृपा करके ही यह मानव शरीर दिया है। इस शरीर से हम उसे प्राप्त कर सकें तब ही इसकी सार्थकता है। जो व्यक्ति इसे प्राप्त करने के बाद अपनी इन्द्रियों को अपने वश में नहीं रखता तथा दाता के चरणों की शरण नहीं लेता उसका जीवन व्यर्थ है। भोगेच्छा ही इसका उद्देश्य नहीं है। श्री गोस्वामी जी ने कहा है –

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जीव अविनाशी॥
कबहुक करि करुणा नरदेही। देत ईश बिनु हेतु सनेही॥
नर तन भव वारिधि कहु बेरो। समुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
जो नर तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ॥

श्रीमद्भागवत में व्यास देव ने कहा है :-

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः।
यो नाद्रियेत् त्वत्पादौ स शोच्योह्यात्मवंचकः॥

'दाता' का आनन्द मनुष्य ही ले सकता है। वही उसका जप-कीर्तन आदि कर सकता है। वही उसके स्वरूप को पहचान कर उसे प्राप्त कर सकता है। हम जानते हैं कि हमारा शरीर अनित्य है किन्तु इस शरीर से हम उस नित्य परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। अतः बिना एक क्षण नष्ट किये हमें उसको पाने का प्रयत्न करना चाहिये।

दाता ने रायपुर के युवा-वर्ग को ही नहीं अपनाया, उसने अनेकों को अपनाया है। जिसको अपना लिया उसके दुःख-सुख का वह जिम्मेदार हो गया। मेरे जैसा पापात्मा इस दुनिया में शायद ही कोई हो किन्तु मेरे पापों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसने मुझे अपना कर मेरे जीवन को ही सार्थक कर दिया। एक छोटी सी घटना के विवरण मे आपके सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ जिससे स्पष्ट होगा कि किस तरह दाता अपने भक्तों के योगक्षेम को वहन करते हैं। घटना इस प्रकार है—

मेरी बहन का विवाह था। दाता को पधारने हेतु निवेदन किया तो वे चिढ़ गये। मैंने सोचा यदि भगवान की इच्छा नहीं है तो उन्हें तंग करने से कोई लाभ नहीं किन्तु मन की कमजोरी। अन्दर ही अन्दर इच्छा बनी रही कि दाता पधारते तो अच्छा होता। वह तो घट घट की जानने वाला है। मेरी आन्तरिक इच्छा जानकर कह दिया कि अमुक दिन जीप भेज देना। मैं प्रसन्न हो गया। जीप की व्यवस्था कर दी गई किन्तु रामप्रकाश जी महाराज ने उस जीप को मार्ग में ही रोक दी जिसका पता हमें नहीं चल सका। जीप के नहीं पहुंचने पर अन्य साधन की व्यवस्था करने का प्रयास किया किन्तु कुछ भी नहीं हो पाया। हताश होकर हाथ पर हाथ धर कर बैठ गये। सोचा, दाता को नहीं पधरा सके अतः विवाह में जाना ही व्यर्थ है। नादानीवश हठ कर बैठा और विवाह मे सम्मिलित नहीं हुआ, मांडल के अपने क्वार्टर में जा सोया। उधर दाता शिवसिंह जी के साथ विवाह में आने को तैयार बैठे थे। जीप का इन्तजार कर रहे थे। शाम के समय हर-निवास के बाहर से एक जीप निकली। दाता ने शिवसिंह जी को जीप के मालिक से यह पूछने भेजा कि यदि उस जीप में जगह हो तो दाता को भी ले चले। जीप के मालिक ने मना कर दिया और जीप भीलवाड़े के लिये रवाना हो गई। कुदरत की बात है कि वह जीप जाना तो भीलवाड़ा चाहती थी किन्तु बार बार लौट कर नान्दशा ही आ जाती थी। अन्त में हैरान होने पर एक व्यक्ति बोला, "यह कहीं उस बाबा की करामत तो नहीं है। न हो तो उसे साथ ले लो।" मालिक को अपनी भूल का अहसास हुआ और उसने दाता से क्षमा चाही तथा भीलवाड़ा चलने के लिए जीप में पधारने का निवेदन किया।

जीप में विराज कर दाता माहल पधारे। माहल में जीप रोक कर मुझे बुलाये। शिवसिंह जी ने एतराज किया, "भगवन! भाईसाहब यहां कैसे हो सकते हैं, कल तो उनकी बहन की शादी थी।" दाता ने कहा, "तुम जाकर देखो तो सही। केवल दो चार मिनिट की ही तो बात है।" शिवसिंह जी भागते हुए घर आये और मुझे देख हैरान हो गये। इस तरह दाता स्वयं मुझे लेकर विवाह में पधारे। है कोई इस विश्व में ऐसा, जो अपने सेवको के लिये इतना कष्ट उठाये? इतना ही नहीं वह अपने सेवक के प्रत्येक कार्य को देखता है और यदि कोई कमी है तो तत्काल दूर करता है। निरंतर वे अपने सेवकों को 'दाता' का स्मरण करने को कहते रहते हैं। उनका फरमाना है कि इस युग में एक मात्र दाता के नाम का ही आधार है। नाम लेने मात्र से वह इस भवसागर से पार हो जाता है। 'राम जप राम जप बावरे, घोर भवनीरनिधि नाव हरि राम रे।' गोस्वामी जी के इस कथन से इसकी पुष्टि होती है। दाता फरमाते हैं "कुछ करते रहो। कभी खाली मत बैठो। निरन्तर दाता का चिन्तन करो, तुम्हें मार्ग मिलेगा।" बन्दा कोई गलती करता है तो दाता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से तत्काल सुधार देता है। मेरी आदत परनिन्दा करने की हो गई। इस आदत में आनन्द आने लगा। जब रामप्रकाश जी महाराज का चातुर्मास रायपुर में था उन दिनों एक परम सत श्री आनन्दस्वरुप जी महाराज भी वहीं विराज रहे थे। वे बडे सात्विक और भक्तहृदय सत थे। एक दिन रामप्रकाश जी आनन्दस्वरूप जी से मिलने पधारे। मैं भी साथ हो गया। रामप्रकाश जी वृद्ध थे जबकि आनन्दस्वरूप जी युवा। रामप्रकाश जी ने उनके चरण स्पर्श किये। आनन्दस्वरूप जी चुपचाप खडे रहे। उन्होंने न तो किसी प्रकार का अभिवादन किया न अभिवादन का कोई उत्तर ही दिया। यद्यपि आनन्दस्वरूप जी ने अपने मधुर और भावमय सगीत से सभी को आनन्दित किया किन्तु मेरे मस्तिष्क में तो यही एक बात उभरती रही कि उनका व्यवहार रामप्रकाश जी महाराज के प्रति अच्छा नहीं था। मैंने इस बात को लेकर श्री आनन्दस्वरूप जी महाराज की कडी निन्दा करनी प्रारभ कर दी। कोई प्रतिवाद करने वाला था नहीं अत मन का विकार बढता ही गया। दाता उन दिनों गगा सगम पधारे हुए थे। ज्यों ही वे वापिस पधारे कि मैं दर्शन हेतु मान्दशा गया। जाते ही दाता ने पहला प्रश्न किया—

दाता— आजकल रायपुर के क्या हालचाल हैं?

बन्दा— सब ठीक है।

दाता— कोई विशेष बात?

बन्दा— कुछ नहीं है। हां! आनन्दस्वरूप जी महाराज विराज रहे हैं।

दाता— वे कैसे पधारे है?

बन्दा— भगवन! वे मीरा ग्रन्थ का सकलन करा रहे हैं।

दाता— अच्छा! तुम भी कभी जाते हो?

वन्दा– पहले तो जाता था किन्तु अब नही जाता हू ।

दाता– क्यो ?

इस पर मैने पूरा विवरण कह सुनाया और मन के क्षोभ के कारण निर्णय भी प्रस्तुत कर दिया। कि यह व्यवहार उनका उत्तम नही था। इस पर दाता उदास हो गये। मैं यह सोच कर प्रसन्न हुआ कि दाता ने भी मेरी बात का अनुमोदन कर दिया है किन्तु कुछ ही देर मे दाता ने आक्रोश के साथ कहा, "आनन्द स्वरूप ने रामप्रकाश को ठोकर मार दी होती तो अच्छा था।" ये शब्द कह वहाँ से उठ कर अन्दर मकान मे चले गये। मेरे काटो तो खून नही। मैं भौचक्का सा रह गया। मेरे हृदय मे पश्चाताप की आंधी चल पड़ी। कुछ ही देर में आँखो मे आंसू आ गये और फिर फूट फूट कर रोने लगा। मेरी रोने की आवाज सुन कर दाता वापिस पधारे और पास मे आकर बिराज गये। फिर बोले, "तुम समझे नही, जो कुछ मेरे राम ने कहा।" मैंने सिर हिला दिया। इस पर दाता ने पूछा, "यह बताओ कि रामप्रकाश जी ने किसको नमस्कार किया?" दिमाग में एकदम बात बैठ गई। मै बोला, "परब्रह्म परमात्मा को, क्यो कि प्रणाम तो उसी एक को ही किया जाता है।" दाता ने फरमाया, "तुम ठीक कहते हो। यदि आनन्द स्वरूप अर्थात् मेरे दाता इस रामप्रकाश (जड़ जीव) को ठोकर लगा देता तो कल्याण हो जाता या नही।" दाता के गूढ़ शब्दो का अर्थ तत्काल समझ मे आ गया। दाता ने पुचकारते हुए कहा, "कभी किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। फिर सन्त की तो कभी निन्दा करनी ही नही चाहिये। उनका बाना (पोशाक) बड़ा है। अरे ! नकल है तो भी असल की है। भविष्य में ध्यान रखना।" दाता ने कितने बडे अपराध को किस सरलता से माफ कर दिया और साथ ही जो अवगुण परनिन्दा का घर मे प्रवेश कर गया था उसको किस सुन्दर तरीके से दूर कर दिया। यही तो है उनकी विशेषता। वह अपने बन्दो को खरा सोना बना देता है। कहा भी है:–

सद्गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, घड़ घड़ काढे खोट।
अन्दर हाथ सहारि दे, बाहर बाटे चोट ॥

ऐसे दीनबन्धु दाता जो परब्रह्म परमात्मा है उसे बारम्बार प्रणाम।

० ० ०

महाकुम्भ पर्व : प्रयागयात्रा

भारत एक धर्म-प्रधान देश है जहां तीर्थयात्रा का पावन महत्व है। समस्त तीर्थों का राजा होने के कारण प्रयाग को तीर्थराज कहा जाता है। इस तपोभूमि में पुण्यसलिला माँ गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम होता है। गंगा और यमुना तो आज भी बहती है किन्तु सरस्वती अदृश्य है। वैदिककाल में यह नदी यहाँ आकर मिलती थी ऐसा शास्त्रों में लिखा है। भौगोलिक परिवर्तनों के कारण इस काल में यह सूख गई है किन्तु फिर भी प्रयागराज को त्रिवेणी संगम ही कहा जाता है। इस स्थल पर सहस्त्रों वर्षों पूर्व से प्रति तीसरे वर्ष कुम्भ, प्रति छठे वर्ष अर्द्ध कुम्भ और प्रति बारह वर्ष में महाकुम्भ पर्व आयोजित होते आ रहे हैं। देश विदेश के साधु-सन्त, भक्त और धर्मप्राण जनता लाखों- करोड़ो की संख्या में सम्मिलित होकर पवित्र संगम-स्थल पर स्नान करके पुण्यलाभ अर्जित करते है। कुम्भ-पर्व-आयोजना भारतीय ज्योतिष पद्धति के अनुसार सूर्य के सिंह राशि में संक्रमण के अनुसार होती है। ऐसा ही कुम्भ-पर्व माघ मास, जनवरी सन १९५४ में था। ब्रह्मचारी श्री प्रभुदत्त जी के निमंत्रण को स्मरण करते हुए दाता ने उसमें सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की।

फलस्वरूप दाता अन्नपूर्णा मातेश्वरी जी एवं कुछ सत्संगी सेवकों को साथ लेकर नाथानी जी की कार द्वारा दिनांक ११-१-५४ को दिल्ली पहुँचे। वहाँ से श्री समुद्रसिंह जी को साथ लेकर अगले दिन प्रयाग पहुँचे।

दाता की आज्ञानुसार भीलवाड़ा और अजमेर के लगभग तीस लोग भी रेल द्वारा प्रयागराज पहुँचे। रामस्नेही सत श्री रामप्रकाश जी भी उनके साथ थे। अत्यधिक भीड़ होने के बावजूद भी उन्हें रेल द्वारा पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं हुई। आज साधारण सी यात्रा में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तब आश्चर्य होता है कि उस महाकुम्भ की अपार भीड़ में उनकी यह यात्रा कितनी शान्ति, आनन्द और मस्ती से सुखद और निरापद सम्पन्न हुई यह कल्पनातीत है। यह सब दाता की कृपा और लीला का प्रताप ही था।

प्रयाग में नीमराणा के राजासाहब, जयपुर से ब्रजविहारी जी और अजमेर से कैलाश नारायण जी व अन्य कुछ भक्तजन आ मिले। एक खासा दल हो गया जिसको कुम्भ में परम भागवत सत श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी जी महाराज के आश्रम में पहुँचने का संकेत दिया गया था। जो लोग दाता के पूर्व ही आश्रम में पहुँच गये थे, उन्हें पूरे दिन गंगा की रेती पर ही ठहरना पड़ा। जब दाता का पधारना हुआ और ब्रह्मचारी जी महाराज को सूचना मिली तब उन्होंने तत्काल व्यवस्था करवा दी। आश्रम के पीछे के खुले मैदान में पांच तम्बू तत्काल ही लगा दिये गये।

एक तम्बू के पास ही भट्टी खोद कर भोजन की व्यवस्था कर ली गई। वर्तन ब्रह्मचारी जी के आश्रम का भोजन बनने के बाद प्रति दिन लाने होते। प्रातः प्रसिद्ध इलाहाबादी अमरुदो का नाश्ता होता। भोजन दोपहर में एक बार ही होतो और वह भी दाल, चावल, आलू, गोभी, मूली, मटर, टमाटर आदि वस्तुओ की मिली-जुली नमकीन-मसालेदार खिचड़ी। एक दिन तो दाता ने अकेले ही सब के लिए खिचड़ी बनाई। उसके अनुपम स्वाद का क्या कहना? बाल भोग की खिचड़ी का प्रसाद बांटा जाता। प्रसाद प्राप्त करनेवाले व्यक्तियो ने बताया कि उन्हे ऐसा अमृतोपम स्वाद जीवन मे अन्यत्र कहीं प्राप्त नही हुआ। उस प्रसाद मे बिना डाले ही केसर, कस्तूरी, इलायची आदि मसालों की दिव्य सुगन्ध की लपटे उठा करती।

श्रद्धेय ब्रह्मचारी जी महाराज नित्य प्रति तम्बू मे आकर दाता को त्रिवेणी स्नान हेतु ले जाते। भोजनप्रभारी सोहनलाल जी ओझा और उनके चार सह-योगियो के अतिरिक्त सब मंडली साथ जाती। ब्रह्मचारी जी के प्रति नाविको का श्रद्धा-सम्मान का भाव गजब का था। एक सुसज्जित नौका उनकी स्वयं की थी जिसका उपयोग स्नान के समय अवश्य किया जाता। दाता, मातेश्वरी जी आदि उनके साथ उसी नाव मे पधारते। अन्य लोग किराये की नावो का प्रयोग करते। संगम स्थल पर अगणित नावें रहतीं। वहाँ की भीड़ और शोर का तो कहना ही क्या? कुम्भ का मेला विश्व का सब से बड़ा मेला है। इसमे लगभग एक करोड़ नर-नारी एकत्रित होते है। गंगा-यमुना के चौडे विशाल रेतीले पाट मे चारो ओर मीलो की दूरी मे साधु-महात्माओ के तम्बू ही तम्बू लगे थे। ठसाठस भीड़ से मैदान पटा था। चारो ओर से भक्ति-भाव से भरे भक्तगण हरिकीर्तन करते हुए और भजन गाते हुए पैदल चल कर इस प्रकार आते थे मानो टिड्डी दलो का तांता उमड़ पड़ा हो। यह दृश्य भारतीय सांस्कृतिक आस्था एवं चेतना के उत्थान और संगम का अनुपम दृष्टान्त है। उसकी आह्लादकारी शोभाछवि देखते ही बनती है।

यह उल्लेखनीय है कि उस अपार भीड़ मे यदि कोई तनिक सा भी असावधान रह कर अपने संगी-साथियों से बिछुड़ जाता तो फिर उनसे उसका वापिस साथ हो पाना नितान्त दूभर ही था। ऐसी स्थिति मे दाता की विस्मयकारी लीला यह होती कि जब भोजन बनाने वाले दल के व्यक्ति भोजन बना कर स्नान के लिए शीघ्रता से संगम पहुँचने को नाव किराये पर लेकर जल मे प्रवेश करते, तब उनकी नाव अनायास ही चुम्बकीय आकर्षण के वशीभूत हो दाता की नाव के पास जाने लगती। नजरे मिलने पर ऐसा अनुभव होता मानो दाता उत्सुकतापूर्वक उनकी प्रतीक्षा कर रहे हो। उस समय उन्हे जो आनन्द प्राप्त होता उसकी अलौकिकता का वर्णन करना संभव नहीं है। पन्द्रह दिन के प्रवास में यह घटना नित्य प्रति बिना किसी अपवाद के घटित होती। स्नान करते वक्त वह दल मग्न होकर दाता के नाम का संकीर्तन करता और आनन्दोदधि मे मस्त होकर गोते लगाता। उस-

दिव्यानन्द के आलम में ब्रह्मचारी जी महाराज मस्त हो जाते। भाव मग्न होकर वे दाता को 'विश्वस्वरूप' मान उनके मस्तक पर पत्र-पुष्प और गंगाजल से अभिषेक कर प्रफुल्लित होते। कुछेक सत्संगी गोपनीय रूप से गंगाजल से अंजुली भर भावमग्न होकर नेत्र मूंद दाता का मानसिक ध्यान करते हुए जलाभिषेक करते। तत्पश्चात् दाता की ओर निहारते तो दाता उसे सहर्ष अंगीकार करने की स्मित भाव-मुद्रा में दिखाई पड़ते। उस मन की बात को मन में ही समझते हुए वे आनन्दमग्न-आत्मलीन हो जाते।

ऐसा सुना है कि कुम्भ पर्व में गुप्त अथवा प्रकट रूप में विशिष्ट-सिद्ध-संत महापुरुष गुप्त रूप धारण कर सम्मिलित होते हैं। सामान्यतया उन्हें कोई पहचान नहीं पाते। उच्च कोटि के विरले संत ही उनका साक्षात्कार, दर्शन अथवा प्रत्यक्ष बोध कर पाते हैं। वे धन्य है जिन्हें उनके दर्शन हो पाते हैं। उधर तो उन महापुरुषों की महती कृपा और इधर सदाशयता एवं सत्पात्रता ऐसे दिव्य दर्शनों का हेतु बनती है। ऐसा ही एक अलौकिक भव्य प्रसंग है। दाता के स्नान करके लौटने के पश्चात् एक दिन एक साधारण सा दिखने वाला व्यक्ति धोती कमीज कोट पहने सिर पर गोल टोपी लगायें, इकतारा लेकर तम्बुओं के पास कुछ दूरी पर पेड़ की छाया में आकर बैठ गया। किसी का ध्यान उस ओर नहीं गया। सायंकाल को भी लोगों ने उसे वहीं बैठे देखा। इस तरह वह नित्य वहीं आकर बैठने लगा। वह लगातार दो घण्टे मध्याह्न में और कभी-कभी शाम को भी घण्टे भर के लिए पूर्ण तन्मय होकर " रामजी पूर्ण ब्रह्म हैं, जी ! रामजी पूर्ण ब्रह्म हैं " का सुमधुर कीर्तन इकतारे की तान में तान मिलाते हुए करता। उस समय उसके गले की सब नसें खिंच कर तन जातीं, दम फूलने लगता और मुख का ताम्रवर्णी गौर रंग रक्त की लालिमा से अधिक अनुरंजित होकर मुखमण्डल को आभावान बना देता। फिर भी वह अविराम गति से उसी एक तान को गाये जाता। दाता भी आनन्द मग्न हो उसे सुनते रहते। यह कीर्तन कभी दोपहर 'हरीहर' के वक्त भी चलता। दो तीन घण्टे अथक कीर्तन करने के पश्चात् बिना कुछ याचना किये और बिना किसी से कुछ बोले चुपचाप वह वहाँ से चला जाता। आश्चर्य ही है कि नित्य का यह क्रम होने पर भी किसी ने कभी न तो बात ही की और न किसी ने परिचय ही पूछा, क्यों कि सभी उसे सामान्य सा व्यक्ति ही मानते रहे। जब तक वह आता रहा दाता ने भी न तो कुछ कहा और न उसके बारे में कुछ बताया। करीब ग्यारह दिन तक आने के बाद जब उसने आना बन्द किया, तब सभी को उसकी याद आयी। सभी को पश्चाताप हुआ जब उसे नहीं देखा। तब दाता ने फरमाया, "वे दिव्य महापुरुष हैं। उनका अब नाम बताने से क्या लाभ है? यह परम सौभाग्य की बात है कि आप लोगों को उनके दर्शन तो हो गये।' एक बन्दे ने कयास लगाते हुए कहा ' कलिकाल में इस प्रकार अविरल गति से इकतारे पर अथक नामोच्चारण-कीर्तन करने वाले श्री हरि के अनन्य भक्त श्री नारद देव

के अतिरिक्त अन्य कोन हो सकता है, जिसने इस पावन संगम पर इस कलिकाल में 'श्री दाता' के साक्षात् "पूर्ण ब्रह्मस्वरूप राम" होने का उद्घोष किया है; जब कि त्रेतायुग मे इसी स्थान पर महर्षि भारद्वाज ने 'राम' के इसी पूर्ण ब्रह्मस्वरुप की उद्घोषणा की थी। यह कैसा साम्य है! यह इस कलिकाल की विशेषता है।" दाता मौन होकर मुस्कराहट के साथ यह भाव भरे उद्गार सुनते रहे किन्तु अपनी ओर से कुछ भी अभिव्यक्त नही किया। उस समय की दाता की भाव-भंगिमा और मुखमुद्रा की शोभा अलोकिक थी।

"जासु नाम सुमिरत इक बारा।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥"— गोस्वामी तुलसीदास

कुम्भ के अवसर पर यह परम्परा रही कि उसमे सम्मिलित होने वाले विशिष्ट महापुरुषो मे से किन्हीं एक का संक्षिप्त जीवन-वृत वहाँ से प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र 'आज' मे छपता। इसी क्रम में जब दाता की भक्त-मण्डली ने एक दिन अनायास ही पत्रिका मे दाता का चित्रसहित महिमामण्डित जीवन-वृत श्रद्धेय ब्रह्मचारी जी महाराज द्वारा लिखित पढ़ा तो उनके आनन्द की कोई सीमा नही रही। जब जोशी जी, चाँदमल जी ने उसे पढ़कर दाता को सुनाया तो सच मानिये जनवरी मास की उस भयंकर सर्दी मे भी उसे सुन कर दाता ऐडी से चोटी तक पसीने से तर-बतर हो गये। उन्होने दीनतापूर्वक कहा, "ब्रह्मचारी जी महाराज ने यह क्या गजब कर दिया? यदि इसे पढ़कर कुम्भ की भीड़ उलट पड़ी तो पीस कर चटनी बना देगी। कंचन-कामिनी से भी भयंकर घातक विष कीर्ति का है, जिसे बडे-बडे महापुरुष भी पचा नही पाते है! अतः मान, सम्मान, यश और कीर्ति से संत और साधक को सदैव बचना चाहिए।"

इस प्रसंग मे स्वर्गीय श्री यशपाल की कहानी 'अखबार मे नाम' का स्मरण हो आता है जो आज के प्रचारयुग का सटीक प्रतिनिधित्व करती है। किन्तु वन्दनीय और धन्य है वे महापुरुष जो निःस्पृह होकर विनीत और दीन भाव से निरहंकार रहते हुए इस गरिमा को विषवत् त्यागने का उपदेश ही नहीं देते अपितु अपने आचरण-द्वारा कथनी और करणी को समन्वित और एकीकृत कर दिखाते हैं।

ब्रह्मचारी जी महाराज का आश्रम 'झूंसी संकीर्तन भवन' कहलाता है। वहाँ वर्षो से अखण्ड कीर्तन चल रहा था। एक अलग पण्डाल में दिनभर कथा, प्रवचन, उपदेश का कार्यक्रम अलग से होता था। कुम्भ में आये हुए प्रसिद्ध महात्माओ में से किसी एक का वहां नित्य दोपहर में दो बजे प्रवचन होता रहता था। ब्रह्मचारी जी महाराज ने बिना पूर्व स्वीकृति के ही प्रचारित करवा दिया कि अमुक दिन दाता का प्रवचन होगा। दाता वहाँ पधारे तब उन्हें प्रवचन देने हेतु प्रार्थना की गई। दाता ने अति विनम्र भाव से यह कहते हुए क्षमा चाह ली, "मेरा राम तो खुद भोपू है। भोपू नहीं बोला करता। उसमें तो बोलने वाला ही बोलता है।

भोपू तो उस बोलने वाले की आवाज को प्रसारित मात्र करता है। मेरा दाता ही बोलने वाला है, जो सभी की काया में रमण कर रहा है। वह कब और क्या बोलना चाहता है यह बात भोपू क्या जाने ? यदि कोई भोंपू से कहे कि तू बोल तो बेचारा भोपू क्या बोलेगा ? मेरे दाता की महर होने पर ही इस भोपू से आवाज निकलती है अन्यथा एक शब्द भी बोलना मेरे राम के लिए सभव नहीं है।'' दाता कहते है, "जब मेरा दाता इस भोपू के माध्यम से बोलता है तब मेरा राम भी आप लोगो की तरह एक मूक श्रोता बना रहता है।'

आधुनिक प्रचारतत्र प्रणाली के प्रतिकूल दाता के इस प्रकार के अनासक्त भाव की यह है एक झांकी जो उनके व्यक्तित्व में सबसे निराला निखार लाती है।

गुदडी बाबा से मिलन

एक दिन स्नान से लौटते हुए दाता ने एक गुदडीवाले बाबा को देखा तो हर्षविभोर हो उठे। दोनों की नजरें मिली तो आंखो ही आखों में सकेत भाषा ने जादू कर दिखाया। उसी दिन मध्याह्नोपरान्त वह मथुरा वाला गुदडी बाबा ब्रह्मचारी जी महाराज के आश्रम की सकरी गली के माग में आ गया। जैसे ही दाता आश्रम के प्रवचनभवन से निकले तो बाबा को देखकर अन्य व्यक्तियो को तो तम्बू में जाने का सकेत किया और स्वय आगे बढकर बाबा से जा मिले। कुछ समय बाद तम्बू में आकर जोशी जी को बुलाकर बोले, "जाओ! बाबा उधर खडा है उसे यहां लिवा लाओ।' बाबा की वेश-भूषा और स्वभाव विचित्र था। लोग उससे बात करने और प्रणाम करने में भी डरते थे। वह चिथडों की गुदडी ओढे और पच खोंसे रहता। उसके हाथ में मिट्टी की एक हडियां और टेढी मेढी एक लकडी रहती। जो भी उसके पास जाता उसे वह लकडी बता भयभीत करता रहता, फिर भी कोई नहीं मानता तो लकडी से तडातड उसकी पीठ लाल कर देता। परन्तु जब जोशी जी ने जाकर प्रणाम करके उसे तम्बू में चलने को कहा तो विचित्र बात यह हई कि उसने कोई असामान्य भाव नहीं दर्शाया। वह तुरन्त चुपचाप मुस्कराता हुआ उनके पीछे पीछे चला आया। दाता ने तम्बू के बाहर आकर उसका हार्दिक स्वागत किया। वे उसे प्रेमपूर्वक तम्बू में ले गये। मातेश्वरी जी और कु हरदयालसिंह ने श्रद्धापूर्वक उसके चरण स्पर्श कर सादर प्रणाम किया। लगभग बीस मिनिट तक दाता और बाबा उसी तम्बू में बातचीत करते रहे। कुछ बन्दे तम्बू के पास बाहर चुपचाप जा बैठे। बाबाने जो कुछ कहा उसका सार-तत्त्व यह है, "पृथ्वी हमारी माता है। हम सब उसके पुत्र हैं। पृथ्वी तत्व (मिट्टी) की नश्वरता और विशिष्टता समझ कर उसे विनम्रतापूर्वक सिर पर धारण करने से व्यक्ति में ममतामयी माता के समस्त दिव्य गुण यथा-करूणा, दया, क्षमा, वात्सल्य, समत्व, अहिंसा, समृद्धि आदि धीरे धीरे प्रकट होकर उसके जीवन को आलोकित कर देते हैं। वह सब जीवों के प्रति आत्मवत व्यवहार

करने लग जाता है। सभी को सिर पर धारण करने की क्षमता के कारण ही यह धरित्री कहलाती है।"

तत्पश्चात् दाता तम्बू से वाहर आये और भक्तमण्डली को सम्वोधित कर फरमाया, "तुम एक वार अन्दर आकर वावा के चरणों में प्रणाम कर लो।" वावा मुग्धभाव से वैठे रहे और भक्त जन एक एक आकर प्रणाम करते गये। वे सभी को प्यार से देखते रहे। जव दाता के पिता श्री ने वावा को प्रणाम किया तो वावा ने प्रसन्न होकर विशेष भाव दर्शाये। उनकी आँखो से ऐसा लग रहा था मानो वे उनको पिताश्री होने के प्रति आदर, सम्मान और प्रशंसा के भाव अभिव्यक्त कर रहे हो। इसके वाद वहुधा वावा दाता के पास चले आते। इसी कुम्भ के अवसर पर दाता को कैलाश-मानसरोवर यात्रा की प्रेरणा प्राप्त हुई। दाता ने वालकवत् अनुरोध करते हुए वावा से कहा, "वावा चलो न कैलाश-मानसरोवर की यात्रा पर।" वावा ने भी वात्सल्य भरी मुस्कान सहित सखा-सेवक भाव से उत्तर दिया, "हाँ! हाँ! अवश्य! मगर इस शर्त पर कि आप मुझे इस यात्रा में नित्य प्रति चरण पखार कर चरणामृत लेने दें तो!" दाता ने सहज नटखट विनम्रता से कहा, "वाह वावा! वाह! मैं तो तेरा इतना छोटा वालक हूँ। इतनी ज्यादती शोभा नहीं देती।" वावा ने कहा, "क्यो? पहले भी तो देते ही रहे हो! दाता नाम धारण किया है तो अव 'दातापन' की वान और स्वभाव को क्यो भूलते हो?" वावा के ऐसे प्रेम से अटपटे वचन सुनकर दाता हँस पडे। वावा ने भी उसमें खुलकर योग दिया। इस मनोहारी दृश्य को देखकर मातेश्वरी जी भी मन ही मन पुरातन स्नेह-सम्वन्ध का स्मरण कर मुस्कराने लगीं।

वावा चरण प्रक्षालन की शर्त पर अडे रहे वैसे ही जैसे केवट त्रेता में अड़ा था। वहाँ दोनो ने एक दूसरे को पार किया और यहाँ मानसरोवर की वात आयी गई हो गई। तदुपरान्त दोनों ही परिपूर्ण प्रेमावस्था में एक दूसरे के चरणो का स्पर्श करते हुए कृतार्थता का भाव यो दर्शाने लगे। गोस्वामी जी ने ऐसी भाव-भंगिमा का वर्णन इस प्रकार किया है :–

'नाथ आज मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
वहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आज दीन्हि विधि वन भल भूरी॥
अव कछु नाथ न चाहिये मोरे। दीन दयाल अनुग्रह तोरे॥'

आज भी उस दृश्य का स्मरण करने पर हृदय प्रेम से द्रवीभूत हो जाता है। ऐसा अपूर्व आनन्ददायक दृश्य होता है प्रेमियों के परस्पर मिलन का! राम केवट वन जाते हैं और केवट राम-दोनो अभिन्न-अभेद! वस्तुतः आदि-अनादि केवट-वेड़ा पार लगाने वाला तो काशीराज साक्षात् विश्वनाथ स्वयंभू ही हैं! यह समस्त चराचर उसका क्रीडा-कौतुक है, जिसे वह सुघड़ खिलैया गेंद की भाँति नचा रहा है। उसके इस लीला के रहस्य को वही जान पाता है जिसे वह जना देता है और तव दोनों एकम एक! अभिन्न एकाकार!

'सोइ जानहि जेहि देहु जनाई। जानत तुमहि तुमहि होइ जाई।'

उस दिन रात्रि में दिन के उस आनन्द की स्मृति में बन्दो ने दाता के समक्ष यह गीत मस्ती से झूम झूम कर गाया –

किस्मत को अपनी मैं क्यो न सराहूँ।
कि तुझे पा लिया फिर बचा और क्या है।
कहीं भी रहोगे दाता हम तेरे साथ होगें।
भिखारी की झोली में दाता तेरे हाथ होगें।
चरण पर निछावर दाता हमारे ये माथ होगें।
हमसा भिखारी नहीं नही तुमसे नाथ होगें।
कि नजरो में मेरी नजरबन्द है तू।
तो देखने को बाकी बचा और क्या है? किस्मत
तेरे द्वार आ पडा पर लायक नही हूँ।
पतित तो हूँ सूर गायक नही हूँ।
मन का गुलाम हूँ मैं नायक नही हूँ।
भरोसे के लायक मैं एकाएक नहीं हूँ।
कि वादा मिला जब मुझे तारने का।'
तो तारने को बाकी बचा और क्या है? किस्मत
मुलजिम अदालत में खुद आ चुका है।
कातिल भी होने का बयाँ दे चुका है।
तेरी एक नजर से जो मुलजिम रिहा है।
तो फैसले में बाकी बचा और क्या है? किस्मत
अपना बनाया हमको महरबानी आपकी।
काबिल नही है हम तो कदरदानी आपकी।
बगुले को तूने हंसा जो बनाया।
तो मुकद्दर का बनना बचा और क्या है? किस्मत
मन का हूँ मोजी पर दिल गमशुदा है।
नजरों में रह कर भी आलमजुदा है।
मेरे दिल की धडकन जो तुझ में धडकती।
तो दिलवर को देना बचा और क्या है? किस्मत
मस्ताना कर दे दाता दीवाना कर दे।
शमा पर मिटने का परवाना कर दे।

दीदारे मस्ती मे कदम लड़खड़ाये।
तो जाम का फिर पीना बचा और क्या है ? किस्मत.....
दाता तू ही तू हे दाता तू ही तू।
तो गाने को बाकी बचा और क्या है ? किस्मत.....

अन्त मे गायक और श्रोता दिव्यानन्द मे तन्मय तल्लीन हो गये। यह महज एक गीत ही नहीं है अपितु है दाता के शील-सौन्दर्य और सहज-स्वभाव का वास्तविक प्रशस्ति-गान। बन्दो की अनन्य भाव-निष्ठा, अलमस्ती और उत्कृष्ट अनुभूतियाँ जो गीत के अनमोल बोलो मे मुखरित होकर उभरी है जो भक्त और भगवान के प्रेमलीला-सम्बन्ध की मनोहारी भव्य झांकी प्रस्तुत करती है।

ब्रह्मचारी जी महाराज दूसरे दिन दाता को अपने साथ लेकर दक्षिण भारतीय "श्री गोपाल बाबा" द्वारा संचालित अन्नक्षेत्र का उद्घाटन करने ले गये। कुम्भ मे अनेक महात्माओ से मिलन हुआ। उनमे प्रमुख है:— स्वामी शरणानन्दजी, जयदयाल जी गोयन्दका, हनुमानप्रसाद जी पोद्दार, करपात्री जी महाराज आदि। इसी अवसर पर आयोजित 'गोरक्षा सम्मेलन' मे भी दाता सम्मिलित हुए। ब्रह्मचारी जी, पीठासीन प्रमुख सन्त-महात्माओ ने इन्हे सादर मंच पर बिठाना चाहा किन्तु मंच पर न बैठ कर दाता अत्यन्त साधारण से स्थान पर जहाँ सब की चरण पादुकाएँ थी,वहाँ जा बैठे। मंच पर बैठने के लिए सभी महात्माओ ने खूब आग्रह किया किन्तु दाता ने यह कहकर विनयपूर्वक अस्वीकार कर दिया, "धरती से श्रेष्ठ अन्य कोई आसन नहीं है, जहाँ बैठने से कोई किसी को नही उठाता।" फिर भी ब्रह्मचारी जी नही माने। उन्होने एक चोकोर पाटा दाता के लिए अलग रखकर हाथ पकड़ उसपर जबरदस्ती बिठा ही दिया। दो-तीन मिनिट तो दाता उस पर बैठे रहे और पुनः धीरे से उस पर से हट कर पूर्व के स्थान पर जा बैठे। थोड़ी देर बाद ही दो सन्त आये। उन्होने मंच की ओर देखा किन्तु मुख्य मंच ठसाठस भरा था। उनकी नजर उस खाली पाटे पर पड़ी। वे दोनो वहाँ जाकर बैठ गये। पाटा छोटा था और दोनो सन्त शरीर से भारी थे। अतः वे पीठ से पीठ मिलाकर कसम-कस होकर असुविधापूर्ण स्थिति मे बैठे। उन्हे बैठने मे कष्ट हो रहा था। पर वाह रे सम्मान की चाह! तु साधु बनने के बाद भी समाप्त नही हो पाती। दाता ने अपने पास बैठे बन्दे को संकेत से यह दृश्य दिखाया। अपने भूमि के आसन की ओर संकेत करके बताया कि यह कितना विशाल और आराम देह आसन है जो कभी छोटा नहीं पड़ता।

इस कुम्भ के आनन्द का मजा अधूरा ही रहेगा यदि एक घटना का वर्णन न किया जाय। जैसा पूर्व मे लिखा जा चुका है कि दाता अपने साथी सेवको के मनोरंजन और आमोद-प्रमोद का भी सदा ध्यान रखते है। इसी उपक्रम मे दाता गगा की रेती के उस भाग मे गये जहाँ से किसी संस्था द्वारा संचालित वायुयान

में इच्छुक व्यक्तियों को कुछ शुल्क अदा करने पर उस विशाल मेले का दृश्य दिखाया जा रहा था। दाता भी शुल्क देकर वायुयान में बैठे तो चालक राजा बजरंग बहादुर सिंह ने जो उस यान का सचालक था दाता को बेल्ट बाँधने के लिए कहा। दाता ने मना कर दिया। अन्य बन्धुओं ने भी इस आनन्ददायक दृश्य का यान में बैठकर लाभ उठाया।

साधु-सन्त और सन्यासियों के विशाल मेले में दाता मातेश्वरीजी सहित अपनी भक्त मण्डली को लेकर घूमते। विभिन्न मत-मतान्तर, सम्प्रदायों, अखाड़ों के सुसज्जित विशाल मण्डपों को घूम कर दिखाते और फरमाते 'यह सब भीड़ को आकर्षित करने और अपने प्रभाव के प्रचार करने की होड़ लगा रहे है। प्रभु को छोड़ कर भीड़ को रिझाने और आकर्षित करने के लिए कितना प्रपंच, प्रचार करने में ये सब लोग अपनी शक्ति श्रम और धन का दुरुपयोग कर रहे हैं।"

अनेकों मण्डपों का वैभव, स्वर्ण-रजत के बने सिंहासन और रत्नजटित श्रृंगार देख कर ऐसा लगता मानो उनके मंडलेश्वर, महामंडलेश्वर अतुलनीय सम्पदा और सम्पत्ति के स्वामी होकर धन-पति कुबेर से प्रतिस्पर्धा कर रहे हों। साराश में वहाँ भौतिक सम्पत्ति की परिपूर्णता के मध्य आध्यात्मिक विपन्नता ही दृष्टिगोचर हो रही थी।

दाता फरमाया करते हैं, "ये महन्त लोग अपने अहंकार, धन-वैभव में पथ-भ्रष्ट होकर सामाजिक कुरीतियों के जन्मदाता ही रह गये हैं। जिस भोली भाली अपढ़ जनता से यह रकम धर्म के नाम पर ली जाती है उसका हितचिन्तन तो दूर, उल्टा उसे ही मछली की भांति अपने जाल में फास कर निर्ममतापूर्वक तड़फा रहे हैं।'

स्नान भोजन शयन आदि के बाद शेष समय को दाता अपनी भक्त मण्डली में बैठकर हरिनाम कीर्तन प्रवचन और सत्सग-चर्चा में व्यतीत करते। उनके कृपाप्रसाद से कई भक्तों को उस अवधि में अनेक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ और दिव्य दर्शन प्राप्त हुए।

कुम्भ की इस विशाल भीड़ को देखकर दाता प्रायः नित्य ही दिन में दो-तीन बार भक्तमण्डली के लोगों को सावधान रहने, एक साथ चलने और भीड़ में सम्मिलित नहीं होने का निर्देश देते रहते थे जिससे कोई दुर्घटना न हो पाये। अन्त में वहाँ तेरह दिन रहने के बाद कुछ बन्दों को अपने पास रखकर अन्य लोगों को वापिस जाने का आदेश दे दिया।

मौनी अमावस्या का स्नान —

कुम्भ पर्व के अन्तिम स्नान की पूर्व सन्ध्या को ब्रह्मचारीजी महाराज दाता के पास आये। उन्होंने आग्रह किया कि मौनी अमावस्या के स्नान हेतु ब्राह्म मुहूर्त में ही शुभ समय है, अतः उसी समय स्नान हेतु पधारना है। दाता ने तुरन्त फरमाया

"हमारे लिए तो सभी समय ब्राह्म-मुहूर्त है और आप भी कल ब्राह्म-मुहूर्त में स्नान करने न पधारें।" दाता ने स्नान का समय ग्यारह बजे का तय किया। ब्रह्मचारीजी को कुछ अटपटा अवश्य लगा किन्तु उन्होने दाता की राय मान ली।

दूसरे दिन प्रातः जब सब सोकर उठे तो उन्हे चारो ओर भयंकर आतंक, घबराहट, हाहाकार और भाग-दौड़ दिखाई दी। कुछ ही समय पश्चात् ज्ञात हुआ कि ब्राह्म-मुहूर्त में स्नान हेतु अनेको जमातो से भीड़ मे दबाव बढ़कर संगम के किनारे की मीलो भूमि टूट कर प्रवाह मे गिर गई। फलस्वरूप सहस्रो व्यक्ति जलसमाधि को प्राप्त हुए। सैकड़ो व्यक्ति भीड़ से कुचल कर दब गये और मर गये। भीड़ का दबाव इतना था कि किनारे की दुकानों का पता ही नही लगा। पीतल और लोहे के बर्तन दबकर चद्दर की तरह सपाट हो गये। चारो ओर शोक और घबराहट का वातावरण छा गया। जो उत्साह और आनन्द मेले में देखने को मिल रहा था वहाँ अब दैन्य और मायूसी का राज्य था।

जब कुम्भ से लोट कर आये व्यक्तियो ने यह समाचार सुना और पढ़ा तो सभी स्तब्ध रह गये। वे दाता, मातेश्वरीजी, कु॰ हरदयाल एवं अन्य सत्संगियो की कुशलता के समाचार जानने हेतु व्याकुल और चिन्तित हो गये। तदर्थ तार, टेलिफोन आदि साधनो से प्रयत्न भी किये गये किन्तु कोई सूचना प्राप्त नहीं हो सकी। जो स्वयं सब की रक्षा करने का हेतु और अवलम्ब है उसके लिए चिन्ता करना मात्र अज्ञान और भावुकता ही है। यह तो मानव की कमजोरी है कि वह विपत्तिकाल मे अपनो की सुरक्षा के प्रति धैर्य धारण नही कर पाता। सभी ने अनुभव किया कि दाता द्वारा उन्हे वापिस भेज देना और समय पर सावधान रहने की चेतावनी देना इस कारुणिक घटना का पूर्व संकेत ही तो था। ब्रह्मचारीजी महाराज तो दाता के इस पूर्व संकेत के प्रति बहुत ही आभार मानने लगे और दाता ने अपने भक्तो की रक्षा कर दी इसके लिए बारम्बार प्रशंसा करते हुए आनन्दाश्रु बरसाने लगे। सभी भक्त लोग भी दाता की इस अहेतुकी कृपा से गद्‌गद् होकर आह्लादित हो गये।

वहाँ का वातावरण इतना वीभत्स एवं भयावह हो गया कि सभी दाता से वहाँ से चलने की प्रार्थना करने लगे। दाता ने भी वहाँ से प्रस्थान करना उचित माना। उन्होंने ब्रह्मचारीजी का आभार प्रदर्शित करते हुए विदा मांगी। ब्रह्मचारीजी न चाहते हुए भी दाता को रोक नहीं पाये। उन्होने साश्रु दाता को विदा दी।

दाता लगभग पच्चीस दिन तक आनन्द-वैभव वितरित कर कार द्वारा दिल्ली, जयपुर, अजमेर के भक्तजनो को दर्शन देते हुए नान्दशा पधार गये।

० ०

जीपदुर्घटना - ड्राईवर की प्राण-रक्षा

मार्च सन १९५४ में दाता की इच्छा जयपुर पधारने की हुई। कई भक्तों को दर्शन देने की इच्छा रही होगी। सीधा केरिया का रास्ता पकड़ा। केरिया निवासी राजसिंह जी दाता के परम भक्त रहे हैं। कई बार उन्होंने दाता को केरिया पधारने हेतु निवेदन किया किन्तु दाता ने कभी स्वीकार नहीं किया। उस दिन अचानक पधारना हो गया। राजसिंह जी को स्वप्न में भी यह ज्ञात नहीं था कि इस तरह दाता का पधारना हो जावेगा। वे हतप्रभ से हो गये। कुछ देर बाद वे आश्वस्त हुए, तब उन्होंने दाता का स्वागत किया। रात्रि विश्राम वहीं हुआ। प्रातः का भोजन भी वहीं हुआ। चिरकाल की उनकी इच्छा पूरी हुई। दाता की यही तो विशेषता है। सच्चे मन से यदि कोई कुछ इच्छा करता है तो उसकी इच्छा को पूरी करते हैं।

वहाँ से विजयनगर एवं अजमेर के सत्संगियों को दर्शन देते हुए दाता जयपुर पहुँचे। वहाँ श्री रामकृष्ण जी शुक्ला के यहाँ श्री गिरधर निवास में विराजना हुआ। अचानक दाता को पधारे हुए देख कर शुक्ला साहब का पूरा परिवार हर्षोल्लास से परिपूरित हो उठा। शुक्ला साहब के आनन्द का तो कहना ही क्या। वे तो आनन्द के महासागर में इतने डूब गये कि उन्हें उनके तन-मन की सुध-बुध भी नहीं रही। जब भी दाता जयपुर पधारते हैं तो वहाँ का वातावरण पूर्ण आनन्दमय हो जाता है। बात की बात में लोग एकत्रित हो जाते हैं। इस बार भी सभी लोग एकत्रित होकर दाता के वचनामृत का पान करने लगे।

उन दिनों नीमराणा के राजासाहब बीमार थे। इस बात की सूचना जयपुरवालों ने दी। इस पर दाता ने नीमराणा जाने की इच्छा प्रकट की। कई लोग दाता के साथ जाने को तैयार हो गये। अगले ही दिन एक कार व दो जीपें नीमराणा के लिये रवाना हुई। एक जीप में दाता, मातेश्वरी जी, तीनों बहिनें अभयसिंह जी, वीरेन्द्रसिंह जी, शिवसिंह जी और गोवर्धनसिंह जी थे। दूसरी जीप में मोरीजा के ठाकुर श्री कल्याणसिंह जी, गोविन्दगढ के ठाकुर श्री करणसिंह जी चाँदमल जी जोशी, श्री कृष्णगोपाल जी, नारायणसिंह जी और अन्य लोग थे। कार में मसूदा रावसाहब थे। प्रस्थान के पूर्व भवानीसिंह जी राणावत के यहाँ पधारना हुआ। नाश्ता भी वहीं हुआ। वहाँ मसूदा रावसाहब ने दाता को कार में विराजने हेतु निवेदन किया। दाता ने तब फरमाया, "मेरे राम को जीप में बैठनो पड़ी। इन रहस्यात्मक शब्दों का तात्पर्य उस समय कोई नहीं समझ सका। निर्णयात्मक शब्दों से मसूदा रावसाहब कुछ नहीं बोल सके। मोरीजा के ठाकुर साहब से नहीं रहा गया। उन्होंने पुनः निवेदन किया तो बोले, "बापू! अभी नहीं। आगे से बैठेंगे।"

जयपुर से प्रस्थान कर भर्तृहरि के आश्रम पर पहुँचे। लगभग दो घण्टे वहाँ विराजना हुआ। वहाँ से अलवर के लिये प्रस्थान किया। भर्तृहरि आश्रम से प्रस्थान के समय श्री दाता ने जीप को अपने हाथों में ले लिया। ड्राईवर कुछ बोल नहीं सका, कार आगे निकल गई थी। कार के पीछे जीप थी जिसको उस समय दाता चला रहे थे। उसके पीछे दूसरी जीप थी। कार की गति तेज थी अतः वह आगे निकल गई। दाता ने अपनी जीप की गति पचास मील प्रति घण्टे की कर दी। कुछ आगे चलने पर भारी मोड़ आया। वहाँ सड़क पर तीन चार मोड़ थे और सड़क ढालू थी। चालक के रुप में मार्ग का परिचय दाता को था नहीं। गाड़ी की गति तेज थी। एक मोड़ पर जीप नहीं संभल सकी। सीधी सड़क के किनारे से टकराकर उलट गई। उलटने के पहले एक झटका सा लगा। उस झटके में अन्दर के बैठे लोग जीप के बाहर उछल पडे। बहनें एक ओर तथा कु. अभयसिंह जी और वीरेन्द्रसिंह जी दूसरी ओर जा उछले। मातेश्वरी जी, शिवसिंह जी और गोवर्धनसिंह जी भी उछल कर जीप के बाहर जा गिरे। इन लोगो के बाहर फिंक जाने पर जीप उलट गई। जीप में दाता व चन्द्रसिंह ड्राईवर रह गये। दाता जीप के नीचे आ गये। जीप पर हुड नहीं था किन्तु हुड के दोनो डण्डे थे। अगले डण्डे के नीचे दाता का घुटना आ गया जिस पर पूरी जीप ठहर गई। पूरी जीप का भार दाता के घुटने पर था। चन्द्रसिंह का सिर स्टेयरिंग के डेस बोर्ड के बीच फंस गया। और तो चोट किसी के नहीं लगी। सभी अपने अपने कपड़ों में लगी धूल को झाड़कर उठ खडे हुए। दूसरी जीप जो पीछे थी घटना स्थल पर आकर रुक गई। सभी ने मिल कर जीप को सीधी कर ड्राईवर एवं दाता को बाहर निकाला। दाता के घुटने पर जीप का सारा वजन गिरा था अतः घुटने में घाव हो गया और रक्त बह रहा था। मांस निकल आया था। ड्राईवर सुरक्षित था। दाता के घाव पर पेट्रोल से कपड़ा गीला कर पट्टी बांधी गई। कार को पीछे से जाने वाली ट्रक ने घटना की सूचना दी। कार भी घटनास्थल पर आ गई। जीप को देखा गया। जीप में कोई खराबी नहीं हुई थी। ड्राईवर ने जीप को चलाकर सड़क पर ले ली। सब चलने को तैयार हुए। तब दाता ने फरमाया, "अब मारो राम कार में बैठ सके।" इस समय कहे हुए शब्द और जयपुर मे कहे शब्दो का अर्थ समझ मे आने लगा। न जाने दाता ने किन किन को मृत्यु के मुख मे जाने से बचाया। दाता ने अपने पर संकट झेल कर दूसरो को संकट से बचाया।

दाता के चोट लग जाने से सभी चिन्तित थे किन्तु साथ ही प्रसन्नता थी कि कितने बडे संकट से दाता ने उबार लिया। किस किस के प्राण बचाये। विशेष रुप से ड्राईवर बच गया। चन्द्रसिंह तेज गति से जीप चलाता था और कहने पर भी नहीं मानता था। प्रभु ने उसको मार्ग पर लाने और उसके प्राण बचाने को ही तो जीप का स्टेयरिंग हाथ में लिया था। जीप की गति तेज थी, ढलान था और मोड़ अधिक थे। सड़क के किनारे दोनो ओर गहरे गड्ढे थे। ऐसे स्थान पर जीप

के उलटने से किसी का बचना संभव नहीं था और जीप के भी टुकड़े टुकड़े हो जाते किन्तु परम आश्चर्य की बात है कि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। दाता ने जीप का सचालन अपने हाथ में लेकर ड्राईवर व उसमे बैठने वालो को बचा लिया। यदि जीप का स्टेयरिंग ड्राईवर के हाथ में होता और जीप में दाता का विराजना न होता तो जीप का और जीप में बैठने वालो का क्या हुआ होता यह तो भगवान ही जान सकता है। दाता समर्थ एव दयालु है जिससे दूसरो का कष्ट स्वय पर ले लेते है।

दाता ने एकबार नीमराणा राजा साहब की कार को भर्तृहरि जी के आश्रम पर जाते हुए इन्ही टेढे-मेढे रास्तो पर साठ मील की गति से चला कर सभी को स्तम्भित कर दिया था, ऐसी स्थिति में यहा उस दिन कुछ ही फर्लांग की दूरी पर जीप को चलाकर उलट देने में उनका आशय ड्राईवर व अन्य लोगो को बचा लेना मात्र ही था।

वहाँ से अलवर पधारना हुआ। अलवर में डाक्टर को बुला कर घाव दिखाया गया। डाक्टर ने घाव को धोकर नये सिरे से पट्टी बाँध दी। घाव गहरा था व डेढ इच अर्द्धव्यास के घेराव में था। रात्रि विश्राम वहीं डाक बगले में कर अगले दिन नीमराणा पधारना हुआ। अचानक दाता को पधारा हुआ देख राजा साहब और उनके घरवालो के हर्ष का पारावार नहीं रहा। राजा साहब परवश थे किन्तु उन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि वे अपनी बीमारी को भूल गये। चारो ओर प्रसन्नता का वातावरण छा गया।

भोजनोपरान्त राजा साहब को बुलाकर उनकी पुकार सुनी। दाता ने फरमाया "चिन्ता की बात नही। दाता की महर हुई तो शीघ्र ही अच्छे हो जाओगे।' दाता की महर से राजा साहब उसी दिन स्वस्थ हो गये। दो दिन तक नीमराणा में ही विराजना हुआ। पुरवासियो ने भी दाता के दर्शन कर प्रसन्नता का अनुभव किया। रात्रि में सत्सग भजन और कीर्तन हुआ। सभी को विचित्र विचित्र अनुभव हुए। सभी आनन्द के सागर में गोते लगाने लगे। दाता ने फरमाया "सदगुरु ही सब कुछ है। अपने अपने भावो के अनुसार सदगुरु भिन्न भिन्न रूप में दर्शन देता है। उसकी कृपा से ही आनन्द की प्राप्ति होती है। सदगुरु में लय हो जाने में कोई आनन्द नहीं है। आनन्द तो शिष्य बने रहने मे है। शिष्य बन कर सदगुरु को प्रेम द्वारा रिझाया जा सकता है।"

तीसरे दिन दाता अलवर होते हुए जयपुर पधार गये। जयपुर में लोगो ने दाता को रोक लिया। घुटने का घाव भी अभी ठीक नहीं हुआ था। डाक्टरों ने भी कुछ दिनो तक जयपुर ठहरने का परामर्श दिया। अत दाता को वहीं रुकना पड़ा। शुक्ला साहब के यहाँ ही विराजना हुआ। वहाँ हर समय सत्सग का

वातावरण ही बना रहता था। शुक्ला साहब की लड़कियाँ सत्यवती, सत्यप्रभा और विभा बड़े मधुर भजन बोलती थी। स्वर और ताल का भी उन्हे अच्छा ज्ञान था। जब वे भजन बोलती तो लोग भाव-विभोर हो जाते थे। दाता उन्हे बुलाकर उनके भजन सुना करते।

एक दिन की घटना है। रात्रि को दाता अकेले छत पर थे। वे ध्यान मे थे अतः ऊपर किसी का जाना मना था पर शुक्ला साहब के बडे दामाद श्री शिव-चरण जी किसी कार्यवश छत पर चले गये। छत पर दाता के आसन पर दाता के बजाय एक शेर को बैठे देखा। उनके हाथ पाँव फूल गये व बुरी तरह डर गये। भागे हुए शुक्ला साहब के पास पहुँचे। उन्होने यह बात उन्हे बताई। सभी घबरा गये। कुछ लोग लकडियाँ लेकर ऊपर पहुँचे। ऊपर जाकर देखा तो आसन पर दाता को ही बैठे देखा। सभी वापिस लौट आये। इस बात से यह समझा गया कि शिव चरणजी शराब बहुत पीते थे और शुक्ला साहब ने इस आदत को छुड़ाने का बड़ा प्रयास किया किन्तु उन पर कोई प्रभाव नही पड़ा। शायद दाता ने उन्हें भयभीत करने के लिए शेर के रूप मे दर्शन दिये हो।

सत्संगियो और जिज्ञासुओ की भीड़ लगी रहती थी। कई लोग नियमित रूप से रात्रि के सत्संग मे आते थे जिनमे जज साहब श्री जेठमलजी और उनकी पत्नी थी। जेठमलजी पुरोहित बडे प्रेमी और जिज्ञासु थे। उन्होने शंकराचार्य के अद्वैत के बारे मे प्रश्न किया। दाता ने अनेक उदाहरण देकर उन्हे इस बारे मे समझाया। यह प्रसंग प्रति रात्रि को चलता रहा। सत्संग के समय एक व्यक्ति चुपचाप आकर बैठ जाया करता था और सत्संग के बन्द होते ही उठकर चला जाता। एक दिन तीसरे पहर जब वह श्री गिरधर निवास के बाहर चुपचाप खड़ा था, दाता ने बुलाया और एक ओर ले जाकर पूछा, "तुम्हे क्या चाहिए।" उस समय कृष्ण गोपाल जी दाता के पास ही खडे थे। वह व्यक्ति रोने लगा। उसने कहा, "आज से तीस वर्ष पूर्व मै झाँसी मे डाक्टर था। झाँसी से कुछ दूर आपका आश्रम था। अपका यही स्वरूप था। यही दाढ़ी और यही जटा। उस क्षेत्र मे आपकी ख्याति थी। दूर दूर के व्यक्ति आया करते थे। जैसे आप यहाँ पुकारे सुन रहे है, वहाँ भी सुना करते थे। मै भी वहाँ आने लगा था। मैने शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। आपने माया और ब्रह्म का एक प्रसंग बता कर कहा कि जहाँ तुम्हे इस प्रसंग का अमुक उत्तर मिल जावे, उन्हे ही गुरु बना लेना। उस समय से ही मे भटक रहा हूँ। मुझे अचानक यहाँ आपके दर्शन हो गये। मैं आपके पीछे पीछे यहाँ चला आया। सत्संग में ब्रह्म और माया का ही प्रसंग चल रहा था। आशा बंधी और मे आने लगा। आज मुझे वही उत्तर जो बीस वर्ष पूर्व बताया गया था, मिल गया। मुझे मेरे गुरुदेव मिल गये है। अब मुझे कुछ भी नही चाहिये।" दाता ने उसे टालना चाहा। वे बोले, "मेरे राम को तो कुछ भी पता नही है कि तुम क्या कह रहे हो?" उसने उत्तर दिया "अब इन आँखो को धोखा

नहीं हो सकता है। दाता ने सकेत से उस समय वहाँ से चले जाने को कहा और वह व्यक्ति तत्काल वहाँ से चला गया।

इसमे क्या सत्य है कुछ कहा नहीं जा सकता। इस तरह की बाते और भी सुनी जाती रही है। कुछ दिनो पूर्व डाकोरजी के एक सन्त ने बताया कि उसने दाता को ऋषिकेश में एक बडी सत्सग सभा में प्रवचन करते देखा है। दक्षिण यात्रा मे बम्बई पहुँचने पर एक व्यक्ति ने बताया कि इन महाराज का तो दक्षिण में बहुत बडा आश्रम है। कुछ भी हो इस बात मे शका नहीं की जा सकती कि दाता सवशक्तिमान और सवसमर्थ हैं। वहाँ कई लोगो को प्रवचन से लाभ हुआ। दाता के वचनरूपी साबुन से उनके मनरूपी कपडे का सारा मैल धुल गया। उनके हृदयमन्दिर स्वच्छ व साफ हो गये। उनके मुह से अनायास ही ये शब्द निकल पडे 'हम अनाथ थे और दाता ने हमें सनाथ बना दिया।'' उन दिनो के सत्सग में शरणानन्द जी के शिष्य श्री मदनमोहन जी वर्मा जो अजमेर बोर्ड के चेयरमैन और लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष रह चुके थे आते रहे। वे भी बहुत प्रभावित हुए।

इस तरह आनन्द के वातावरण में पन्द्रह दिन निकल गये। घुटने का घाव बिलकुल ठीक हो गया था अत पुन नान्दशा पधारना हो गया।

० ० ०

कैलास मानसरोवर यात्रा

भारत वर्ष धर्मप्राण देश है। इस भूमि पर अनेक महापुरुष अवतरित हुए है जिनकी लीला या तपोभूमि हमारे लिए तीर्थ-स्थली बन गई है। यह तीर्थों का देश है। यहाँ पग पग पर तीर्थ है जिनकी अपनी महत्ता है। तीर्थ मे जाकर, वहाँ स्नान कर और भगवान के श्री विग्रह के दर्शन कर जन जन अपने आपको धन्य मानते है।

भारत के उत्तर मे नगराज हिमालय मुकुट की भांति शोभायमान है और अपनी सर्वोच्चता के लिए विश्वविख्यात है। यह महापुरुषो, ऋषि-मुनियो एवं तपस्वियो का ही नहीं बल्कि जन जन का प्यारा स्थान रहा है। इसकी गोदी मे अनेक तीर्थस्थल है। एक ओर अमरनाथ शोभा दे रहा है तो दूसरी ओर बद्रिकाश्रम, कैलास, पशुपतिनाथ आदि तीर्थ इसके गौरव मे वृद्धि कर रहे है। इसकी महत्ता और सुषमा-शोभा से अनेक काव्य-ग्रन्थ भरे हुए है। कवियो और प्रकृति प्रेमियो के लिए यह आदि काल से ही उत्तम प्रेरणा का स्रोत रहा है।

इस पर्वतमाला के मध्य भाग के उत्तरी सिरे पर कैलास पर्वत स्थित है, जिसके निकट ही मानसरोवर झील शोभायमान है। इस विशाल पहाड़ी झील का पानी शीतल, पवित्र और पोषक है। गंगाजल की भांति ही इसका जल भी पाप-नाशक और पवित्र है। मानसरोवर का निर्माण ब्रह्मा की मानसी इच्छा से हुआ है। मन से निर्मित होने से ही इसे 'मान-सरोवर' या मानस-सर कहते है। इसकी यात्रा हेतु भारतवासी लालायित रहते है, किन्तु मार्ग की अगम्यता से विरले ही इच्छापूर्ति कर पाते है। कैलास पर्वत उमा (पार्वती) पति भगवान शंकर की तपोभूमि और निवासस्थान है। भगवान शिव को कैलासपति कहा जाता है। देवी भागवत व श्रीमद् भागवत मे इस अतिरमणीय भू-भाग को देवता, सिद्ध तथा महात्माओ का निवासस्थान कहा गया है। यहाँ मनुष्यो का निवास संभव नही है। क्यो कि यह पर्वतमाला सदा हिमाच्छादित रहती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी सत्य की यों पुष्टि की है :–

"परम रम्य गिरिवर कैलास, सदा जहाँ शिव उमापति निवास।
सिद्ध तपोधन जोगीजन सुर किन्नर मुनि वृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृति सकल सेवहिं शिव सुखकन्द।
हरिहर विमुख धर्म रति नाहिं, ते नर तंह सपनेहु नहिं जाहिं॥"

हिमालय की पर्वतीय यात्राओ मे मानसरोवर कैलास की यात्रा ही सबसे अधिक दुर्गम, विकट और कठिन है। इस यात्रा मे यात्री को पूरे हिमालय को पार करके लगभग तीन सप्ताह तिब्बत प्रदेश मे रहना पड़ता है।

सितम्बर सन १९५३ में महर्षि रमण के शिष्य स्वामी बालानन्द जी दाता के दर्शन हेतु नान्दशा पधारे। वे कई बार कैलास मानसरोवर की यात्रा कर चुके थे। उन्होने दाता से निवेदन किया कि वि स २०११ की ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को मानसरोवर में अर्द्धकुम्भी है। इस अवसर पर अनेक सन्त स्नानाथ मानसरोवर जायेंगे। उन्होने दाता से इस यात्रा पर चलने का आग्रह किया। दाता ने स्वीकृति देते हुए बताया कि उनके अतिरिक्त चार अन्य व्यक्ति साथ होंगे। दाता का प्रयाग कुंभ मे पधारना हुआ सब गुदडी बाबा से इस यात्रा सम्बन्धी चर्चा हुई थी किन्तु बाबा ने दाता के चरणामृत पान को शर्त लगाकर प्रश्न समाप्त ही कर दिया था।

मई सन १९५४ में बालानन्दजी का पत्र इस यात्रा हेतु आया। पत्र प्राप्त होते ही यात्रा हेतु दाता ने जीप द्वारा जयपुर के लिए प्रस्थान कर दिया। साथ में दाता ने इस लेखक ओर श्री सोहनलाल ओझा को ले लिया। पुष्कर स्नान कर अजमेर होते हुए जयपुर पहुचे। वहाँ दो दिन श्री श्रीगिरधर निवास में श्री शुक्ला साहब के यहा विराजकर यात्रा की तैयारी की गई। इस यात्रा में चलने हेतु बहुत से भक्तजन तैयार हो गये। दिनाक २१-५-५४ को दो जीपें जयपुर से रवाना हुई। मार्ग में शाहपुरा के निकट त्रिवेणी पर महात्मा श्री नारायणदास जी के दर्शन करते हुए पावटा के मार्ग से नीमराणा पहुँचे। एक रात्रि नीमराणा राजा साहब का आतिथ्य ग्रहणकर फिर उन्हीं को साथ लेकर दिल्ली पहुचे। यहा समुद्र सिंह जी के यहा 'बीकानेर हाउस' में विराजना हुआ। श्री बालानन्द जी महाराज पहले से ही विद्यमान थे। दो दिन वहा ठहर कर यात्रा सम्बन्धी आवश्यक सामान खरीदा गया। जयपुर से कुछ भक्तजन इस यात्रा में चलने हेतु सज-धज कर आ गये। उन्होने दाता से यात्रा हेतु विनयपूर्वक आज्ञा चाही किन्तु दाता ने यह कह कर सभी को समझा दिया कि इस यात्रा के लिये केवल पाँच व्यक्तियों की ही आज्ञा है। राजा साहब मोरीजा ठाकुर श्री कल्याण सिंहजी सोहनलाल जी ओझा व इस लेखक को ही साथ चलने की आज्ञा मिली। श्री गप्पूलाल जी पाटनी ने चलने हेतु खूब आग्रह किया किन्तु दाता ने यह कहकर मना कर दिया, "भविष्य में जब कभी यात्रा का कार्यक्रम बनेगा तब आपका नाम पहला होगा। अन्य भक्तो को निराश होकर लौटना पडा।

कैलास मानसरोवर यात्रा के लिए सामान्यतः तीन मार्ग है –

(१) पूर्वोत्तर रेलवे के टनकपुर स्टेशन से बस द्वारा पिथौरागढ जाकर वहा से पैदल यात्रा करके लीपू दर्रा पार करके जाने वाला मार्ग।

(२) पूर्वोत्तर रेलवे के काठ गोदाम स्टेशन से बस द्वारा कपकोट जाकर वहाँ से पैदल यात्रा करके उटा जयन्ती कुठारी विंगरी घाटियों को पार करके जाने वाला मार्ग।

(३) उत्तर रेलवे के ऋषिकेश स्टेशन से बस द्वारा जोशी मठ जाकर वहाँ से पैदल यात्रा करते हुए नीति की घाटी पार करके जाने वाला मार्ग।

टनकपुर पडाव

दाता ने प्रथम मार्ग से चलने के लिए आज्ञा दी। बालानन्दजी ने भी इसे सरल और सुविधाजनक बताया। दिनांक २७–५–५४ को दिल्ली से प्रस्थान हुआ। बालानन्दजी के अतिरिक्त दातासहित पाँच व्यक्ति थे। प्रातः रवाना होकर भीषण गर्मी को सहन करते हुए व लू के झपेटे सहते हुए बरेली, पीलीभीत आदि स्थानो पर होते हुए रात्रि के नौ बजे टनकपुर पहुँच कर वहाँ की एक सराय मे विश्राम किया।

पिथौरागढ़ पड़ाव

दिनांक २८–५–५४ को प्रातः ८-३० बजे बस द्वारा असली यात्रा प्रारंभ हुई। बस छोटी थी और उसमें तीस यात्री थे। दो मील चलने के बाद ही चढ़ाई प्रारम्भ हो गई। सड़क के दोनो ओर गगनचुम्बी वृक्ष थे। जंगल घना और सुरम्य था जब कि मौसम भी मनभावन, हर्षदायक एवं सुहावना था। गत दिवस की सी गर्मी व उमस नहीं थी। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर हृदय आनन्दविभोर हो गया। धीरे धीरे चढ़ाई विकट होती गई। मार्ग संकरा और इकहरा होता गया। टनकपुर से ४५ मील की दूरी तय करके बस ११-३० बजे चम्पावत ग्राम जो ५३५० फुट की ऊँचाई पर स्थित है, वहाँ पहुँची। टनकपुर और पिथौरागढ़ से आनेवाली बसे यहीं मिलती हे। सभी बसो के आने के बाद ही दोनो ओर के मार्ग खुलते है। बस आगे बढ़ी। मार्ग मे पहाडियो पर काटे हुए छोटे छोटे खेत बडे सुहावने लग रहे थे। चावल और आलू की खेती थी। बस आगे बढ़ी। अब उतार-चढ़ाव विकट हो गये। सड़क संकरी और मोड़दार। कभी कभी तो ऐसा लगता कि बस अब गिरी अब गिरी। ऐसे समय में यात्री भय से त्रस्त होकर मन की चौकड़ी भूल जाते हैं। उनके नेत्र स्वतः ही बन्द हो जाते है। संकट के समय में अनायास ही भगवान याद आ जाते है। अतः बस के सभी यात्री कीर्तन करने लगे। जीवन की आशा की डोर छूटती नजर आने पर एकमात्र रक्षक प्रभु ही तो है। प्राकृतिक दृश्यों की मनोहरता मुग्धकारी है किन्तु जीवन का मोह और मृत्यु की आशंका इस आनन्द को किरकिरा कर देती है। शाम को पाँच बजे पिथौरागढ़ पहुँचे। यह सुन्दर स्थान टनकपुर से ९५ मील दूर उत्तर में समुद्री सतह से ६६५० फुट की ऊँचाई पर है। वहाँ पहुँचते ही सब यात्रियो ने चैन की सांस ली। मृत्यु का भय दूर हुआ, आनन्द के गीत गाये गये। हरेभरे चावलो और आलू के खेतो के मध्य विस्तृत मैदान मे स्थित पिथौरागढ़ एक सुन्दर नगर है। यहाँ के मकान लकड़ी से बने हुए है। यात्री-आवास हेतु होटल, सराय और किराये के मकान उपलब्ध है। यह वही पिथौरागढ़ है जहाँ के पहाड़ी निवासी कावड़ में गंगाजल की सीसियाँ भरकर सुदूर प्रान्तो के गाँव गाँव में ले जाकर विभिन्न यजमानो के नाम से ओंकारेश्वर महादेव का अभिषेक करते हैं। ये लोग

आर्थिक दृष्टि से गरीब और स्वभाव के सरल और भोले हैं। ये लोग कावडिया के नाम से प्रसिद्ध हैं।

रणछोड कावडिया को शिव-कृष्ण दर्शन

यहाँ का एक रणछोड नाम का कावडिया गगाजल की कावड लेकर प्रति वर्ष नान्दशा आया करता था। एकबार जब वह नान्दशा आया तब दाता की उस पर अपार कृपा हुई। सायकालीन पूजा के समय वह एक ओर खडा होकर दाता को 'हरिहर' करते हुए देखने लगा तब उसे दाता के स्वरूप में पहले साक्षात शिव और फिर कृष्ण के दर्शन हुए। आनन्दातिरेक में उसके नयनो से अश्रुधारा बहने लगी। वाणी मूक हो गई और वह श्री चरणो में प्रणिपात हो गया। दाता के पुचकारने पर भी वह बहुत देर बाद स्थिर हुआ। उस समय उसने दिव्य दर्शनों की बात बताई। वह इन दर्शनों से इतना प्रभावित हुआ कि गगाजल से भरी हुई सभी शीशियाँ उसने दाता के पादपद्मों में समर्पित कर दी। खाली कावड वहीं नोहरे में खूटी पर लटका दी और प्रसन्नचित पिथोरागढ लौट गया। इसके पश्चात् प्रति वर्ष शिवरात्रि पर दर्शनहेतु नान्दशा आता रहता। वहाँ दाता ने उसकी खबर करवाई तो ज्ञात हुआ कि इस समय वह कहीं बाहर गया हुआ है।

बालानन्दजी स्वामी यहाँ अनेक बार आ चुके थे और हरिवल्लभ नामक एक गृहस्थ उनका पूर्वपरिचित था। वे सभी को उसके मकान पर ले गये। उसने बडे प्रेम से सभी को अपने यहाँ ठहरा लिया। वह एक असाध्य रोग से पीडित था उसकी उदासी एव चिन्तातुर स्थिति को देखकर दाता को दया आई। उन्होंने बात की बात में उसके असाध्य रोग को तत्क्षण दूर कर दिया। वह गदगद होकर श्री चरणो में गिर पडा। दूसरे दिन प्रात जब अन्य व्यक्तियों को उसके स्वस्थ होने की जानकारी मिली तो अनेक लोग विभिन्न कामना लेकर आने लगे। दाता ने वहाँ से प्रस्थान की आज्ञा दे दी।

अगला पडाव मलान

अगली यात्रा पैदल की थी। सदियो से यह मार्ग भारत और तिब्बत के मध्य व्यापारमार्ग है, जो लिपू के दर्रे से होकर निकलता है। वस्तु विनिमय हेतु बकरियों या याक बैलो का प्रयोग किया जाता है। उतार चढाव और पहाडी घुमावदार पगडण्डियों पर ये पशु बोझा लेकर आसानी से चढ सकते हैं। यात्रियों को इस विकट मार्ग पर पैदल चलना ही भारी पडता है फिर सामान लेकर चलना तो अत्यन्त दुष्कर है। अत वहाँ से सामान ढोने हेतु दो कुली करने पडे। प्रात नौ बजे थे, जब वहाँ से रवाना हुए। प्रथम दिन की यात्रा ०७ मील की थी। यात्रियों और व्यापारियों के विश्राम हेतु स्थान स्थान पर चट्टिया बनी हुई है। यहाँ यह लिखना उपयुक्त होगा कि हमारे दल में केवल नीमराणा राजासाहब ही एक

ऐसे व्यक्ति थे जो कद-काठी में लम्बे-चौड़े स्थूलकाय थे, शेष सब ही सामान्य सुगठित शरीरधारी। राजा साहब को सत्संग मंडली में सप्रेम 'सम्राट' के नाम से पुकारा जाता है और आगे इस पुस्तक में जहाँ भी इनका प्रसंग आवेगा इसी नाम से सम्बोधित किया जावेगा। हम लोग दो मील भी मुश्किल से चले होंगे कि सम्राट थक गये। उनके जूते फट गये और चलना दूभर हो गया। उन्हें आगे नंगे पाँव ही चलना पड़ा जो उनके जैसे व्यक्तित्वधारी राजपुरुष के लिए अत्यन्त ही कष्टकारी था किन्तु दाता की लीला विचित्र है जिसे 'पंगु चढ़हि गिरिवर गहन' के रूप में मान्यता मिली हुई है। उसी के आसरे हम लोग आनन्द पूर्वक आगे बढ़ते रहे। मार्ग में बहते निर्मल जल के झरनों का स्वच्छ व शीतल पानी पीते हुए नौ मील चलकर विश्राम किया। दो मील और चलकर एक झरने में स्नान किया जिससे सारी थकान दूर हो गई और स्फूर्ति प्राप्त हुई। वहीं साथ में लाया भोजन करके आगे बढ़े।

दाता विभिन्न प्रसंगों द्वारा हमारे मन को बहलाते जा रहे थे फिर भी सम्राट के शरीर पर श्रम के प्रभाव से गति में शिथिलता आ गई। स्वामी बालानन्दजी और दोनों कुली इस मार्ग के अभ्यस्त होने से आगे चले गये थे। शाम होते हुए हम लोग एक पहाड़ी की चोटी पर पहुँचे। चारों ओर हरियाली से आच्छादित पहाड़ियाँ ही पहाड़ियाँ दृष्टिगोचर हो रही थीं। सुषमा और आनन्द के वशीभूत होकर दाता एक चट्टान पर विराज गये और नाथ की लीलाओं का गुणगान इस भावपूर्ण गति से करने लगे मानो आनन्द की गंगा बह रही हो। संध्या की उपासना का कार्यक्रम इसी स्थान पर सम्पन्न हुआ। हम लोग आनन्द में इतने निमग्न हो गये कि चलने की भी याद न रही। अँधेरा हुआ जब चलने की सूझी। उस दिन की मंजिल उस स्थान से तीन मील दूर थी। विकट उतार ही उतार और मार्ग के नाम पर एक संकरी पगडण्डी जो कहीं कहीं तो एक फुट से भी कम चौड़ी थी। आकाश में बादलों ने अन्धेरे को घनीभूत कर दिया। मार्ग के दोनों ओर के ऊँचे वृक्षों की छाँह से मार्ग अदृश्य हो गया। स्थिति ऐसी विषम और गंभीर हो गई कि हाथ को हाथ दिखना कठिन, तब आगे कैसे चलना हो, एक समस्या हो गई। न पीछे जाने के रहे और न आगे बढ़ने के। इस स्थान पर ठहरना खतरनाक था। हजारों फुट नीचे फिसलने का भय हतोत्साहित करने लगा। भरोसा था तो केवल 'दाता' का।

सम्राट ने अर्ज किया, "भगवन! आज तो बुरे फंसे, अब कैसे चलें? बिल्कुल दिखता भी नहीं; गिर गये तो बुरी मौत मरना पड़ेगा। यहाँ बैठने को कोई जगह नहीं। अब क्या करें?"

दाता ने फरमाया, "राजा! चलना तो पड़ेगा ही। अन्य कोई विकल्प नहीं! मारना और जिलाना तो केवल दाता के हाथ में है— वह करे सो खरी। मेरा राम आगे हो जाता है। तुम लोग एक दूसरे का हाथ पकड़ कर पीछे पीछे चलो। दाता रक्षक है; उसी का आसरा है; उसके नाम का कीर्तन करते चलो।"

प्रभु ने मार्ग दिखाया

ऐसा फरमाकर दाता ने श्रीकृष्ण चतन्य प्रभु नित्यानन्दा, हरे दाता हरे राम राधे गोविन्दा बोलना शुरु किया। हम सब भी बोलने लगे। संकट की घड़ी में भगवान के नाम के प्रति प्रेम में अनन्यता और समरसता प्राप्त हो जाती है। कीर्तन के मधुर बोलों की ध्वनि इस प्रशान्त पहाड़ी प्रदेश में चतुर्दिक अनुगुंजित होकर वायुमंडल में व्याप्त हो गई फिर भला वह प्रभु से कैसे अनसुनी रह सकती। हठात् हमने विस्मय विमुक्त होकर देखा कि मार्ग धीरे धीरे प्रकाशयुक्त हो रहा है। कुछ कालोपरान्त तो वह पगडण्डी इतनी प्रकाशित हो गई कि मार्ग में पड़ा तिनका भी सहज दिखाई देने लगा। ऐसा लग रहा था मानो प्रभु ने हमारी दर्द भरी आवाज सुन कर मार्ग पर दिव्य प्रकाश फैला दिया हो। विस्मय की एक बात तो यह थी कि प्रकाश केवल मार्ग पर ही था उसके दायें बायें क्या है वह कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। जब दाता ही त्राता हैं तो भय किसका? प्रभुचरणों में हमारा विश्वास एकनिष्ठ होकर सजीव हो उठा। हममें असीम हर्षोल्लास सचारित हुआ और हम प्रेमावेश पूर्वक कीर्तन करते हुए आगे बढ़ते रहे। तीन मील की दूरी बात की बात में पार हो गई, किन्तु हमारा दुर्भाग्य कि मानवीय सदिच्छा ने प्रभुप्रदत्त प्रकाश को सिमटा दिया। मलान से लगभग दो फर्लांग की दूरी शेष रही होगी कि उधर से एक व्यक्ति हरीकेन लेकर आता दिखाई दिया। ज्यों ही हमारी दृष्टि उस पर पड़ी वह दिव्य प्रकाश तुरन्त गायब हो गया। उस हरीकेन की रोशनी में शेष रही थोड़ी सी दूरी पार करना हमारे लिए दूभर हो गया। दाता तू ही' रटते रटते बड़ी कठिनाई से वह थोड़ी सी दूरी पार कर सके। जीवन दान मिला। दाता के कथन का रहस्य तब हमारी समझ में पूरी तरह से आया और यह सत्यानुभूति आगे की यात्रा में हमारे लिए सबल सिद्ध हुई। धन्य है ऐसे पथ प्रदर्शक दाता! और धन्य है नाम सकीर्तन की महत्ता।

इस सदर्भ में गीता तत्व मे निहित भगवान के आप्त वचनों को डिंगल भाषा में किसी कवि ने कितनी स्पष्टता से प्रकट किया है–

"तू आवे डग एक तो, मैं आऊं डग अट्ठ।
तू मुझसे करडा रहे, तो मैं भी करडा लट्ठ॥"

इसका आशय यह है कि यदि तुम मेरी ओर एक कदम बढ़ाओगे तो मैं तुम्हारी ओर आठ कदमों से आगे बढ़ूंगा किन्तु तुम मेरे प्रति कठोर रुख रखोगे तो फिर मुझे भी तुम काष्ठ की भाँति कठोरतम पाओगे।

दाता के इसी दीनदयालु और भक्तवत्सल स्वभाव की यथार्थता का सन्दर्भोध करके हम आनन्द से रोमांचित हो गये। पूरी रात्रि नींद में भी आँखों के सामने वही दिव्य प्रकाश दिखाई देता रहा। कानों में कीर्तन के सुमधुर बोल सुनाई पड़ते रहे।

अगला पड़ाव आशकोट

अगले दिन दिनांक ३०-५-५४ को प्रातः ६-३० बजे मलान से रवाना हुए। तीन मील की चढ़ाई के बाद उतार आया। आड़ू और अखरोट से लदे हुए पेड़, कलरव करते हुए खगवृन्द, चारों ओर की हरीतिमा के आवरण में आवेष्ठित शैल-मालाएँ और बीच बीच में काट छाट कर बनाये गये झरनों से सिंचित छोटे छोटे खेत संमोहित कर रहे थे। यहां के निवासी सरलचित और मधुरभाषी हैं। कुछ ही दूर चले होंगे कि सम्राट थक गये, उनके पैरों में फफोले पड़ गये। दाता मन बहलाने के लिये हंसी मजाक की बातें फरमा रहे थे जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी थकावट भूल गया। एक सुन्दर झरने पर ठहरकर स्नान, नाश्ता और विश्राम किया। ज्यों ज्यों आगे बढ़े उमस भी बढ़ती गई। बादल छा गये और वर्षा होने लगी। उन पहाड़ियों में पहली बार वर्षा का मुकाबला हुआ। सारे कपड़े गीले व पानी से सराबोर हो गये। कुछ ही देर में आशकोट पहुँच गये। अधिक थक जाने से वहीं ठहरने का निश्चय किया, यद्यपि समय दिन के दो ही बजे थे। जल्दी ही भोजन आदि से निवृत हुए। रात्रि को दाता ने अनेक दृष्टान्तों द्वारा हमें सत्संग दिया तथा साथ ही हास्यरस के चुटकुले सुना सुना कर हमें तरोताजा बना दिया।

बलकोट पड़ाव

अगले दिन प्रातः आशकोट से रवाना होकर आगे बढ़े। थोड़े से चले होंगे कि सम्राट थक गये। उनके पैर सूज गये। अतः मार्ग में से उनके लिये एक घोड़े की व्यवस्था की गई। उस दिन अमावस्या थी। आज के दिन ही सावित्री ने अपने पति सत्यवान को यम-पाश से मुक्त करवाया था। इस कथा को सविस्तर बताते हुए तथा सावित्री की महिमा का वर्णन करते हुए दाता ने बताया कि सच्चे प्रेम के सामने किसी भी प्रकार की बाधा टिक नहीं सकती। बन्दा जब दीन स्वर में आर्त्तनाद करता है तो प्रभु को निराकार से साकार बनकर आश्रित भक्त का संकटमोचन करना ही पड़ता है। उसे अपने भक्त के सत की रक्षा करनी ही पड़ती है। भगवान् के भक्त के सत के सन्मुख कोई भी शक्ति नहीं टिक सकती फिर बेचारे यमराज की तो गिनती ही क्या है। पतिव्रता सतियों में सावित्री का महत्वपूर्ण स्थान है।

चार मील चल लेने के बाद गोरी गंगा मिली। नदी का प्रवाहवेग अधिक था। इसे पार करने को लकड़ी के लट्ठों का पुल बना हुआ था। इस नदी में सभी ने स्नान किया। एक मील चलने पर त्रिवेणी नामक स्थान आया जहाँ काली और गोरी गंगा का संगम होता है। जैसा नाम वैसा गुण, काली गंगा का पानी काला व गोरी गंगा का पानी गोरा अर्थात् श्वेत।

सम्राट की मृत्युपाश से रक्षा

हम लोग काली गंगा के तट तट आगे बढ़े। छः मील के बाद विकट चढ़ाई है। आगे आगे कुली चल रहे थे। उनके पीछे घोड़े पर सम्राट थे। घोड़े के पीछे

बालानन्दजी, उनके पीछे दाता और दाता के पीछे एक एक कर हम तीनो चल रहे थे। पहाडी के बीचों बीच तग और सकरा मार्ग, एक ओर ऊंची चोटी तो दूसरी ओर सीधा ढलान। दुर्भाग्यवश कोई फिसल पड़े तो सीधा सैकड़ों फुट नीचे काली गंगा में जा गिरे। अतः हम एक एक कदम साथ-साथ कर रख रहे थे। घोडा भी बहुत सभल सभल कर चल रहा था। अचानक बालानन्द जी को क्या सूझी कि उन्होंने घोड़े के पुठ्ठो पर लकड़ी दे मारी। उसका अगला एक पैर उठा ही था कि यह मार पडी। घोडा चौंका। उसके अगले पैर के नीचे का पत्थर खिसक कर नीचे जा गिरा। उसके तीनो पैर मार्ग से हट कर अधर में झूल गये और स्थिति ऐसी होगई कि सैकड़ों फुट नीचे गहरी खाई में नीचे की ओर लुढकने को हो गया। इसके साथ ही सम्राट के मुख से एक भयकर दर्दभरी चीख निकली - दा आ अऽऽऽ मृत्यु भय से हमारे मुह से भी हठात आह की आवाज निकली और आँखें स्वतः ही बन्द हो गई। तत्क्षण ही जब दाता ने सम्राट को यों मृत्युमुख में प्रवेश करते देखा तो उनके श्रीमुख से अनायास ही दाता तू हा वाक्य निकल पड़ा और उन्होंने भी एक हाथ आंखो पर रखकर नेत्र मूद लिए। यह सब अकल्पित घटना तेजी से घटी और उससे भी अधिक त्वरित गति से प्रभु ने उनको प्राणरक्षा करते हुए उन्हें घोड़े सहित हाथ पर उठाकर बाहर निकाल दिया। आँखें खुलने पर हमने घोडे को ओर सम्राट को उसकी पीठपर बैठे हुए थर थर कापते हुए रास्ते में खडा पाया। पूछने पर उन्होंने जो हाल बताया वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है —' लकड़ी के लगते ही घोडा चौंककर लडखडाते हुए पहाडी ढलान की खाई में पीठ के एक ओर के भाग की तरफ से जा गिरा और तत्क्षण मृत्यु के आभासमात्र से ही मेरे मुख से 'दाता बचाओ' की चीख निकल पडी। मगर भय के कारण मैं यह पूरा वाक्य नहीं बोल सका। केवल दाता के नाम का पहला अक्षर 'दा अ अऽऽऽ ही निकल सका और मैं सैकड़ों फुट नीची खाई में घोड़े सहित गिरने लगा। तभी नीचे से 'दाता' विशाल रूप धारे प्रकट हुए और उन्होने मुझे घोड़े सहित एक हाथ पर ऊपर उठाकर सहज ही बाहर निकाल कर मार्ग पर खड़ा कर दिया। मेरी रक्षा करनेवाले सद्‌गुरु समर्थ दाता का रूप यही था जो आप लोग सामने देख रहे है किन्तु वे कद-काठी में अधिक लम्बे-चौड़े तेजस्वी और विशाल थे। बाहर निकाल देने पर भी मैं मृत्यु-भय से कांप रहा था और मेरी रक्षा हो जाने के कारण हर्षवेग में मेरे नेत्रो से जलधारा बह रही थी। इस प्रकार दाता ने मेरी मृत्यु से रक्षा करके नवजीवन प्रदान किया है।

यह सुनकर और देखकर हमारी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रही। गद्‌गद कठ और हर्षपूर्वक हम बारबार दाता की जयजयकार करने लगे। दाता ने आज प्रातः काल मार्ग में सावित्री-सत्यवान की कथा क्यों सुनाई उसका लीला-रहस्य हम अब समझ पाये।

हे परमेश्वर ! तू मनुष्य की देह में बैठकर कैसी कैसी लीला करता है ?

"मानुषं देहमास्थाय छन्नस्ते परमेश्वर" वसु गुप्ताचार्य

तीन दिन की यात्रा मे ही यह दूसरा अवसर था जब भगवान ने हमारी मृत्यु-मुख से रक्षा की। कितने समर्थ रक्षक है भगवान ! किन्तु मानव मन के स्वभाव की अधोगति भी विचित्र है कि भगवान तो पग पग पर हमारी रक्षा करते है, किन्तु फिर भी संकट के हटते ही हम उसको भूल जाते हैं। माया-मोह के आगोष मे नन्द होकर पुनः वासनालिप्त हो जाते है। इससे अधिक हमारी निरी मूर्खता ओर क्या हो सकती है ?

इसके बाद दाता दयाल की आज्ञा से सम्राट को घोडे से नीचे उतार दिया गया। तत्पश्चात् इस यात्रा में वे घोडे पर नही बैठे। प्रभु का गुणगान करते हुए बलकोट पहुँच कर रात्रि विश्राम सरकारी डाकबंगले मे किया गया। अगले दिन प्रातः दैनिक कार्यो से निपटने हेतु मै एक झाड़ी की ओट मे बैठा। अचानक बिच्छू के काटने जैसी भयंकर जलन और पीड़ा हुई। बिच्छू की आशंका से झाड़ी को देखने लगा तो दर्द और जलन असह्य हो गई। मै दौड़कर दाता के पास पहुँचा और वस्तुस्थिति अर्ज की। वे मुस्करा दिये। पास ही मे बैठे क्षेत्रीय-वृद्ध सज्जन ने कहा, "बिच्छू नही है। तुमने झाड़ी को छू लिया होगा। उसके छू जाने पर शरीर मे बिच्छू के समान जहर व्याप्त हो जाता है। डरने की कोई बात नहीं है। पास ही मे दूसरी वनस्पति है। उसके पत्तो को मसलकर उसका रस लगाने से यह जहर तत्काल उतर जाता है।"

उस वृद्ध के बताये हुए उपचार से पीड़ा तुरन्त समाप्त हो गई। प्रकृति देवी ने कैसी कैसी निराली परस्पर विरोधी शक्ति-सम्पन्न वनस्पतियां अपनी गोद मे पाल रखी है। हमारे देश के प्राचीन आयुर्वेदविशेषज्ञो को इन जड़ी-बूटियों की उचित पहचान थी। उसके बलपर ही आयुर्वेद शास्त्र को पंचम वेद कहा गया है। किन्तु खेद है कि आज की पीढ़ी के धन्वन्तरिउपासक इस ज्ञान का आलस्य और प्रमादवश उचित लाभ नहीं उठाते हैं।

धारचूला पड़ाव

बलकोट से प्रस्थान के बाद दो मील चलने पर काली पहुँचे। यह चित्ताकर्षक स्थान ऊँची-ऊँची पहाड़ियों के मध्य स्थित है। यहाँ के मनोरम दृश्य का आनन्द लेते हुए छः मील चलकर एक निर्मल और शीतल जल के झरनेपर स्नान किया। वहां से धारचूला थोड़ी ही दूर है। मार्ग भी सीधा है। यहाँ हमें एक गौरांग विदेशी नवयुवक मिला जो वहाँ धर्मप्रचार हेतु आया हुआ था। पास ही एक अमेरिकन कैम्प लगा था जिसमे ऐसे कई प्रचारक थे। ऐसे लोग वहाँ के अशिक्षित, गरीब, भोले भाले वासियों को बहला-फुसला कर उनकी दीनता, दरिद्रता का अनुचित लाभ उठाकर धर्मपरिवर्तन करा कर उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करने हेतु विवश कर देते है, और वे प्रचारक यही प्रयत्न वहाँ कर रहे थे। हमारी सरकार का

यह कैसा धर्मनिरपेक्ष भाव है ? जिस देश में अनेक महापुरुष जन्मे है जो देश विद्या कला साहित्य धर्म और सांस्कृतिक दृष्टि से विश्वगुरु रहा है, जहां के ऋषि-मुनियों ने मानवधर्म के दसों ही लक्षणों पर समान बल दिया है –

"धर्मो रक्षति रक्षित ।"

धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ 'मनुस्मृति

जहां के जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण ने केवल स्वधर्म का पालन करने हेतु ही उपदेश दिया है –

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात ।

स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ॥" श्रीमद भगवत गीता

वहीं के सरललित सात्विक वृत्तिधारी ग्रामीण नागरिकों को लोभ देकर उन्हें विधर्मी बनाया जा रहा है इससे अधिक दयनीय कष्टदायक विडम्बना और क्या हो सकती है। हिन्दू समाज संगठन को इस ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

यह शोचनीय स्थिति देखकर दाता ने फरमाया 'धर्म ही आत्मा का विज्ञान है। ये विदेशी धर्मप्रचारक मिशनरी धर्म के मूल स्वरूप का 'क-ख-ग' भी नहीं जानते है। फिर भी स्वार्थमय संकुचित राजनैतिक क्षुद्र दृष्टिकोण के वशीभूत अपने मतावलम्बियों की संख्या बढाने की दुर्दमनीय लालसा के कारण सम्पन्नता और उदारता के आडम्बर की आड लेकर इस प्रकार धर्मपरिवर्तन कराने का कुत्सित ढोंगी का कार्य करते हुए अपने प्रभाव क्षेत्र का जाल फैलाने में लज्जित नही होते। वे यह भूल जाते है कि सच्चा धर्म आचार-विचार, व्यवहार और नैतिकता से सम्बद्ध होता है जब कि उनकी आँखो पर केवल राजनैतिक विस्तार-वाद के रंग का चश्मा चढा हुआ है। उन्हें मेरे दाता के दरबार के छोटे से छोटे धर्मदूत श्री विवेकानन्द के शब्दों को सदा स्मरण रखना चाहिये जो उन्होंने अमेरिका की धरती पर कहे है कि मैं यहां उस धर्म का उपदेश करने आया हूँ जिसके बौद्ध धर्म और ईसाईमत विद्रोही बालक है।" (I have come to preach that Religion of which Buddhism & Christianity are rebel children)
–Swami Vivekanand

साथ ही उन्हें प्रसिद्ध जर्मन विद्वान दार्शनिक मैक्समूलर का यह कथन भी नहीं भूलना चाहिये- जहां पाश्चात्य दर्शन समाप्त होता है वहाँ से भारतीय दर्शन का आरंभ होता है।'

(The Indian philosophy begins where the western philosophy ends) –Maxmular

समापन करते हुए दाता ने कहा 'पर्वत के नीचे खडे होकर देखने पर ही व्यक्ति अपने बौनेपन का बोध कर सकता है। जब तक यह नहीं जान लेता तब

तक वह अपने आप को महत्वशाली समझने का केवल दम्भ ही पालता है। मनुष्य को सदा वही व्यवहार करना चाहिए जिसकी वह दूसरो से अपने प्रति अपेक्षा रखता है। यदि वह चाहता है कि कोई उसकी निन्दा न करे तो उसे भी इसी धर्म का आचरण करना सीखना होगा। यही सच्ची मानवता है और मानवता के पवित्र कर्त्तव्यो का निर्वाह ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। क्यो कि मनुष्य ही सर्वोपरि सत्य है, उससे ऊपर कुछ नही।"

"सब ऊपरे मानुपरे सत्य भाई, ता ऊपर किछूनाई।"

बंगाली भक्त श्री चन्दीदास यही भाव उर्दू शायरी मे इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :-

"मजहब की बिरादरी से तंग हूँ मैं,
इन्सान की बिरादरी कहाँ है या रब।" जोश मलीहाबादी

खेला पड़ाव

धारचूला से कुलियो का बदलाव होता है। हमने भी यह प्रक्रिया पूरी की। दिनांक ३-६-५४ को प्रातः प्रस्थान किया। दो मील चलने पर 'तपोवन' नामक स्थान आया। अधिकाश भारतीय ऋषि-मुनियो का यही तपोवन है। मार्ग मे स्वामी प्रणवानन्दजी के दर्शन हुए। सुगठित शरीर, प्रसन्न मुद्रा, हाथ मे डण्डा, शरीर पर गेरुआ वस्त्र, ऐसे आकर्षक-सोम्य व्यक्तित्वधारी है वे महापुरुष। हमने उन्हे सादर प्रणाम किया। 'ॐ नमो नारायणाय' के परस्पर सम्बोधन के पश्चात् दाता और उनके बीच कुछ बातचीत हुई। वे धारचूला कुछ कार्य हेतु जाने की जल्दी मे थे अतः विशेष सत्संग का अवसर नही मिला। तपोवन के चारो ओर का वातावरण अत्यधिक सुन्दर और आकर्षक था। सम्राट से न रहा गया। उन्होने वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य के कुछ अंशो को अपने कैमरे मे समाहित कर लिया। काली गंगा के किनारे किनारे चलने पर तीन मील की चढ़ाई के बाद केला गाँव आया। आगे खेला नामक स्थान पर रात्रि विश्राम हुआ।

अगला पड़ाव सूसा

अगले दिन वहाँ से चले। हल्की वर्षा हो जाने के कारण मोसम सुहावना था। हम ऊँचाई पर थे और बादल नीचे बरसते दिखाई दे रहे थे। सुन्दर और मनमोहक दृश्य को देखते हुए हम लोग आगे बढे। कुछ ही दूर चलने पर एक ७० फुट चौड़ा नाला आया। वह बहुत ही नीचा था। उसे पार करने के लिए तीन लम्बे लकड़ी के लट्ठो का एक पुल था जो बीच बीच मे रस्सो से बँधा हुआ था। यात्रियो की सुविधा हेतु दोनो ओर रस्सियाँ बँधी थी। उस समय उसका प्रवाह इतना वेगवान था कि उसकी फुहारे बहुत ऊपर स्थित पुलिया को गीला कर रही थीं। बिना रस्सियो को पकड़े उसका पार करना बहुत कठिन है क्यो कि



हिमाच्छादित पर्वतोपर

पुलिया के नीचे झाकते ही यात्री को चक्कर आने लगते है। दाता की कृपा से हमने हसते हसते पुलिया पार की। उसके बाद चार मील की विकट सीधी चढाई थी जिसे पार करने में हमारे लिए पगुम लघयते गिरिम' वाली कहावत सत्य चरितार्थ हुई। दाता की असीम कृपा के बलपर ही हम निर्बल व्यक्ति उस चढाई को पार कर सके अन्यथा हमारे पैर तो मन मन के हो गये थे। चढाई के बाद दो मील का उतार था जिसे आसानी से पार किया गया। आगे की चढाई पार करते ही हमें सुदूर उत्तर मे श्वेत नीलवर्णी हिमाच्छादित शैल शृगो पर बर्फ ही बर्फ चमकता हुआ दिखाई देने लगा। नयनाभिराम दृश्य ने हमारे श्रम को हर लिया। पास ही 'सूसा' गाँव था जहाँ हमने रात्रि-विश्राम किया। वहा से तीन मील दूर श्रीनारायण स्वामी का सुन्दर आश्रम है। उस क्षेत्र में आश्रम की बडी मान्यता है। आश्रम में उच्चस्तरीय विद्यालय का होना भी बताया गया। यात्रा के दौरान रात्रि में सोने के पूर्व हम लोग कीर्तन किया करते थे। इस कार्यक्रम का निर्वाह यात्रा के प्रथम दिन से ही किया जा रहा था।

जिपती पडाव

अगले दिन चले तो बादल कभी हमारे ऊपर तो कभी बीच में और कभी नीचे चलते। उनसे आँखमिचौनी खेलते हुए हम लोग सुरेरा होकर रानो पहुँचे। यह स्थान गोरख पहाड के पास है। सिद्ध महापुरुष गुरु गोरक्षनाथजी ने वहा वर्षों तक तपस्या की है। उस पर्वत के दर्शन कर दाता भाव विभोर होकर महानन्द अवस्था में आत्ममग्न हो गये। पुन बाह्यावस्था प्राप्त होने पर उनकी महिमा का गुण-गान करने लगे।

श्री गोरक्षनाथ महिमा

दाता ने फरमाया, "ये महापुरुष आदि-अनादि अनन्त पुरुष है और है अजर-अमर-अविनाशी। इनका जन्म कहाँ और कब हुआ यह कोई नहीं जानता। चारो ही युग के कालखण्डों में ये वर्तमान रहे है। असीम शक्तिसम्पन्न इन महापुरुष को ऐतिहासिक कालसीमा मे नहीं बाधा जा सकता। ये गुरुओ के भी परम गुरु स्वय साक्षात आदि पुरुष हैं। नाथ सम्प्रदाय में इन्हें ही श्रीनाथ का प्रमुख पद प्राप्त है। सम्पूर्ण सन्यास आश्रम के ये ही प्रथम पूज्य गुरु है। ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवता इनकी इच्छा से ही आविर्भूत होते है। नादरुपा सृष्टि के ये प्रवर्तक है और शिव शक्ति दोनों ही रूप में अभिन्न है। ये ही परम योगिराज-महापुरुष धर्म के नियन्ता और रक्षक है। कामविकाररहित, शुद्ध निष्कलक और निरजन पुरुष एकमात्र ये ही हुए हैं।'

'जितनी भी शक्ति ब्रह्माण्ड में व्यापक है वह सभी इस कायारूपी पिण्ड में स्थित है। पिण्ड ही ब्रह्माण्ड का सक्षिप्त सरकरण है। इस असीम शक्तिसम्पन्नता का परिचय इन्होंने स्वय के आचरण द्वारा लोक में उजागर किया है। जो ब्रह्म

को जानता है वह ब्रह्म ही होता है :- "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।" श्रुति के इस महावाक्य का साक्षात्कार इन्होंने केवल कहकर ही नही करके भी दिखाया है। वेदान्त, ब्रह्मज्ञान और आत्मविद्या किसी शास्त्र द्वारा नही समझाई जा सकती। यह अनुभवजन्य है जो गुरुकृपा-संकेत बल से ही प्राप्त होती है। ये प्रणव मंत्र ओंकार और एकाक्षर ब्रह्म के ज्ञाता और प्रचारक हुए है।"

"इनके समान परमसिद्ध योगी, ज्ञानी और गुरु-भक्त अन्य कोई नहीं हुआ है। ऋद्धि-सिद्धि इनके चरण चूमती है। तन्त्र-मंत्र-यंत्र से सर्वोपरि शक्ति-सम्पन्न इनका नाम है। इनकी लीला का रहस्य कोई नही जान सकता है। किसी ऐसे कार्य का जिसका भेद अज्ञात है उसे लोक मे 'गोरखधंधा' के नाम से जानते है। ये महापुरुष हाथ मे एक दण्ड धारण करते है जिसमे संसार का कोई भी कार्य सम्पन्न करने की असीम शक्ति निहित है, अतएव लोक मे इसको 'गोरख दण्डा' से पुकारते है। इनके समान पर-हितकातर, चिन्तक, उद्धारक और गरीबो का हितकारी और कोई नही हुआ है। ये त्रिभुवनपति है। संकल्पमात्र से ही अनेक सृष्टियो की रचना करने मे ये समर्थ है। इन्होने अनेक नाम और रूप धारण कर अलौकिक लीलाये की है। वे अवर्णनीय है। महान पुरुष कभी मरते नही है। वे हर समय हर स्थान पर रहते है परन्तु सामान्य जन उनकी विशेष कृपा बिना उन्हे पहचान नहीं सकते। वे तो स्वेच्छा से चोला बदलते रहते है। लोक-भाषा मे लोकहित मे सत्याचरण और शील पर विशेष बल दिया है। यथाः -

"काछ का जती मुख का सती। सो सतपुरुष उत्तमो कथी ।।"

लंगोट का पक्का और वचन का सच्चा मनुष्य ही सही अर्थ मे उत्तमपुरुष कहलाने का अधिकारी है।

"सहज शील का धरे शरीर। सो गिरती गंगा का नीर ।।"

शील अर्थात् आचरण की पवित्रता ही प्रधान वस्तु है और जो उसे शरीर मे धारण करता है वही मनुष्य गंगा जल की भाँति स्वच्छ, निर्मल व परमपवित्र है।

"इसी प्रभावी युग संदेश की आज सर्वोपरि आवश्यकता है और इसे ही आचरण मे धारण करने से मानवता पतन से बच सकती है। इन्होने शुद्ध ब्रह्म-वेत्तागुरु की परम आवश्यकता प्रतिपादित की है। निगुरे का इनके मत मे कोई स्थान और मूल्य नहीं है।"

फिर स्वयं के जीवन सम्बन्धी हमारे हितार्थ इस प्रकार का वचन कहे, "मेरे राम के लिए प्राणो के प्राण, जीवनाधार केवल सद्गुरु ही समर्थ है। उन जैसा हितुविश्व मे अन्य कोई है ही नही। उनमे और उनके कथन-वचन, आदेशो मे अगाध श्रद्धा और अडिग दृढ़विश्वासपूर्वक भक्ति-भाव रखने पर ही जीवन और जगत् की रहस्यात्मक गति समझ मे आती है। शिष्य को तो निःसंकोच होकर बिना किसी शुभ-अशुभ का विचार किये आदेश पालन करने को ही प्रस्तुत रहना

चाहिये। गुरु आत्मविद्या और ज्ञान के अनन्त भण्डार है। वे धर्म के साकार स्वरूप हैं। उनकी सहज कृपा-कटाक्ष से मायाबद्ध जीव जडता को त्याग कर आत्मस्वरूप की नित्यता का बोध प्राप्त करता है। फिर आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार होता है। दोनो घुल-मिल जाते है और अभिन्न एकाकार हो जाता है। द्वैत-अद्वैत का भेद समाप्त हो जाता है। वेद-वेदान्त और धर्मशास्त्रों के गूढ रहस्य केवल सद्गुरु की कृपा से ही समझ में आते हैं अन्यथा उनमें कहीं कहीं इतनी गूढ और परस्पर विरोधी बातें है कि साधक की मति भ्रमित होकर वह दुविधा में पड जाता है। सच्चे प्रेम ओर निःस्वार्थभाव से गुरु की शरण में जाकर सेवारत रहना ही कल्याणकारी मार्ग है। सेवा से प्रसन्न होकर सद्गुरु शिष्य को निजस्वरूप स्थिर करके अभयदान देकर उसे गुरुपद प्रदान कर देते है। गुरु ही साक्षात हरि है नारायण है और हैं रमते राम। काष्ठ अग्नि का सम्पर्क-सान्निध्य प्राप्त करके स्वय अग्नि हो जाता है। जिस प्रकार तिल में तेल पुष्प मे गन्ध दूध में घी गुड में मिठास सर्वत्र व्यापक है उसी प्रकार शिष्य के शरीर में बाहर और भीतर सर्वत्र वही सद्गुरु समर्थ नित्य वास करता है। इस तत्वज्ञान की निरन्तर अनुभूति ही सच्चिदानन्द की प्राप्ति है। राई की ओट में पर्वत छिपा हुआ है। उनकी अनन्य शरण ग्रहण करने पर ही यह ओट हटती है और तभी ब्रह्मप्रकाश प्रकट होकर दिव्य निजानन्द में परिणत होता है। सद्गुरु ही सच्चे आनन्द और मोक्ष के दाता हैं।

इसी प्रसग में दाता ने यह कथा कही — 'एक बार एक शेर का छोटा बच्चा बिछुड गया। एक गाँव में भेडों के झुण्ड में जा मिला। उनके साथ रहने से उसने भेडवत आचरण शुरू कर दिया। म्या-म्या उच्चारण करता। कुछ समय बाद झुण्ड के साथ वह पानी पीने तालाब पर गया। शान्त और निर्मल पानी में उसने अपना और भेडों का प्रतिबिम्ब देखा तो उसे अपने स्वरूप का अनुभव हुआ। ऐसा ज्ञात होते ही वह दहाडने लगा। उसके दहाडते ही भेडो में हडबडी मच गई।

'शिव ही सिंह शावक है। अविद्या-माया के ससर्ग-दोष के कारण वह जडता को प्राप्त हो गया है और अपने स्वरूप को भूल बैठने से भेड बन गया। चिरमति के कारण वह माया के वशीभूत हो जगत में पशुवत भेड चाल का अनुकरण कर भटक रहा है। गुरुकृपा के सयोग से उसका अस्थिर मनरूपी जल तरग रहित हो स्थिर होता है। इस एकाग्रता में उसे मन के दर्पण में अपने स्वरूप की परछाई दिखाई देती है। उसे भान होता है कि वह बद्ध जड-जीव नहीं साक्षात शिवस्वरूप है। इस स्वरूपनित्यता का बोध करके पुन वही बन जाता है जो पहले था।'

"शिवो दाता शिवो भोक्ता शिव सर्वमिद जगत्।
शिवो, यजति यज्ञश्च य शिव सोऽहमेव हि॥'

शिव दाता है। वही शिव भोग भोगनेवाला भी है, और जगत् की समस्त वस्तुओ का कर्ता-धर्ता, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे सब कुछ शिव ही शिव है। यह जान कर स्वयं भी शिव बन जाता है।

"जे नर माया ही माया रटे नित तो मन होता है ताहि का रूपा।
सुन्दर जे नर ब्रह्म विचारत ते नर होत है ब्रह्मस्वरूपा ॥"

'महात्मा सुन्दरदास जी'

इस उद्बोधन से हमारे मन का भ्रम और संशय समाप्त हुआ और उनके पादपद्मो मे अनन्य शरणागतिभाव मे अभिवृद्धि हुई। इस त्रिपती के पड़ाव मे यह प्रज्ञान प्राप्त हुआ। स्थानविशेष और क्षणविशेष का साधनापथ मे कितना महत्व है यह रहस्य हमें भगवान वेदव्यास और गोरक्षनाथ की इस पावन तपोभूमि मे गुरु-कृपा से हृदयंगम हुआ। धन्य है यह पावन भूमि जिसने हमारे मन को एकाग्र कर आनन्द का अनन्त खजाना खोल दिया।

महर्षि वेदव्यास महिमा

दाता को भगवान वेदव्यास जी की भी याद हो आयी। उनकी महिमा का वखान इस प्रकार करने लगे, "भारतीय साहित्य और संस्कृति का ऐसा उपासक और रक्षक और कोई नही हुआ है। वेदो को उन्होने पहलीवार क्रमबद्ध किया। उनका रचा हुआ महाभारत महाकाव्य समग्र भारतीय संस्कृति का महाप्राण है। धर्म, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र और व्यक्तिगत आचार-विचार की तो मानो अमूल्य निधि ही है। विश्व साहित्य मे इसकी समता का अन्य ग्रन्थ नहीं है। आध्यात्म विद्या की अनन्त खान-श्रीमद्भागवतगीता जो आज भी विश्व के दर्शन-शास्त्र-प्रेमी, कोटि कोटि जन-मन का कण्ठहार बनी हुई है, इन्ही महापुरुष की देन है। श्रीमद्भागवत और अष्टादश पुराणो की रचना करके इन्होने मेरे दाता के आदि-अनादि स्वरूप, नाम और लीला का सविस्तार वर्णन किया है। इन सब के लिए भारत ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व इनका चिर ऋणी रहेगा। इन्हीं महापुरुष की सन्तान हुए है जन्मजात, परमत्यागी, ज्ञानी, भागवतप्रेमी शुकदेवमुनि महाराज जिन्होने राजा परीक्षित को भागवत धर्म का उपदेश देकर मृत्युभय से मुक्त किया।"

तत्पश्चात् माता कुन्ती और पाण्डवो की व्यथा के स्मरण से ही दाता के नयनो मे अश्रुकण छलक पड़े। उन्होने बताया, "यह सिद्ध स्थल ही कदलीवन है जहाँ जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होकर चिरंजीव महापुरुष वास करते है। यथा :–

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमाँश्च विभीषणः।
परशुरामः कृपाचार्यः सप्तैते चिरजीविनः ॥



नालेपर विश्राम करते हुए दाता व अन्य लोग

परमानन्द की ऐसी दिव्यनिधि लुटाकर दाता ने हमें रोमांचित और कृतार्थ कर दिया। हमें स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं थी कि प्रभु हमें ऐसे आनन्ददायक पावन तपोवन की यात्रा अपने साथ कराते हुए हम इतना सौभाग्यशाली बनाने की ऐसी कृपा करेंगे। हमारे लिए तो यह एक अनहोनी अविस्मरणीय घटना सिद्ध हुई।

गोरख पवस से आगे पांच मील की चढ़ाई पारकर जिपती पहुँच कर विश्राम किया। यहाँ उपयुक्त स्थान न मिलने से विश्राम में कठिनाई हुई। ज्यों त्यों रात्रि व्यतीत हुई। कष्ट सहने में भी एक प्रकार की मिठास है और फिर हमारे साथ तो दाता थे तो फिर हमारे आनन्द की क्या कल्पना की जा सकती थी।

मालपा पड़ाव

प्रस्थान के समय वर्षा शुरु हो गई अतः कुछ आगे जाकर रुकना ही पड़ा। विकट चढ़ाई सामने थी और एक लम्बी पहाड़ी के मध्य तंग रास्ते पर चलते हुए हम पुनः काली गंगा के किनारे पहुँचे। वह सैंकड़ो फुट नीचे बह रही थी। पहाड़ी से नीचे उतरने पर एक छोटी सी नदी को पार करना पड़ा। अब पहाड़ियों के सिरे बर्फ से ढके दिखाई देने लगे। तीन मील आगे चलने पर एक अन्य नाला आया। उतार-चढ़ाव से सभी लोग थककर चूर हो गये। हम सभी को थके हुए देख दाता वहीं रुक गये और स्नान, लटका (पूजा) और वस्त्रधारण करने में आवश्यकता से अधिक समय लगाया, जिससे कि हम अधिक विश्राम कर सकें। उस समय हमें रामवन गमन की वह घटना याद हो आयी जब भगवान राम माँ जानकी को थकी हुई देख कर पांवो में से कांटा निकालने में अधिक समय लगाते हैं। हमारे प्रति दाता की ऐसी करुणा देखकर हम श्रद्धानत हो गये। आगे भी मार्ग दुर्गम था। चलते समय हमारे शरीर कांपने लगे। नहीं चाहने पर भी सैकड़ों फुट नीची बहने वाली नदी एवं खाइयों पर दृष्टि पड़ जाती तो हमें चक्कर आने लगते। दाता के साथ होने और उनके द्वारा बारबार साहस बढ़ाने से ही हम आगे बढ़ पाते थे। पग पग पर गिरने का भय हमें आतंकित कर रहा था। दाता की दया से ही हमने उसे पार किया। उनकी कृपा से ही उस दिन की यात्रा पूरी कर हम लोग मालपा पहुँचे।

मालपा बड़ा आकर्षक और सुन्दर गांव है। काश! हममें से कोई कवि होता तो इस स्थान की अनुपम शोभा को छन्दबद्ध करता। यहाँ हम एक मोटिया के खाली मकान पर ठहरे। रात्रि में भाई सोहनलाल जी ज्वर से ग्रस्त हो गये। उनका तापमान १०६ तक पहुँच गया। वे घबरा कर जोर जोर से कराहने लगे। उनकी वेदना देखकर दाता भी नहीं सो सके। उनकी दया का स्रोत फूट पड़ा। करुणा विगलित होकर ओझा जी का ज्वर स्वयं दाता ने ले लिया। भगवान अपने आश्रित बन्दों के लिए क्या क्या कष्ट नहीं उठाते। यह जानकर हृदय में विश्वास

दृढ़ हुआ और उल्लास बढ़ा किन्तु दाता को ज्वर हो जाने से चिन्ता बढ़ी। वह विकराल रात्रि बड़ी कठिनाई से व्यतीत हुई।

बून्दी पड़ाव

मालपा से दिनाक ७–६–५४ को प्रात: काल चलकर आठ मील दूर स्थित बून्दी या बुड्डी गाँव मे पहुँच कर विश्राम हुआ। पहाड़ियो मे होता हुआ टेढ़ा-मेढ़ा इतना संकरा मार्ग तो पहले कभी नही आया। पहाड़ी की चोटी सीधी आकाश को छू रही थी। ढाल भी एक दम सीधा और सैकड़ो फुट नीचे वेगवती काली गंगा। उस दिन सुरेखा का एक धनी व्यापारी चमनसिंह पत्नी सहित हमारे साथ यात्रा कर रहा था। उसका व्यापारिक सामान याँक वैलो पर लदा हुआ था और अन्य समस्त वस्त्राभूषण व नगद रुपया हृष्टपुष्ट घोड़े की पीठ पर था। मार्ग मे अचानक घोड़े का पैर फिसला और वह संभल नही पाया। सामान सहित सीधा काली गंगा मे जा गिरा। यह अच्छा हुआ की भाग्य से उनकी पत्नी उस समय घोड़े की पीठ पर नही थी। इस अप्रत्याशित हानि से पति पत्नी बहुत रोये-चिल्लाये। उनका रोना देखा नही जा सका। दाता ने हर प्रकार से सान्त्वना देने और आश्वस्त करने का प्रयत्न किया किन्तु वाह रे लोभ-वृत्ति! तेरा गुरु तो धन ही है। तुझे तो परिग्रह से ही तृप्ति होती है। फिर भला ये अमूल्य बोल चाहे साक्षात् भगवान् के ही हो, तुझे कैसे शान्त कर सकते है? तू तो मात्र नगद नारायण का ही रिश्ता मानती है। तुझे इन अमृत वचनो से क्या लेना देना। तेरे लिये तो ये 'भैंस के आगे बीन बजाओ, भैंस खड़ी पगुराय' जैसे थोथे और निरर्थक वाक्य मात्र ही तो है। इस दुर्घटना से हमे भी आपवीती सम्राट वाली घटना का स्मरण हो आया जिससे हम सिहर गये। दो तीन दिन बाद सेठ के पुनः मिलने पर मालूम हुआ कि खूब ढूंढने पर भी कुछ हाथ नही लगा।

मनुष्य कामनी-कांचन में फँस कर अपने आप को कितना दुःखी कर देता है, यह उन दोनो के रोने और कलपने से स्पष्ट होता है। बेचारे अकेले चमनसिंह का ही क्या दोष है, सारा जगत् ही इसी मार्ग का पथिक है। स्वार्थ के वशीभूत होकर पता नही मनुष्य क्या क्या अपराध कर बैठता है। सासारिक जीव का यही स्वभाव है। वह माया मोह के पाश मे इतना बंधा है कि अवसर मिलने पर भी उससे छुटकारा प्राप्त करना नही चाहता।

दाता ने इस घटना पर यो फरमाया, "मेरे दाता की सद्गुरु रूप मे कृपा होने पर ही जीव होश मे आता है अन्यथा सब ही 'तव मायावश फिरहिं भुलाने' की भूल भुलैया मे भ्रमवश भटक रहे है। उनमे उससे प्राप्त करने की चाह ही नहीं होती। वे तो गन्दी नाली के कीड़ो की भाँति उसी गन्दगी मे बुलबुलाहट करते रहने मे ही अपनी शान समझते है। उन्हे दाख छुहारा जैसे मधुर और सुस्वाद पूर्ण फलो से क्या लेना देना? विषयभोग-वासना में लिप्त और आसक्त जन ही देव को दोष देते है।"



गरभ्याग के पूर्व एक हरेभरे स्थल पर दाता अपने चार सेवकों के साथ

फिर दाता ने भक्त सूरदास का यह पद गाकर सुनाया –

"उधो मन माने की बात,

दाख छुहारा छाडि अमृत फल विषकीडा विष खात।"

मोहमाया के आवरण से छुटकारे का एकमात्र साधन श्री गुरुचरणो मे पूर्ण रूपेण सप्रेम समर्पित होना ही है। ऐसा होने पर ही विरमृति की यह ग्रन्थि खुलता है। दाता ने कचन त्याग के सम्बन्ध म परमहस देव श्री रामकृष्ण की साधना का एक दृष्टात समझाया। वे महापुरुष गगा के किनारे बैठकर कचन माटी माटी-कचन कहते हुए एक हाथ से कचन और दूसरे हाथ से माटी अदल-बदल करते हुए प्रवाहित कर रहे थे। तब कहीं जाकर कचनत्याग की वृत्ति दृढ हुई। बाद में तो पैसा अथवा द्रव्य के हाथ लगाते ही हाथ ऐंठने लग जाते थे।

दाता ने फरमाया 'कचन के सग्रहकर्ता धनिकवर्ग को उदारतापूर्वक दान वृत्ति अपनानी चाहिये।' उन्होंने सरवर गिरधर कविराय की यह कुण्डली गाकर सुनाई –

"पानी बाढो नाव में, घर मे बाढो दाम।

दोनों हाथ उलिचिये यही सयानो काम॥"

दाता के इन मर्मस्पर्शी भाव-भीने सस्मरणो और वचनामृत से हम सब आनन्दित हो गये। हमें केवल याद रही प्रभु और उनके नामस्मरण की हृदय में निरतर गूज।

गरभ्याग पडाव

अगले दिन अर्थात ८–६–२४ को बून्दी से प्रात रवाना होकर दो मील की चढाई और तीन मील समतल भूमि चलकर गरभ्याग पहुँचे। यह बडा गाव है जा भारत-तिब्बत के व्यापारिक मार्ग की सीमा पर है। यह मार्ग मार्च से सितम्बर तक खुला रहता है। यहां के मकान चूने-पत्थर के बने हे किन्तु छतरहित हैं। छतो पर कनाते लगी रहती है ताकि सर्द ऋतु में पूरी इमारते बर्फ से ढक जाने पर भी छतें टूटें नहीं। यहां कुली भारवाहक पशु उनी कम्बल तम्बू आदि किराये पर मिलते हैं।

स्वामी बालानन्दजी इन दिनो कुलियो के साथ साथ आगे चला करते थे। अत रात्रि में ही उनका हमारा साथ रहता था। प्रात वे उनका और कुलियो का नाश्ता लेकर आगे के पडाव के लिए चल देते थे ताकि हमारे वहां पहुँचने पर आवश्यक व्यवस्था हो सके।

बालानन्दजी का जीवन शान शौकत से परिपूर्ण था। खर्च में उनका हाथ स्वच्छन्द था। वे अत्यधिक खर्चा कर राजशाही ठाट-बाट से रहना पसन्द करते थे जब कि हम लोग कम से कम खर्च करना चाहते थे। गरभ्याग में उन्होने एक

व्यक्ति को पाँच रुपये प्रतिदिन से रखा जब कि सोहनलाल जी ने और मैंने तीन रुपये प्रतिदिन मे रख लिया। रुपये पैसे भी हमारे ही पास थे। मांगने पर भी हमने उनको नहीं दिये थे। यही कारण था कि वे हम दोनो से असन्तुष्ट रहने लगे। एक दिन उन्होने दाता से शिकायत कर ही दी, "शेखर और ओझा यहाँ की रीति नीति कतई नही जानते है। आज्ञा भी नही मानते। व्यवहार भी अच्छा नही है। ये दोनो इस यात्रा मे चलने योग्य नही हैं। इनके कारण हमारी आगे की यात्रा कष्टप्रद हो सकती है। ज्यादा अच्छा होगा कि आप इन दोनो को यहीं से लौटा दें।" यद्यपि हम दोनो ही उनका हृदय से आदर करते थे और उनकी हर सुविधा का ध्यान रखते थे। यह बात अवश्य थी कि रुपये पैसे मेरे ही पास रहते थे और खाद्य सामग्री एवं अन्य वस्तुओ का क्रय हम दोनो ही करते थे।

उनकी शिकायत पर यदि हम दोनो को मार्ग से ही लौटना पड़ता तो हमारी क्या गति होती? इसकी कल्पना मात्र से ही कम्पन होता था। दाता तो दयालु है ही। वे तो दया के भण्डार व कृपा-सागर हैं। उन्होने जो उत्तर स्वामीजी को दिया वह कल्पनातीत है। दाता ने फरमाया, "स्वामीजी! आप ठीक ही कहते होंगे किन्तु मेरा राम क्या कर सकता है। मेरा राम तो इनके साथ आया है। ये लोग ही इस पुतले को इस यात्रा में लाये हैं। ये मेरे को निकाल सकते हैं। मेरा राम इन्हे नही निकाल सकता। फिर भी इन्हें समझा देंगे जिससे ये आपकी सुविधा का और ध्यान रखेंगे।"

वाह रे दीनानाथ! दीनो के प्रति इतना सम्मान। अकिंचनो के प्रति ऐसे आदर पूर्ण उद्गार आप जैसे समर्थ के अतिरिक्त अन्य कौन प्रकट कर सकता है। निर्देशानुसार हमने स्वामीजी के चरण पकड़ वारंबार क्षमा मांगी किन्तु उनकी नाराजगी यथावत वनी ही नहीं रही अपितु दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई।

इसी प्रसंग के संदर्भ मे दाता के श्रीमुख से एक कथन ऐसा निकला और हम चारो ही सेवक भयभीत हो गये। वह कथन था, "मेरे दाता का संकेत है कि इस यात्रा से लौटते समय इस दल के केवल पांच व्यक्ति ही रहेंगे। इस कथन से हम सब एक प्रकार से चिन्तित थे। हम में से वह व्यक्ति कौन हो सकता है जिसकी आयु समाप्त हो चुकी है। हम चारो के मन मे इस वात ने घर कर लिया। दाता की इतनी दया और आसरा होते हुए भी यह चिन्ता हमे सताती रही। वाह रे! मानव मन की दुर्वल दुराशा! पिशाचनी! तूने इतने उदार समर्थ धनी के अभयदायी वरद हस्त होने के वावजूद भी हमारा पिण्ड नहीं छोड़ा और कुण्डली मार कर हमे कठोरता पूर्वक जकड़ लिया! इस घटना के स्मरण मात्र से आज भी हम आत्मग्लानि से लज्जित हो जाते हैं।

अगले दिन भी वहीं विश्राम किया गया। वहाँ जांच हेतु सीमा चौकी है जहाँ जाकर आगे जानेवालों के नाम व पूरा परिचय लिखाना होता है तथा ऐसी वस्तुओं



दाता अलपी में

को जिन्हे तिब्बत क्षेत्र में ले जाने की मनाई है, जमा करानी होती है। हम लोगो ने केमरा, पेन डायरी आदि सामान जमा करा दिया। परिचय भी रजिस्टर में अंकित करा दिया। इसी क्रम मे दाता का नाम तो लिखा दिया किन्तु जब कर्मचारी ने गुरु का नाम पूछा तो हम सब चुप हो गये। दाता ने आजतक गुरु का नाम किसी को नहीं बताया था। हम लोगो ने सोचा कि आज तो उस पावन नाम का सुनने और जानने का सौभाग्य मिलेगा। किन्तु वाह रे दाता! तेरी लीला विचित्र है। तू किस चतुराई से खेल खेलता है कोई जान भी नहीं पाता? तत्क्षण ही पास में बैठे हुए दूसरे कर्मचारी ने कहा इनके गुरु का नाम क्यो पूछते हो? कुछ भी लिख लो।" और उसने परमानन्द, सच्चिदानन्द, ब्रह्मानन्द ये तीन नाम गिना दिया। प्रथम कर्मचारी ने पूछा, परमानन्द लिख लू? दाता ने मुस्कराते हुए कहा, जैसी तुम्हारी मौज। सभी ही नाम उसके ही हैं। उसने गुरु के नाम के स्थान पर परमानन्द लिख लिया। इस प्रकार रहस्य रहस्य ही बना रहा। हम लोग देखते ही रह गये। दाता मन्द मन्द मुस्करा रहे थे।

कालापानी पडाव

दिनाक १०-६-५४ को दोपहर में रवाना होकर गरब्याग से बारह मील उत्तर में काला पानी नामक स्थान पर पहुँचे। मार्ग बिलकुल साफ व सरल था। वहा कोई बस्ती नही है। गरब्याग से किराये पर लाये गये तम्बू लगाकर ठहरे। सर्दी अधिक थी। ठण्ड से बचने व शरीर को गर्म करने हेतु चाय बनाई गई। इस यात्रा की यह प्रथम और अन्तिम चाय थी। इसके बाद दाता ने चाय बनाने हेतु बिलकुल मना कर दिया। वहाँ भोजन बनाने में कठिनाई हुई क्यों कि वहाँ लकडी नहीं मिली। उससे आगे दुकानो की व्यवस्था नहीं है।

सगचुम

दिनाक ११-६-५४ को काला पानी से छ मील चलकर करीब तीन बजे लीपूझील की तलहटी में पहुँचे। यह स्थान सगचुम कहलाता है। लीपूदर्रे को प्रात काल ही पार करना होता है। इसके पश्चात गर्मी के कारण बर्फ पिघल जाता है जिस कारण स्थान पार करना खतरनाक है अत वहीं तम्बू लगाकर रहना पडा। गरब्याग से पन्द्रह सन्यासियो की एक टोली हमारे साथ हो गई थी किन्तु उनका और हमारा सम्पर्क नहीं हो सका। सध्या समय कुछ देर के लिए वे भजन कीर्तन करते थे। स्वामी बालानन्दजी उस समय उनके तम्बू में चले जाते थे। गरब्याग से ही उनका सन्यासियो से अच्छा सम्पर्क हो गया था। बालानन्दजी के अतिरिक्त वे सब हम से एक प्रकार से घृणा करते थे। इस बात की जानकारी उनकी आपस की बातचीत और व्यवहार से जानी जा सकी। सर्दी के कारण दाता ने काले रग के गर्म कपडे का चोला (अलफी) पहन लिया था। साधुओ की टोली महात्मा शिवानन्दजी के आश्रम दिव्य ज्योति' (Divine light society) के थे। काला

पानी में उस टोली के मुखिया की एक कुली से कहा सुनी हो गई। इस पर मुखिया ने उसे डांटते हुए कहा, "तुम मुझे जानते नहीं ? मैं ऐसा वैसा ढोंगी हिन्दुस्तानी साधु नहीं हूँ। मैं इतना चमत्कारी हूँ कि इस काली गंगा में शक्कर की एक बोरी डालकर उससे सौ बोरी शक्कर वापिस ले सकता हूँ।" उनके उच्चारण और भाव-भंगिमा से ऐसा लगा मानो 'हिन्दुस्तानी ढोंगी साधु' से उनका संकेत दाता की ओर हो। उनका यह व्यवहार हमें अटपटा और अपमानजनक लगा किन्तु दाता के भय से हम क्रोध को पी गये। दाता तुरन्त हमारी मनःस्थिति को भांप गये। उन्होंने फरमाया, "भेष को नमस्कार करना चाहिये। उनकी वे जाने। तुम लोग अपने मन में अहंकार क्यों पालते हो ? जिसके पास जो होगा वही तो देगा।" हम शान्त हो गये। फिर भी उनके 'हिन्दुस्तानी' शब्द के प्रयोग ने हमें सोचने को मजबूर कर दिया कि थोड़ी सी अंग्रेजी पढ़-लिखकर वे इस देश के देशवासी होने का आत्म-गौरव भी खो चुके हैं। महात्मा कबीर का यह कथन बरबस याद हो आया :-

"तन को जोगी सब करे, मन को विरला कोय।
सहजे सब सिद्धि पाइये, जो मन जोगी होय॥"

काली गंगा का उद्गम इसी तलहटी से हुआ है। हमारा तम्बू उसके पश्चिम किनारे पर था। मालपा से ही दाता ज्वरग्रस्त थे। अतः वे तम्बू में विश्राम कर रहे थे। हमने चाय बनाना चाहा पर उन्होंने मना कर दिया। उस मण्डली में बारबार कॉफी का दौर चल रहा था किन्तु हमारे यहाँ चाय नहीं बनी। मौसम ठण्डा होते हुए भी सुहावना था। पहाड़ों के शिखर बर्फ से ढके हुए थे। सर्दी इतनी थी कि बादल ज्यों ही पहाड़ों से टकराते बर्फ में बदल जाते। पल पल में पहाड़ों के आकार में परिवर्त्तन हो जाता था। एक पहाड़ी से तोप छूटने की तेज सी आवाज आयी और दिखाई पड़ा कि बर्फ की एक बहुत बड़ी नदी पहाड़ से नीचे तीव्रवेग से आ रही है। वह आवाज उसके बहने की थी। देखते ही देखते वह सारा बर्फ मार्ग में ही जमकर कठोर हो गया। सूर्य की गर्मी से बर्फ पिघल कर बहती और पुनः जम जाती। यह मनोरम दृश्य हृदय और आँखों को चकाचौंध कर देने वाला था।

प्रातः लीपू दर्रे को दस बजे के पूर्व पार करने के उद्देश्य से जल्दी ही निकल पड़े। दाता, ज्वर कम नहीं होने से धीरे धीरे ही चल रहे थे। बालानन्द जी, मोरीजा ठाकुर साहब, कुली आदि आगे निकल गये थे। सन्यासियों का दल भी आगे निकल गया। गाईड सहित हम चारों दाता का अनुगमन कर रहे थे। हवा उस समय लगभग नव्वे मील प्रति घण्टे की चाल से चल रही थी। गर्म कपड़े पहने हुए होने पर भी हाथ-पैर ठिठुर रहे थे। मार्गदर्शक शीघ्रता मचा रहा था। उसका शीघ्रता करना उचित ही था। बर्फ के नम हो जाने पर आगे अथवा पीछे

लौटना असम्भव था। दाता की अस्वस्थता के कारण कुछ कदम चलने के बाद बैठना पड़ता था। सूर्य की किरणों में धीरे धीरे तेजी आ रही थी। पांच मील की चढ़ाई थी। दो मील चले होंगे कि समय डेढ़ बजे का हो गया। समय के बढ़ने के साथ साथ मार्गदर्शक की बेचैनी बढ़ रही थी। वह बार बार हम लोगों को शीघ्र चलने को कहता किन्तु विवशता थी। अन्त में यह निर्णय हुआ कि एक व्यक्ति शीघ्रता से आगे जाकर घोड़ा लावे। गरम्याग से एक घोड़ा किराये पर लाया गया था जिस पर मोरीजा ठाकुर श्री कल्याण सिंह जी बैठकर आगे जाने वाले व्यक्तियों के साथ गये थे। घोड़े को वापिस लाना भी एक समस्या थी कारण उसे गये हुए काफी समय हो गया था। कार्य असम्भव सा था फिर भी यह लेखक इस कार्य हेतु रवाना हुआ। अनुभव नहीं था अतः कुछ कदम शीघ्रता से उठाये। कुछ ही कदम गया कि दम फूलने लगा और मजबूर होकर बैठना पड़ा। हवा में ऑक्सीजन की कमी से ऐसा हुआ। उस समय हम लोग साढ़े चौदह हजार फुट की ऊँचाई पर थे। मुझे बैठते देख कर दाता हँसने लगे। उनको हँसता देख कर मैं आश्वस्त हुआ। मार्गदर्शक निराश होकर कहने लगा, आज तो बुरे फंसे। अब हमारा बचना कठिन है। मेरे बाल्यबच्चों का क्या होगा, हे भगवान! अब क्या होगा? वह अत्यधिक चिन्तित एवं दुःखी हुआ। अन्त में साहस कर वह दाता को कंधेपर बिठाकर ले चलने हेतु दाता को उठाने के लिए आगे बढ़ा। दाता उसके आशय को समझ गये। उन्होंने उसे ऐसा करने से रोका और फिर इसके साथ ही दाता का बुखार क्षणमात्र में काफूर हो गया। अब वे शीघ्र चलने लगे। दाता की लीला को कौन जान पाया है। दाता के शरीर में स्फूर्ति का संचार होते ही हम सब प्रसन्न हो गये। मार्गदर्शक के चेहरे पर इस परिवर्तन से विस्मय की रेखाएं उभर आयीं। गर्मी के कारण बर्फ पिघलने लगा और हमारे पैर घुटनों तक बर्फ में धसने लगे। पैरों के बर्फ में धसने से चलने की गति बन नहीं पा रही थी। बर्फ में चलने का प्रथम अनुभव था। ठीक बारह बजे लीपू दर्रे की साढ़े सोलह हजार फुट की ऊंचाई पर पहुंचे। श्वास लेने में कठिनाई हो रही थी। दाता ने वहीं कुछ देर रुकने को कहा। दृश्य वहाँ का अनोखा था। चारों ओर बर्फ ही बर्फ था। ऐसा लग रहा था मानो पृथ्वीपर श्वेत-चादर बिछा रखी हो। अगला दल लीपू दर्रे को पार कर चुका था।

लीपू दर्रे के दोनों ओर लीपू झील है जो अन्दर से खोखली है। ऊपर बर्फ की परत चढ़ जाती है। बर्फ की परत के कम हो जाने पर बर्फ में धस कर डूबने की सम्भावना बनी रहती है। मार्गदर्शक को इसी की बड़ी चिन्ता बनी हुई थी। वह अब निराश हो गया था व उसके चेहरे पर मायूसी छा रही थी। वह हमारी सम्भावित मृत्यु की घनीभूत आशंका से त्रस्त था तथा बार बार उसासें ले रहा था। दाता को इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। उन्हें तो अनहोनी को होनी करनी थी। अपनी महत्ता जो प्रकट करनी थी। लगभग आधा घण्टा लीपू दर्रे के सिरे पर ठहरे रहे।

ठीक साढे बारह बजे बाद दर्रे से नीचे उतरना प्रारंभ किया। अब अढ़ाई मील बर्फ मे चलना शेष था। बर्फ की चढ़ाई मे चलने के बजाय उतराई में अधिक खतरा रहता है। दाता सब से आगे थे। उनके पीछे हम सब एक एक करके चल रहे थे। बहुत संभल संभल के पैर धरे जा रहे थे। दाता के पीछे सोहनलाल जी थे। अचानक उनका पैर बर्फ मे अधिक फंस गया और वे बर्फ के साथ फिसलने लगे। हम लोगों ने देखा कि वे गये किन्तु वाह रे दाता! उन्होंने एकदम आगे बढ़ कर उनका हाथ थाम लिया व उन्हें मार्ग पर खीच लिया। एक बार और दाता ने सहायता की वरना सोहनलाल जी से हाथ धो बैठते। एक-दो क्षणो की भी देरी होती तो वे तो गये हुए ही थे। दाता का पूरा भरोसा रखते हुए व 'दाता-दाता' रटते हुए हम लोग आगे बढ़ रहे थे। दाता की महर से भय नाम की कोई वस्तु नहीं थी। कुछ आगे चलने पर सम्राट की बारी आयी। वे भी फिसलने लगे किन्तु मार्गदर्शक ने बड़ी चतुराई से उन्हें बचा लिया। लगभग दो घण्टो मे हम उस उतराई को पार कर पाये। जब हमने बर्फ को पार किया उस समय तीसरे पहर के अढ़ाई बजे थे।

दल के सभी साथी ढलान के सिरे पर खडे होकर हमें उतरते हुए देख रहे थे। सुरक्षित पहुँचने हेतु वे निरन्तर भगवान से प्रार्थना कर रहे थे। हमारे पहुँचते ही वे सब प्रसन्नता से उछल पडे।

वहाँ पहुँच कर हम सब ने दाता को प्रणाम किया। मार्गदर्शक भी पीछे नही रहा। उसने दाता को महान् शक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया था। उसके जीवन का यह पहला मौका था जबकि उसने दोपहर को इस दर्रे को पार किया। उसके लिए यह अनहोनी घटना थी जो मनुष्य के वश से परे थी। वह भी दाता की जय जयकार कर उठा। अन्य लोग भी दाता को आश्चर्यचकित होकर देखने लगे। दाता की ऐसी सुरक्षाप्रदायिनी सुधापगी दृष्टि से ही हम पग पग पर मौत के मुह से बाल बाल बच सके और विशाल हिमालय पर्वत की यह दुर्गम यात्रा हमारे लिये रेणु बन गई। तुलसीदास जी ने तो पहले ही कह दिया था :

"गरुड़ सुमेरु रेणु सम ताही। राम कृपा कर चितवत जाही॥"

सन्यासियो और हमारे अग्रिम दल ने तो दस बजे ही इस दर्रे को पार कर लिया था। उस समय भी एक अन्य दल का कोई डाक्टर फिसल कर बर्फ मे कई फुट धंसता चला गया। उसके समाप्त होने मे कोई कसर नही थी किन्तु एक कुली ने प्राणो की कोई परवाह न कर उसे बचा लिया। उस कुली का यह प्रयास प्रशंसनीय था। कुछ विश्राम कर हम आगे बढे। अब हम तिब्बत क्षेत्र मे थे जिस पर चीन का आधिपत्य हो गया था। चैक पोस्ट पर हमारी तलाशी हुई।

तगलाकोट

चार मील और चल कर तगलाकोट पहुँचे। उस दिन की वह प्राणलेवी यात्रा तेरह मील की हुई। तगलाकोट लीपू झील से निकलने वाली नदी के किनारे है।

नदी के बीचोबीच हमने अपना तम्बू लगाया। वहाँ लकडी के अभाव में जो के बने आटे का सत्तू खाकर क्षुधा की पूर्ति की।

दो दिन वहीं विश्राम हुआ। वह स्थान समुद्र की सतह से चौदह हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित है। मानसून हिमालय को पार कर वहाँ पहुच नहीं पाता इसलिए वर्षा नहीं के बराबर ही होती है। वहा सदैव एक सी सर्दी रहती है अत वहाँ के लोग सिर से पाँव तक गम कपडे पहनते है। पँट और कोट एकसाथ ही जुडा हुआ पुरुष और स्त्रियो की एक ही प्रकार की पोशाक, एक सी बिना दाढी मूछ की सूरतशक्ल। पुरुष भी स्त्रियों की तरह बाल और चुटीला रखते हैं। स्त्रियो के चेहरेपर गोदने के चिन्हों से ही उनकी पहचान होती है। वहाँ छोटी छोटी झाडियो के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। वहाँ के निवासी भेड-बकरी पालते हैं। किसी किसी के पास गाय और भैंस भी है। किन्तु उनका दूध और घी सावले रग का होता है। निवासी बौद्धधर्मावलम्बी है और हैं पूरे अन्धविश्वासी। पत्थर पत्थर पर सिन्दूर लगाकर उन पत्थरो की देवी-देवता के रूप में पूजा करते है। पुजारियो या साधुओ को वे लोग 'लामा' कहते है। उनकी भाषा हम और हमारी भाषा वे नहीं समझ पाते अत आपस में बातें सकेतों से ही होती। मास उनका प्रमुख भोजन है क्योंकि आटा तो वहाँ भारत से आता है। भारतीय भोजन उन्हें स्वादिष्ट लगता है। एक समय की घटना है कि हम नाश्ता कर रहे थे तब वहाँ एक निवासी आया। वह हमारी थाली से मिठाई व अन्य पदार्थ बिना पूछे ही उठाकर खाने लगा, हमने पूरी थाली हो उसे दे दी। वह बडो रुचि से खाने लगा और बाद में नाचने लगा।

लामाओ के रहने के लिए पहाडी पर बडी बडी गुफायें हैं। वहा के लोगो की धारणा है कि लामा अपनी गुफाओं या मठो से बाहर कम ही निकलते है। उनका अधिकाश समय विभिन्न साधना करने में ही बीतता है।

दिनाक १४-६-४४ को प्रात तगलाकोट से रवाना हुए। मार्ग समतल था किन्तु हवा बडी ठण्डी और तीखी थी। 'मानधाता' और 'कोचरनाथ' तीथ साफ दिखाई दे रहे थे। कहते है कि कोचरनाथ तीर्थ में राम, लक्ष्मण और जानकी की भव्य मूर्तियाँ है। सोलह मील चलकर एक निर्जन स्थान पर तम्बू लगाकर ठहर गये। पास में जो कुछ था उसे खा-पीकर सो गये।

मानसरोवर दर्शन

दूसरे दिन प्रात रवाना होकर दस मील चल कर दाता की अनन्त कृपा से मानसरोवर के तट पर पहुँचे। मानसरोवर के दर्शन कर हमारे आनन्द की कोई सीमा नहीं रही। रक्ष तालाब और मानसरोवर के बीच एक छोटीसी पहाडी है जो दोनो को अलग करती है। किवदन्ती है कि रावण ने कैलासपति को प्रसन्न करने के लिए यहीं तपस्या की थी। यह तालाब विस्तार में बहुत बडा है। मीलों दूर तक टेढे-मेढे पहाडों में अन्दर तक चला गया है।

मानसरोवर ४५ मील के घेरे मे फैली अण्डाकार, स्वच्छ और ठण्डे नीलाभ जल की एक सुन्दर झील है। इसकी ५१ शक्तिपीठो मे गिनती है। कहते है कि सती के शव को लेकर जब शिव नृत्य करने लगे तब सती की दाहिनी हथेली यहां गिरी थी। मानसरोवर से ही ब्रह्मपुत्र नदी निकलती है। हवा के निरन्तर तीव्र प्रवाह से झील मे जल-तरंगे विकराल हो जाती है। इसके जल मे राजहंस और सामान्य हंस तैरते हुए सुन्दर लगते है। आसपास के जंगल मे छोटी छोटी झाड़ियां है। वहां लम्बे लम्बे बालोवाले पुष्ट जंगली भैसे व नीलगाये अधिक है। कही कही सामान्य जाति से बड़े आकार के खरगोश और कोवे भी दिखाई पड़ते है। मानसरोवर मे कमल नही है।

कैलास के दिव्यदर्शन

इसके एक ओर विराट शिवलिग की आकृति का कैलास पर्वत है। जिसके आसपास की पहाड़ियां छोटी है। यह ऐसा शोभायमान है मानो पर्वतो से बने हुए एक षोडशदलीय कमल के मध्य शिवलिंग प्रतिष्ठापित हो। इस शिवलिग की प्राकृतिक अरघा चौदह श्रृंग तो गिने जा सकते है, किन्तु सन्मुख के दो श्रृंग झुक कर इस प्रकार लम्बायमान हो गये है जैसे अरघा का लम्बावाला भाग। इसी भाग से कैलास का जल गौरी-कुण्ड मे गिरता है जिसकी अनुपम शोभा अवर्णनीय है। यह पर्वत कसौटी के ठोस काले पत्थर का बना हुआ बताया गया और पूर्णतया दुग्धोज्ज्वल-स्निग्ध बर्फ से सदा आच्छादित रहता है। अन्य छोटी पर्वत-शृंखलाएं लाल मटमैले पत्थर की है। उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि कैलास शिखर के चारो कोनो मे प्राकृतिक तौर पर बने हुए मन्दिराकृति कंगूरे ऐसे शोभायमान है मानो किसी देवस्थान के मुख्य शिखर के चारो ओर बने गुम्बद। इन पहाड़ियो के चारो ओर होकर एक परिक्रमा मार्ग है जिसकी परिधि ३२ मील है। इसके बीच मे गौरीकुण्ड है। ऐसा कथन प्रचलित है कि पूर्वकाल मे मां गौरी ने भगवान शिव की वर रूप मे प्राप्ति हेतु इसी स्थान पर घोर तपस्या कर सफलता प्राप्त की थी।

इस पर्वत की ऊंचाई १९००० फुट है। सुनते है कि इस पर अभीतक कोई नही चढ़ पाया है क्यो कि इसके बीच का कुछ भाग उभरा हुआ है और सीधी गोलाई के कारण विज्ञान के इस युग मे अत्याधुनिक उपकरणो के होने पर भी यह अगम्य है। जिस समय दाता ने हमे कैलास के दर्शन कराये, उस समय आकाश बादलरहित था। हमे उसके स्पष्ट दर्शन हुए। बाद में हमारे नेत्र स्वतः ही बन्द हो गये। हम खड़े खड़े ही शिवानन्द मे मग्न हो गये। हमारे मन के सभी विकार आँसू बनकर बह गए और हमारी उस शान्त, निर्मल, आत्ममग्नावस्था में हमे दाता के स्थान पर साक्षात् कैलास-पति शिव के खुली आँखो से दर्शन हुए। हम उनके पादपद्मो मे साष्टांग लोटने लगे और विनय करने लगे, "प्रभो! आप ही देवादिदेव महादेव है। आप ही जल, थल और नभ में सर्वत्र व्याप्त है। आपकी महिमा

अपरपार है। हम जैसे क्षुद्र प्राणियो पर आपकी सदा महर बनी रहे यही एक प्रार्थना है।' उस समय दाता चिदानन्द रुप 'शिवोऽह शिवोऽहम' की दिव्य सदाशिव भाव की महत आनन्द अवस्था में थे जिसका वर्णन करना नितान्त असम्भव है।

मानसरोवर पड़ाव

हम मानसरोवर तट पर पहुचे। सन्तो की वह टोली हमारे पहले ही वहाँ पहुँच कर तम्बू लगा चुकी थी। दातासहित हम सब किनारे पर कम्बल ओढ़े ही बैठ गये। ठण्डी हवा शरीर को चीरे डाल रही थी। हमारे मार्गदर्शक और कुलियों ने मिलकर तम्बू लगा दिया। दाता किनारे पर ही लेट गये। हमें इस प्रकार बैठे देखकर उस टोली के सन्त हंसने लगे। दाता को वैसे लेटे हुए देखकर उनमें से एक सन्त ने तो कटाक्ष कर ही दिया कि वह ढोंगी साधु चल ही बसा है।

उसी समय एक सन्त स्नान करने के उद्देश्य से तट पर आये। उन्होंने ज्यो ही एक पैर पानी में रखा कि वे उछलकर बाहर गिर पड़े मानो किसी विषैले जन्तु ने काट लिया हो। उठकर पुन वे पानी में घुसने का प्रयास करते है किन्तु उनकी हिम्मत टूट जाती है। लज्जावश मुह लटकाये वे वापिस मुड जाते है। इसी प्रकार क्रमश एक एक सन्त मानसरोवर में स्नान करने हेतु आते हैं किन्तु उस दिन पानी की अत्यधिक शीतलता के कारण वे स्नान के पुण्यलाभ से वंचित रहे। उन्होने आत्मतुष्टि हेतु शरीर पर जल के कुछ छींटे देकर ही सन्तोष किया। बालानन्दजी भी स्नान नहीं कर सके। उन्होने भी अनुकरण वृत्ति का पालन किया। उस दिन पूर्णिमा थी। कुभ का दिन था। दाता सोते सोते ही तथाकथित आधुनिक सत समुदाय का यह नाटकीय व्यवहार देख रहे थे। उन्हें यों स्नान से वंचित होना देखकर हमें स्वय की स्नान करने की सभावना पर भी सदेह हुआ।

मानसरोवर स्नान

इसी अन्तराल में उस टोली के एक सन्त दाता के पास आकर पूछते है "बाबा यहाँ क्या कर रहे हो?" दाता ने सहज स्वभाव से यो उत्तर दिया "मानसरोवर का पानी गर्म कर रहा हू।

वे सन्त इस कथन का अर्थ नहीं समझ सके और कुटिल व्यग्य में हंसते हुए अपने तम्बू में लौट गये। दाता के इन शब्दों का गूढार्थ अवश्य था जो समझ में सरलता से आया नहीं। मानसरोवर का जल वास्तव में बडा ही शीतल था जिसम स्नान करना तो दूर आचमन करना भी असभव था। दाता मजाक में भी अपने बन्दों को झूठ न बोलने का सदपरामर्श देते है और उनकी कथनी और करनी में कभी अन्तर नहीं रहता ऐसी अवस्था में उनके मुखारविन्द द्वारा निकले हुए शब्द मिथ्या प्रलाप मात्र नहीं हो सकते। यह सनातन नियम है कि किसी विपरीत विषम परिस्थिति से निपटने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक तैयारी करनी

पड़ती है।दाता ने भी एतदर्थ एक ओर जहां अपने शरीर की उर्जाशक्ति को उन्नत करके आत्मबल और विश्वास को सुदृढ़ किया वही दूसरी ओर अपने शरीर के तापमान और मानसरोवर के जल की विषम शीतलता को दृढ़ इच्छाशक्ति एवं संकल्प से सम बनाने की प्रक्रिया अपनायी। इसमे कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है क्योकि महापुरुष ऐसा करने मे समर्थ होते है। इस कथन के द्वारा उन्होने यह शक्ति स्वयं के लिए ही अर्जित नही की है वल्कि अपने बच्चो के लिए भी परोक्षतया उसे प्रकट किया है जिसके अभाव मे वे भी संतो की टोली की भांति स्नान से वंचित ही रहते।

तब दाता सर्वप्रथम ठाकुर साहब श्री कल्याणसिंह जी को स्नान करने की आज्ञा देते हुए उन्हे एक डुबकी लगाने को कहते है। वे मानसरोवर के पानी में जाकर मंत्र बोलते हुए आचमन करके एक डुबकी आसानी से लगाकर लौट आते है। तत्पश्चात् आज्ञानुसार सोहन जी ओझा स्नान करते है। उसके बाद इस लेखक की ओर संकेत होता है तब वह दाता से निवेदन करता है, "सभी सत्संगी वन्धुओ ने मुझे उनकी ओर से डुबकी लगाने को कहा है अतः आज्ञा हो तो एक डुबकी उन सब की ओर से और एक मेरी-दो डुबकियां लगा लूं?" यह सुनकर दाता हंस पडे और संकेत से अनुमति दे दी। मै मानसरोवर के पानी को नमस्कार कर सिरपर चढ़ा, आचमन कर सरोवर के जल मे कटिपर्यन्त प्रवेशकर मानसिक सकल्प कर दो डुबकियां लगाकर बाहर निकल गया। पानी इतना ठण्डा था कि शरीर अकड़ सा गया।

इसके बाद दाता ने अपनी अलफी उतारी। यहां यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि दाता को स्नान करने मे लगभग आधा घण्टा लगता है। वे उनके समस्त कार्य व्यवहार मुख्यतः दांतुन, स्नान, लटका (मानसिक पूजा), बालभोग, हरिहर (भोजन), आदि अपनी रोजमर्रा की निश्चित परिपाटी के अनुसार ही सहज गति से पूर्ण करते है। उस प्रक्रियानिर्वाह में शिथिलता, शीघ्रता, अन्यमनस्कता, चंचलता, व्यग्रता अथवा ढिलाई उन्हे कतई पसन्द नही है। प्रत्येक कार्य यथासमय सावधानी, संयम और शालीनता के साथ सम्पन्न करना उनका सहज स्वभाव है। उन्हें इस प्रकार कार्य करते देखना अपने आप में एक निराली शोभा है; अनोखी शान है; अनुपम आनन्द है और है सुखद भावमयी उत्प्रेरक शक्ति। तो फिर उस दिन का स्नान लीक से हटकर अपवाद क्यो बने! डेढ़सौ मील प्रति घण्टे की चाल से चलनेवाली तेज सर्द हवा, पानी की वर्फानी शीतलता और शारीरिक अस्वस्थता इस मानसरोवर स्नान में कोई व्यवधान, व्यतिक्रम उपस्थित नहीं कर सकी।

और फिर वह स्थान और परिवेश उनका अनजाना तो है नहीं! लीलाधारी की लीला को आजतक कोन जान पाया है?

फिरभी 'जस काछऊ तस चाहिए नाचा' की नीति का पालन ही धर्म है— यह जानकर दाता ने जल में प्रवेश किया। दलदली पैंदें में जैसे ही एक दो कदम

आगे बढ़े कि एक बहुत बड़ी मछली उनके पैरों में आ गई। मानसरोवर में मछली दिखना एक शुभ शकुन गिना जाता है किन्तु वह तो वहाँ 'मत्स्यावतार' की भांति स्वयं ही आधारस्तम्भ बन गई। महासिद्ध गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी का आविर्भाव भी तो मत्स्य रूप में ही हुआ था और उन्होंने इसी रूप में भगवान शिव और मां पार्वती के मुख से जीवन का अमर रहस्य उसी अवस्था में ज्ञात किया था। तो क्या वे ही अनादि पुरुषोत्तम लोक में लीला उजागर करने हेतु इस बार आश्रित अभिन्न के चरणों को धारण करके उसे गौरवान्वित नहीं किया ?

अस्तु ! तब दाता ने स्नान की सहज मुद्रा धारण की। उन्होंने अपनी विशिष्ट अदा से दोनों हाथ आगे फैलाते हुए जल और सरोवर दोनों को ही नमस्कार किया। तत्पश्चात दोनों हाथों को जल में डालकर उसे खूब मथा उसे शुद्ध और निर्मल कर स्नान योग्य बनाया। फिर हथेलियों और उनके पृष्ठभाग को तीव्र गति से परस्पर मसल मसल कर परिमार्जित किया। क्योंकि कर्म करने के आधारभूत तत्व पांचों कर्मेन्द्रियां, पांचों ज्ञानेन्द्रियां और मन ही है उनका शुद्धीकरण ही वास्तव में सच्चा सात्विक स्नान कहलाता है।

उसके बाद दोनों हाथों की सम्मिलित अञ्जुलियों में जल भर भर कर नेत्र, कर्ण और मुख प्रक्षालन किया। फिर एक अञ्जुलि में जल भर उसे मुंह में लेकर घुमाते हुए उंगली से दांत रगड़ते हुए कुल्ले किये। पुन अञ्जुलि में जल भरकर आंखों और मुंह पर बारम्बार डाला। उस समय गाल फुलाकर मुंह बन्द कर मुख से एक ऐसी अस्पष्ट हलकी सुरीली गूंज निकाली मानो प्रणवमन्त्र-ओंकार नाद-ब्रह्ममयी ध्वनि उच्चारित हो रही हो। उसके बाद पानी में बैठकर हाथों से मस्तक और जटापर पानी डालते हुए जल में बार बार अनेक डुबकियां लगाई और शरीर को मल मल कर साफ किया। इस प्रकार विधिवत स्नान करके दाता जल से बाहर आये, दोहरी की हुई धोती को कमर में लपेट गीली धोती खोल, उसे जल से धो-निचोड़ और दोनों पिंडलियों के बीच दबाकर पानी में खड़े रहकर ही 'लटका' अर्थात मानसिक पूजा की।

मानसिक पूजा की भी एक निश्चित अदा और मुद्रा है। तदनुसार वे पुन हाथों से जल को मथ-मथकर हाथ धोते हैं। फिर उस मथे हुए शुद्ध जल से एक अञ्जुलि भरकर, गर्दन को कुछ झुकाकर उस अञ्जुलि भरे जल को नाक की अणी और भ्रूमध्य भाग से सटा कर एक हाथ की हथेली को उसके नीचे रखते हुए इस प्रकार जल चढ़ाते हैं मानो काया के उस आन्तरिक भाग में अवस्थित शिवलिंग पर जल चढ़ा रहे हों। यहां यह उल्लेख करना समीचीन है कि योगशास्त्रों के अनुसार प्रत्येक मानव देह में आंखों के ऊपर भ्रूमध्य आज्ञाचक्र भाग में एक अंगुष्ठ के आकार का छोटासा शिवलिंग है जिस पर निरन्तर रस झरता रहता है। बाह्याचार में जो हम शिव पर जल चढ़ाते हैं वह उसी मानसिक दैवी अवस्था का एक प्रतीक मात्र है। किन्तु कैसी विडम्बना है कि हम असल को भूलकर बाह्य

व्यवहार को प्रमुखता देने लगे हैं जबकि हमारे धर्मग्रन्थ आन्तरिक भावना पर अधिक बल देते हैं। इस प्रकार मानसिक रूप से शिवार्पित जल जो नीचे हथेली मे आया उसमे कनिष्ठा के पासवाली अनामिका डुबाकर उसी अंगुठे की सहायता से वह जल मुंह के भीतरी भाग मे पाचबार छिड़क कर मानो आचमन द्वारा आत्मस्वरूप की तृप्ति कर रहे हो। तत्पश्चात् उस जल मे दाहिने हाथ की प्रथम तीन अंगुलियाँ डुबाकर ललाट, नेत्र, स्कध, कर्ण, ग्रीवा, हृदयस्थल, नाभिस्थल, बाहुप्रदेश और भुजाओ के अग्रभाग मे त्रिपुण्ड की तरह लगाते है और शेष रहे दो तीन बून्द जल को जटाओ पर लेप कर देते है।

उस दिन भी दाता ने ऐसा सबकुछ किया। इस प्रकार स्व-रूप पर चंदन चढ़ाकर कैलास पर्वत की ओर अभिमुख होकर उनके परमाराध्य इष्टदेव 'दाता' के प्रति मानसिक पूजन और आत्मसमर्पितभाव से नमस्कार किया।

फिर उन्होने दोनो हाथ फैलाकर हथेलियो को परस्पर बारंबार रगड़कर उन्हे शुद्ध किया। फैले हुए बाये हाथ की अंगुलियो पर दाहिने हाथ की अंगुलियाँ रखकर उन्हे कुछ ऊपर उठाकर नेत्रो के सन्मुख किया मानो हथेलियो का आसन बिछाकर आराध्यदेव 'दाता' को उसपर विराजमान होने हेतु आमंत्रित कर रहे हो। इस तन्मय अवस्था के बाद अब उन पर शिस्त मिलाकर दृष्टि स्थिर करके एकटक उनके स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हो। इस प्रकार तल्लीन अवस्था मे करीब एक मिनिट रहकर उन्होने दृष्टि को मध्यभाग से हटाकर दाये-बाये इस प्रकार घुमाई मानो प्रभु के दर्शन दृष्टि के छोरबिन्दुओ तक कर रहे हो। इस प्रकार तद्रूप अवस्था को धारण करते हुए, दोनो हाथो से चुटकियाँ बजाते हुए, फैले हुए हाथो से आरती करने को मुद्रा बनाई। उसी क्रम मे हाथो को ऊपर उठाकर घुमाव देते हुए कन्धो तक ले गये। चुटकियाँ बजाने का क्रम चालू रखा और फिर हाथो को समेटकर उन्हे जोड़कर ललाट और नासिका के पास रखते हुए मस्तक झुकाकर प्रणाम की आत्मसमर्पण मुद्रा मे नमस्कार निवेदन किया। तत्पश्चात सीधे खड़े होकर दोनो जुड़ी हुई हथेलियो को नेत्रो के सामने लाते हुए उन्हे खड़ी अंगुलियाँ जोड़कर, कुछ खोलकर विशेष मुद्रा मे उस गुफा प्रदेश मे, इष्टदेव के तपस्यारत दर्शन करते करते शरीर और संसार से विस्मृत होकर, अभिन्न एकाकार अद्वैत ब्रह्म की निराकार, निर्विकार, निराधार, अलख निरंजन, अविनाशी अवस्था मे तदाकार रूप मे सर्वतोभावेन अवस्थित होकर आत्मलीन हो गये। उस अवस्था मे लगभग एक मिनिट रहकर स्थितप्रज्ञ होकर दोनो हाथ सामने फैलाकर और सिर झुकाकर नमस्कार करते हुए, हाथो को ऊपर उठाकर, मस्तक और जटाओ पर वारते हुए ऐसे प्रतीत हुए मानो अपने प्रभु के पादपद्मो की धूलि-विभूति मस्तक व अन्य अंग-प्रत्यंगो पर धारण की हो। उसी अवस्था मे चारो दिशाओ मे बाये से घूमते हुए सिर झुका-झुकाकर हर दिशा मे इस भाव से नमस्कार किया मानो कण कण मे भगवान समान रूप से व्याप्त हो। तत्पश्चात् पुनः पूर्ण अवस्था

को प्राप्त करके दोनो हाथो को ललाट, मस्तक और नेत्रो से लगाया। फिर मुख से 'दाता की महिमा का अतिमन्द स्वर में गुणगान करते हुए, दाहिने हाथ की तर्जनी को ऊपर उठाते हुए वृत्ताकार घुमाई मानो सृष्टि के आदि कालचक्र-सुदर्शन की निरन्तर नित्यता का गुप्त संकेत (Code Signal) दे रहे हों। अन्त में स्व मुख से मध्यम ध्वनि में इस प्रकार जयनिनाद किया।

१) दीनबन्धु दाता की जय।
२) सतगुरु समर्थ की जय।
३) भक्तवत्सल दाता भगवान की जय।
४) जय जय श्री सतगुरु समर्थ।
५) सन्तजनो की जय।
६) भक्तजनो की जय।

तत्पश्चात सूर्य की ओर देखते हुए सिर झुकाकर नमस्कार किया और हाथो को मस्तक नेत्र और मुखपर लगाया मानो उनसे प्राणऊर्जा प्राप्त कर रहे हों।

मानसिक पूजा ज्यो ही उन्होंने समाप्त की कि हम सभी ने साष्टाग प्रणाम किया।

इस समस्त प्रक्रिया का वर्णन लेखक ने स्वल्पमति अनुसार ही बाह्यस्थिति का अवलोकन करते हुए हा किया है। इसके मूल में दाता का स्वय का क्या अन्तर्निहित लक्ष्य, रहस्य, आशय अर्थ और मनोभाव है, वह तो वे ही जानते हैं। पूछने पर भी वे यह कह कर टाल देते है कि 'वह तो जो है सो ही है।' उसकी लीला वही जानता है। वाणी से उसे प्रकट नहीं किया जा सकता। यह तो नित्यानुभूति और निजानन्द का विषय है।

दाता की यह 'हरेहर प्रणाली उनके द्वारा विकसित स्वय की शैली है और आध्यात्मिक साहित्य में इससे पूव ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जहां और जिसने ऐसी विशिष्ट सुन्दर और सारभूत शैली अपनायी हो। अलबत्त' इसका आंशिक आभास नाथमत से दीक्षित सत श्री ज्ञानेश्वर ने दिखाया था जिन्हें महाराष्ट्र क्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण का अवतार माना जाता है। तान्त्रिक सिद्ध चांगदेव को प्रत्युत्तर में लिखी गई ओवियां और गीता की ज्ञानेश्वरी टीका इसके प्रमाण है।

यहाँ पाठकों को स्मरण कराना आवश्यक है कि जब नित्य-प्रति दाता यह 'हरेहर' करते हैं तो भक्तगण उन्हें ऐसा करते हुए खुली आँखो से देखते रहते हैं। उस समय इन लोगो को दाता के रूप में शिव, राम कृष्ण बुद्ध आदि अवतारों देवी-देवताओं और सत-महापुरुषो के विभिन्न साकार एव दिव्यदर्शन होते है। अत इस तट पर जब हमने भी उन्हें हरेहर' करते देखा तो सम्राट को उनके स्वरूप में भगवान शिवशंकर, मोरीजा ठाकुर को पहले शिव और बाद में उनके इष्टदेव

श्रीराम और ओझा को कैलास पर्वत पर पद्मासन लगाये ध्यानमग्न भगवान शिव के दर्शन हुए। इस लेखक की तो गति ही विचित्र-रोमाचकारी और थरथरानेवाली हो गई। सहजभाव से खुली आँखों पर विना दवाव डाले जब दाता की ओर निहारा तो ऐसा लगा, मानो दाता के स्थान पर यह 'हरेहर' स्वयं भगवान शंकर कर रहे है। यह दर्शन करके आनन्दातिरेक में मेरे उत्फुल्ल नेत्र स्वतः ही मुंद गये। हमारा यह मन ही मानसरोवर है। इसी कायारूपी कैलास मे वह परमशिव सदा वास करता है। यह योगशास्त्रानुसार हठयोग सिद्धान्त की चरमावस्था है। सातवें सहस्रारचक्र में सहस्रदल कमलासीन परमशिव का निवास ही कैलासधाम है। उस शिव के दर्शन प्रभुकृपा पर ही निर्भर है। ऐसे महाप्रभु के जितने भी गुणगान किये जाँय उतने थोड़े ही हैः–

"अतउर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रार सरोरुहम्।
ब्रह्माण्ड व्यस्तदेहस्थं वाह्ये तिष्ठति सर्वदा।
कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति॥" शिवसंहिता

स्वयं स्वयं को देखने का परासंचित ज्ञान ही शैवागमो मे शिव है और वेदान्त में ब्रह्मज्ञान! स्वयं स्वयं का प्रकाशक, स्वयं स्वयं का ज्ञाता और स्वयं स्वयं का ज्ञान; यही महानन्दावस्था है! परमब्रह्म भगवान की ईश्वरीय सत्ता का मूल तात्विक वोधभाव भारतीय हिन्दू समाज मे इतना जागृत एवं व्यापक है कि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि उसके घट मे राम है। यह आत्मा ही परमात्मा है। प्राणिमात्र में समभाव रखते हुए वह अभिवादनस्वरूप 'राम राम' अथवा 'राम-श्याम' करता है। यदि कोई व्यक्ति कोई अपराध अथवा दुष्कृत्य करता है तो सहसा ही दूसरा व्यक्ति उसे तुरन्त इस कथन से टोकता है, "राम ने माथे राख" धन्य है यह देश और उसका ऐसा समाज जिसके मतावलम्बी सिर पर चोटी रख कर काया के शीर्पस्थान कैलास के प्रति स्मृतिवोध जगाते है।

अस्तु सन्यासियो की टोली के सभी सन्यासी सन्त तम्बू के बाहर आकर दाता को इस प्रकार स्नान करते देख आश्चर्यचकित हो गए। तत्पश्चात् हम सब भोजन व्यवस्था हेतु तम्बू मे चले गये। दाता भी तम्बू में पधार गये। इस दृश्य को देखकर कुछ सन्तों को स्नान करने की इच्छा पुनः जागृत हुई। वे स्नान करने हेतु किनारे पर पहुँचे किन्तु स्थिति पूर्ववत् ही बनी रही। शायद यह उनके अहंकार का ही फल था। संगति का असर होता है। स्वामी वालानन्द जी, जो आगे होकर दाता को लाये थे और जो पूर्व मे वहाँ कई वार पधार चुके थे, स्नान नहीं कर सके।

सम्राट ने स्नान नहीं किया था। हम लोग भोजन की व्यवस्था में लगे तव दाता ने उन्हें कहा, "राजा! तुम जाकर देखो पानी कैसा है?" वे किनारे पर गय, पानी में एक अंगुली डाली और उसके साथ ही उनके शरीर में ऐसी शीतलहर

दौड़ी कि आधा शरीर सुन सा हो गया। थोड़ी देर बाद उसका असर कम हुआ तो उन्होंने घबराकर कहा 'अन्नदाता! पानी तो बहुत ठण्डा है।

दाता 'राजा! तुम्हें यहां स्नान तो करना ही चाहिए।
सम्राट 'ऐसे ठण्डे पानी में!'

दाता 'हां! हां! ऐसे ठण्डे पानी में। तुम अकेले ही बचे हो जिसने स्नान नहीं किया है।' फिर आदेशात्मक स्वर में बोले "चलो स्नान करो। वे उन्हें मानसरोवर तट पर ले गये। सम्राट के लिए आज्ञा-पालन के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। हाकिम का हुक्म काम करता है। आदेश ने उनके शरीर में साहस का संचार किया। वे कपड़े उतार कर निधड़क पानी में घुस गये और आनन्दपूर्वक स्नान करके बाहर निकले। इस बार शीतप्रकोप उन्हें सता नहीं सका। उन जैसा राजपुरुष जो बारहों महीने सदा गर्म पानी से स्नान करने के अभ्यस्त रहा हो इतने शीतल हिम जल में स्नान करने के पश्चात् भी निमोनिया, ज्वर, खांसी और जुकाम की तीक्ष्ण मार से बच सका। यह दाता की कृपालीला का प्रसाद ही तो है।

उस दिन निर्मल नभ में पूर्णिमा की स्निग्ध चाँदनी नर्तन करती हुई अपूर्व मुस्कराहट के साथ चारों ओर थिरक रही थी। उसका दूधिया उजाला मानसरोवर झील को तरल चांदी की तरह चमका रहा था। बर्फीले पहाड़ रजत पर्वत बने शोभायमान थे। ऐसे अनुपम वातावरण में कैलास की सौन्दर्यपूर्ण निराली छटा का तो कहना ही क्या? ओझा जी और यह लेखक भयंकर शीत की परवाह न कर तम्बू से बाहर निकल कर बड़ी देर तक उसके शिखर को निहारते हुए नहीं अघाये। ऐसी मदभरी प्रकृति की सुषमा सुधा हमें विस्मय-विमुग्ध करके मतवाला बना रही थी। दाता द्वारा बुलाये जाने पर हमारा यह स्वप्न भंग हुआ और हम तम्बू में लौट गये।

रात्रि के नौ बजे दाता ने फरमाया, यहां का प्रेरक परिवेश पवित्र शान्त मधुर और अद्वितीय आनन्ददायक है। दाता' की दयादृष्टि से ही तुम सब को यहां आने का सुयोग और सौभाग्य प्राप्त हुआ है, अतः आओ दाता के नाम की रसप्रेम हरेहर करें।'

तम्बू में लालटेन की मध्यम रोशनी में हम सब एक कम्बल बिछाकर बैठे जब कि दाता मृगछाला के आसन पर विराजमान हुए, और–

'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा।
हरे दाता हरे राम राधे गोविन्दा॥'

का संकीर्तन करने लगे। उस समय स्वामी बालानन्द जी सन्यासियों के तम्बू में ही थे। कीर्तन करते करते ही दाता ने पास में रखी हुई अपनी करतालें जिनमें

पीतल के छोटे छोटे घुघुरू लगे हुए थे, उठाकर दोनो हाथो मे लेकर धीरे धीरे वजाने लगे। शीघ्र ही रंग जमकर आनन्द-रस वरसने लगा। उस अलमस्ती मे भाव-विभोर होकर दाता नृत्य करने लगे। कीर्तन करते हुए हम भी टकटकी लगाकर उन्हे नाचते हुए देखने लगे। तभी प्रेम, आनन्द और रसोद्रेक का एक एसा मनोहारी झोका आया कि हम तन-मन की सुधि भूलकर अपने आपको खो वैठे। हमारे नेत्रों से अश्रुओ की एक अटूट धारा वह चली। हमारी दृष्टि दाता के नृत्य पर स्थिर हो गई। मुख से कीर्तन के वोल सहज मिठास के साथ झरने लगे। चारो ओर अलौकिक प्रेमानन्द का साम्राज्य सजीव हो उठा। करताल वादन और नृत्य की गति में जैसे जैसे तेजी आयी वैसे वैसे ही हमारे कीर्तन के वोल भी आरोहित होते गये। तभी अकस्मात् पूरा तम्वू दिव्यप्रकाश से जगमगा उठा। हमारे अन्दर और वाहर का समस्त अंधकार नष्ट हो गया। हमारा अन्तःकरण गंगाजल की भॉति निष्कलुष और पूर्णिमा की चॉदनी की भांति दिव्य कान्ति से परिपूर्ण हो गया। ऐसे प्रेमोन्माद की अवस्था मे हम गोपी-भाव मे प्रवृष्ट हुए। पियामिलन की चाह तीव्र से तीव्रतर होने लगी। साथ ही कसक, दर्द, वेचैनी, व्याकुलता और आतुरता भी वढ़ने लगी। पीड़ा और माधुर्य की मनोरम धारणा कभी अलग अलग, तो कभी साथ साथ और कभी कभी दोनो एक साथ होकर हमे कभी रूलाने, तो कभी हंसाने और कभी कभी हंसते हुए रूलाने या रूलाते हुए हंसाने लगी। इस प्रकार यह ऑखमिचौनी की लीला चालू हुई।

और तभी हमे एक कर्णप्रिय सुमधुर-नैसर्गिक संगीत निनाद की उन्माद प्रदायिनी दिव्य वाद्यध्वनि सुनाई पड़ी। करतालो की ताल और खड़क, घुंघुरू की रिमझिम, पदचाप की मनोहरता, वासुरी की मधुरिमा, वीणा की कसकभरी झन-झनाहट, सारंगी की सनसनाहट, तवले की तिड़क-धम और डमरू की डिगड्-कुडम-डम-डम, झांझो की झंकार, कोयल की कूक और पपीहे की हूक का अद्भुत संमिश्रण था। उसमे। संकीर्तन संगीत तो चालू था ही। उसमे वह ध्वनि मिलकर हमारी आत्मा में नैसर्गिक सुवास हिलोरे लेने लगी। तभी हम क्या देखते है कि नाचते नाचते दाता का रूप परिवर्तित होकर अव शिवरूप हो गया है। अव मॉ पार्वती भी शिव का साथ देने हेतु प्रकट हुई है। दोनो पूर्णानन्द में मग्न होकर नृत्य कर रहे है। कुछ समय पश्चात् शिव-पार्वती के स्थान पर हठात् श्रीकृष्ण और राधा रूपान्तरित हो गये। रासलीला चालू है। तभी दाता ने करतालो को एकदम जोर से खनखनाकर वजा दिया। इसके साथ ही हमारे प्रेमावेग में एक झटका सा लगा और वह आनन्ददायक दृश्य लुप्त हो गया। हमे स्मृतिवोध होता है तो दाता करतालों को अन्तिम तौर पर झनझनाते हुए एकदम अवरोहण की सामान्य गति में आ जाते है। इस प्रकार धीरे धीरे यह संकीर्तन, संगीत और नृत्य समाप्त हुआ।

हम रोते रोते दाता के श्रीचरणो में साष्टांग प्रणाम करते हुए लौटने लगे। दाता प्रसन्नमुद्रा में थे। उनके नेत्र मुकुलित थे व अधरो पर मन्द मन्द हास्य खेल

रहा था। उनकी झुकी हुई अभयदायी मुद्रा ने हमें आज अलख खजाना लुटा दिया था। महानद के इस पर्वादसर पर यह भजन हमारे मन और मस्तिष्क में रवत ही कौंध गया कि हमें इन्हीं भावों के अनुरूप ही तो दर्शन हुए है।–

"आज तो कैलास में बाज रहा डमरू
नाच रहे भोलेशकर बाध कर घुघुरू।"

यह आनन्ददायक कीर्तन लगभग दो घण्टों तक चला।

हम सभी उस कम्बल पर सो गये। उस दिन शीतलहर गजब की थी। रात्रि में जब यह लेखक तम्बू के बाहर निकला तो पूरा शरीर कम्बल से ढका होने पर भी हवा का ऐसा झोका लगा कि नाक जलकर जामुन की तरह पूरा काला हो गया।

सन्तमण्डली द्वारा आत्मसमर्पण

प्रात सूर्योदय पर दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर तम्बू में बैठे ही थे कि दूसरे तम्बू से सन्तमण्डली आती हुई दिखाई पडी। उन्हें आते देखकर दाता तम्बू के बाहर निकले। पीछे पीछे हम लोग भी बाहर आये। उन्होंने आते ही दण्ड की तरह भूमिष्ठ होकर दाता के श्रीचरणो में प्रणाम किया। हमारे विस्मय का कोई ठिकाना नही रहा। जो लोग कल तक दाता की ओर आँख उठाकर देखने में भी अपमान का अनुभव करते थे वे आज इतनी दीनता दिखा रहे है? दाता ने सहज सरलता से उनका हार्दिक स्वागत करते हुए फरमाया, हम लोग गृहस्थी के जजाल में फसे हुए पामर जीव है– बस भरोसा है तो एकमात्र मेरे दाता का जो अनन्त दयालु है। वह हमारे कर्मों की ओर नहीं देखता है। वह तो हमें शिशुवत उठाकर वात्सल्यभाव से प्यार करता है। हम तो उसके अबोध बच्चे है जो जप तप, ज्ञान, ध्यान सेवा-आराधना उपासना व्रत नियम आदि कुछ भी नहीं जानते। यह तो उसी की महानता है कि गन्दगी से भरे हुए मेरे राम जैसे शिशु को उसने मातृवत गोद में उठा रखा है। आप लोग सत है सन्यासी है अत पूज्य है और है वन्दनीय।

दाता का प्रसकेत समझकर इस लेखक ने तुरन्त कुछ सूखा मेवा और मुद्रायें उस दल के नेता के सामने भेंट की। तब दाता ने निवेदन किया इन्हें आप सन्त भगवान शबरी के बेर, सुदामा के तदुल और विदुरानी के छिल्को की भांति अंगीकार करने की कृपा करें।'

दल के नेता के मुख से तब सहज स्वीकारोक्ति इस प्रकार निकल पडी 'हम लोग आपको शुरु से ही ढोंगी और पाखण्डी साधु समझते आये है। कल आप लोगों ने जब स्नान किया तब कुछ विचार अवश्य बदले। रात्रि को जब आप कीर्तन कर रहे थे उस समय आपका पूरा तम्बू प्रकाश से जगमगा रहा था। उसमें

तड़ातड़ बिजलियाँ चमक रही थी। उस कीर्तन को सुनने मात्र से हमें इतना आनन्द हुआ जिसका वर्णन करना असंभव है। हम भी प्रातः और सायं कीर्तन करते है किन्तु हमे आनन्द की अनुभूति कभी नही हुई। उस समय हम आपके पास आना चाहते थे किन्तु तेज वर्फीली हवा ने हमे रोक लिया। अतः मन मसोस कर रह जाना पड़ा। अब हम सब लोग आपकी शरण मे आये है। कृपया हमे शरण दे।"

दाता ने उन्हे भली प्रकार सद्गुरु की महत्ता समझा कर सान्त्वना देते हुए कठिनाई से यह कहते हुए विदा दी कि आप लोग सन्यासी है। आप लोगो को अपने आश्रम के अनुकूल ही आचरण करना चाहिये। यही आप लोगो के लिए हितकर है।

प्रसंगवश उनमे से एक सन्यासी ने वर्षो बाद भी पिण्ड नही छोड़ा और नान्दशा पहुँच कर शिष्य बनना चाहा। दाता ने उसे मधुर किन्तु कटुसत्यपूर्वक यह कहते हुए समझाया, "सन्यासी बनने के इतने वर्षो बाद भी तुम्हारे मन और बुद्धि का दर्प और द्वन्द्व अभी तक समाप्त नही हुआ है तो फिर तुमसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि तुम यहाँ भी कुछ निहाल करोगे? यहाँ तो केवल आदेश को ही प्रमुखता देनी होती है जो तुम्हारे वश की बात नही। जाओ! आज तक जो उपदेश गुरु से मिला है उसे प्राण रहने तक पालन करो, तुम्हारे लिए यही श्रेयस्कर है।"

अस्तु! उनके जाने के बाद हमे आज्ञा हुई, "कैलास और मानसरोवर की परिक्रमा करना तुम लोगो के लिए आवश्यक नही है। वापिस प्रस्थान की व्यवस्था करो।" हमारे लिए तो दाता के श्रीचरण ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है।

दिनांक १७–६–५४ को प्रातः वहाँ से रवाना होकर दूसरे दिन तगलाकोट पहुँचे। वहाँ दाता एक सिन्दूर लगे पत्थर पर बैठ गये। हमारे मार्गदर्शक ने बताया कि वहाँ के निवासी दाता को ऐसे बैठे देखकर आश्चर्यचकित हो गये कि यह कैसा लामा है जो उनके देवताओ से डरता भी नही।

स्वामी बालानन्द जी मानसरोवर पहुँचते पहुँचते हमसे बहुत असन्तुष्ट हो गये थे। वे हमसे रूठ से गये। फिर मानसरोवर मे स्नान न कर पाने से भी वे क्षुब्ध थे। जिन सन्तो से उन्होने सम्पर्क साधा, जब वे भी दाता के चरणो मे आ गिरे तो वे हीन भावना से ग्रस्त हो गये। यहाँ उन्होने दाता से निवेदन किया कि उन्हें दिल्ली मे आवश्यक कार्य है अतः वे जल्दी जाना चाहते है। आज्ञानुसार यात्रा-व्यय देकर उन्हें सहर्ष सादर विदाई दे दी। इस प्रकार लौटते समय केवल पाँच व्यक्तियो के ही रहने वाली समस्या का सहज ही हल निकाल कर दाता ने हमारे मन में जो संत्रास व्याप्त हो गया था उसका अंत किया। तत्पश्चात् लीपू दर्रे को पार करते हुए काला पानी पहुँचे। लीपू दर्रे को पार करते समय दाता ने एक व्यापारी के प्राणो की रक्षा की।

२०-६-५४ को गरभ्याग पहुच वहा के सामान कुली पशुओ और मार्गदर्शक को वहां छोड़े और बून्दी पहूँचे। भाग [redacted] घोड़े के बछिया का पैर फिसला और वह नीचे गिरने लगा। दाता का ध्यान उधर गया और उनके मुख से सहसा निकला 'ठहरो' ! देखते ही देखते वह पलट कर मार्ग पर आ गया। उसके प्राणो की रक्षा हुई। मार्ग में एक छोटासा वेग मतिवाला नाला आया। उस पर जाने हेतु केवल एक लकड़ी का लट्ठा रखा था, जो पतला व काई से युक्त तथा गीला था। फिसलने का खतरा था। कुछ समय रुक कर दाता ने स्थिति का जायजा लिया और पहले स्वय उन्होंने ही पार किया। तदपश्चात दूसरे किनारे से लकड़ी पकड़ा कर एक एक को पार कराया। हमें महसूस हुआ कि भगवान अपने ऐसे भक्तों को जो उनका आश्रय प्राप्त कर लेते हैं, इसी प्रकार अथाह भवसागर म से बेड़ापार लगाते होंगे।

इसी प्रकार अब गिरे-अब गिरे की स्थिति में से उबारते हुए प्रभु ने हमें कालीगगा की पुलिया पार करायी। मालपा से आगे बढने पर नैसर्गिक प्राकृतिक सौन्दर्य ने दाता को बरबस वहां ठहरा लिया। अत कुछ घण्टे वहा बिता कर आगे बढे। सब से आगे दाता चल रहे थे। अचानक पहाड़ के ऊपरी सिरे से एक भारी पत्थर दाता के ठीक सामने चार-पाच फुट की दूरी पर मार्ग में गिरते हुए कालीगगा में लुढक गया। हम सब ठिठककर खड़े रह गये। कुछ ही देर में हमारे आगे और पीछे मिट्टी व पत्थर तेजी से गिरने लगे। उस समय हमारी स्थिति नाजुक हो उठी। आगे और पीछे खतरा। जाएं तो कहां जाएं। किन्तु दाता की कृपा से हम सुरक्षित ही रहे। उस पाषाणवर्षा में भी हम सुरक्षित रह सके यह दाता की ही कृपा थी। मार्ग में लगभग सात सौ फुट की ऊँचाई से गिरते हुए जल के झरने पर हमने स्नान का आनन्द लिया।

जिपती मे हमें गरभ्याग पर्वत पर चढने हेतु आये हुए इटालियन पर्वतारोही दल के वृद्ध मुखिया से मिलने का सयोग मिला। उसके तीन जवान साथी उस अभियान में मारे जाने के कारण वह अत्यधिक दु खी, उदास और निराश था। वह दाता के पास आकर फूट-फूट कर रोने लगा। तब उन्होंने उसे अनेक दृष्टात देते हुए जीवन की निस्सारता समझाकर धैर्य बधाया।

प्रभु की कैसी सुनियोजित लीला है कि कोई पैदा तो कहीं होता है और अन्त कहीं और पाता है।

"कहाँ जन्मे कहाँ ऊपने कहाँ लडाये लड्डु।
न जाने किस खड्डु में जांय पड़ेंगे हड्डु॥"

दिनाक २३-६-५४ को जिपती से गोरक्ष पहाड़ व्यास नाला आदि के दर्शन करते हुए, स्ट्राबेरी खाते हुए सिरधम पहुँचे। दूसरे दिन खेले के पास दो पहाड़ियो के मध्य वेग से बहता हुआ चौड़े पाट वाला नाला आया जिसे पार करने हेतु एक

लट्ठों की पुलिया थी। जाते वक्त उस पुलिया पर सहारे के लिए दो रस्सियां बंधी थी किन्तु अब की बार वे दोनो गायब थीं। पहले वहां तीन लठ्ठे थे जिसमें से भी एक गायब। नाले का वेग इतना तेज था कि पानी की फुहारें उन लट्ठों से भी ऊपर उठ रही थी। नाले की चट्टानो से टकराते हुए पानी की भीषण प्रलयंकारी कर्कश ध्वनि और वह ऊपर-नीचे झूलती, लचकती, लरजती गीली गीली पुलिया साक्षात् मृत्युमुख सी विकराल दिखाई पड़ रही थी। हमारे सामने उस पुलिया को पार करते हुए एक साधु जो बड़ी मुश्किल से दो-तीन कदम ही चला होगा कि चक्कर खाकर नीचे नदी में जा गिरा और काल का ग्रास बन गया। इस प्रत्यक्ष देखी घटना ने हमारे भय को द्विगुणित कर दिया। हमारी मति और गति सांप-छछूंदर की सी होकर विमूढ़ हो गई। पार करे तो काल का सामना और पार न करें तो वहां कितने दिन बैठे रहें। हम कुछ देर किनारे पर बैठकर उस भयंकर दृश्य को जो हम में मृत्यु की काली छाया रेखांकित कर रहा था, देखते रहे। अन्त मे दाता अपने स्थान से उठे और उन्होने हमे यह निर्णय सुनाया, "मेरा राम पहले इसको पार करता है। यदि नाले मे गिर पडूं तो तुम लोग फिर नाले को पार मत करना, वापिस गिरधंग चले जाना। भविष्य में जब यह पुलिया तैयार हो तभी पार करना।" हम लोगो से न तो दाता को रोकते बना और न पुल को पार करने को कहते बना। दाता पुलिया की ओर आगे बढे, उसपर चढे और शनैः-शनैः कुशल नट की भांति संतुलन रखते हुए आगे बढ़ने लगे। लकड़ी के लठ्ठे उनके शरीरभार से लचक-लचक कर ऊपर-नीचे झूलने लगे। हमारे हृदय आशंका से परिपूर्ण थे। हम जड़वत खडे खडे देख रहे थे। पल-पल में और पग पग पर दाता के गिर पडने की आशंका हमें निष्प्राण बना रही थी। दुःख की घड़ी में ही भगवान याद आते हैं। हम उस समय जोर जोर से दाता का नाम रटने लगे। जब दाता ने पुलिया पार कर ली तब हमारे जी मे जी आया और प्राणों में श्वास का संचार हुआ। कुछ समय वहां खडे रहने के पश्चात् उन्होने अपना दाहिना हाथ कंधे की सीध में कोहनी तक फैलाकर उसे सीधा खड़ा किया तथा सम्राट को यों निर्देश दिया, "राजा! इस हथेली की ओर देखते हुए पुलिया पार करो। खबरदार! न तो नीचे की ओर, न ही अगल-बगल देखना।" इतना सुनते ही सम्राट में साहस का संचार हुआ। वे उठे और निर्देशानुसार पुलिया पार की। इसी तरह कल्याणसिंह और सोहनलाल जी ने पुलिया पार की। अन्त मे मेरी बारी आयी। आदेश पाकर मैं भी आगे बढ़ा। पुलिया पर चलना सरल नहीं था। वह झूले की तरह ऊपर-नीचे झूल रही थी और पग-पग पर गिरने का खतरा था। पानी की फुंहारें पैरों व नेकर को गीला कर रही थी। इधर-उधर, ऊपर-नीचे देखने की सख्त मुमानियत। एकमात्र दाता की हथेली को लक्ष्यवत देखने की ताकीद। गुरु द्रोणाचार्य द्वारा कौरवों और पांडवो की धनुर्विद्या परीक्षा के समय पेड़ की डाल पर लटकी हुई चिड़िया की आंख बेधने का दृश्य सहसा क्षणमात्र में ही विद्युत प्रवाह की सी चपलता के सहित स्मृतिपटल पर उभर आया। दृष्टि हथेली के



नाले की टूटी पुलिया

मध्य केन्द्रित कर पुलिया पर चल पड़ा। आदेश से लक्ष्य एक हुआ और मैंने आसानी से पुलिया पार की। इस प्रकार दाता की कृपा से इस बड़े संकट से मुक्ति मिली।

ऐला में रात्रि विश्राम कर दिनांक २५-६-५४ को धारचूला में श्रीकृष्णानन्द रामदत्त खरकवाल के यहाँ इस बार भी ठहरे। वहीं हमें डाक से प्राप्त पत्र मिले। दाता ने सभी पत्र खोलकर पढ़े। हम व्यवस्था करने में व्यस्त थे। दाता ने मुझे बुलाकर बताया कि पत्र में मेरे लिए कुछ सूचना है। पत्र पढ़ने से ज्ञात हुआ कि मेरे छोटे पुत्र की मृत्यु हो गई है। मुझे तनिक सा दुःख हुआ। तुरन्त ही दाता के एक दिन पूर्व के शब्द मेरे कानों में गूंज उठे और मैं सयत हुआ। तभी दाता ने कृपापूर्वक समझाते हुए कहा 'संसार में जो कुछ है वह सब दाता का ही दिया हुआ है। वही सबका मालिक है। हमारी सेवा और सुविधा हेतु दाता हमें घर धन-धान्य पुत्र-कलत्र, परिजन आदि देता है। किन्तु हम स्वार्थ और मोह के वशीभूत उन्हें अपना समझ अधिकार जमा लेते हैं और देने वाले को भूल जाते हैं। यही सब दुःख का कारण है। उधार ली हुई वस्तु तो लौटानी ही पड़ेगी। अमानत में खयानत करने का क्या हक है। यह संसार तो एक सराय है जहाँ एक आवत है, एक जावत है का तांता सदा लगा ही रहता है। यहाँ तो कूच की नौबत सदा बजती ही रहती है। किसी का मुकाम यहा कायम नहीं रहता।' दाता ने अर्जुन की अभिमन्यु के प्रति मोह की कथा सुनाई जिसमें अभिमन्यु ने अर्जुन को फटकारते हुए कहा था कि कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता?

दाता के उदबोधन ने संजीवनी का सा प्रभाव दिखाया। मेरा मोह नष्ट हुआ। धन्य हैं ऐसे प्रभु जिन्होंने मोह-निद्रा में मग्न इस सोती आत्मा को सही अर्थों में ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय बना दिया।

धारचूला से बलकोट होकर मार्ग की सुन्दरता का आनन्द लेते हुए आगे बढ़े तब एक चढ़ाईपर सम्राट थक कर गिर पड़े। दाता व अन्य आगे चल् गये थे। मैं सम्राट के साथ था। मैंने उनके हाथ-पैर दबाये। ज्यों त्यों कर वे खड़े हुए और धीरे धीरे चलने लगे। त्रिवेणी पहुँचने में हम लोगों को काफी समय लगा। वहाँ दाता हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। संध्या का समय निकट था और तीन मील की दूरी अभी पार करनी थी। वर्षा होने की आशंका थी। दाता तेज चलने लगे। थके हुए राजा साहब भी दाता की कृपा से तेज चलने लगे। हमें आश्चर्य हुआ कि उनमें इतनी स्फूर्ति कहाँ से आ गई। हम तीनों दौड़ रहे थे मगर फिर भी उन दोनों को पकड़ नहीं पा रहे थे। तीन मील की दूरी बीस मिनिट में हो पार हो गई। गिरिजा पहुंचते पहुंचते तेज वर्षा हुई। वहाँ के लोगों का हमारे साथ सहयोग नहीं रहा क्योंकि स्वामी बालानन्द जी ने उन्हें हमारे विरुद्ध भड़का दिया था। किसी ने हमें स्वच्छ पानी का स्थान ही नहीं बताया। नदी के रेत मिले पानी से ही दाल और रोटी बनाई। उसे प्रसाद समझकर खाया भी। सोने का

स्थान भी गीला था। प्रात: जब पुलिया पार की तो पास ही शुद्ध पानी का झरना था। तत्काल ही स्वामी जी की करतूत समझ में आयी। रात्रि विश्राम कलानीछीना में करते हुए अगले दिन पिथोरागढ पहुँचे।

स्वामी जी अपनी स्वार्थपूर्ति न होने के कारण, मन में असन्तुष्ट होकर ही विदा हुए थे अतः आगे आगे हमारे विरुद्ध विष वमन करते जा रहे थे। धारचूला में उन्होने श्रीकृष्णानन्द रामदत्त जी को बहकाया। गिरज्या में होटलवाले को सहयोग देने से मना किया। पिथौरागढ़ मे हरिवल्लभ जी को भी भरमाया। इसलिये हम उनके घर न जाकर सराय मे ही ठहरे। हमने हरिवल्लभ जी को अपने पहुंचने की सूचना भिजवा दी। जैसा हमारा अनुमान था वैसा ही हुआ। पहले तो हरिवल्लभ जी ने उपेक्षाभाव दिखाया किन्तु कुछ समय बाद उन्हें होश आया। वे दौड़े हुए सराय मे आये। उन्होने बालानन्द जी ने जो कुछ कहा वह बताते हुए अपनी धृष्टता की क्षमा मागी। दाता तो दयासागर ही है! उन्होने उनको न केवल क्षमा ही किया वरन् उनके आतिथ्य को स्वीकार कर उनके मकान पर पधार गये।

अगले दिन प्रात: ही बस द्वारा चम्पावत होते हुए टनकपुर पहुँचे। मार्ग विकट होने से बस के यात्री कीर्तन कर रहे थे परन्तु जैसे ही बस सराय मे पहुँची बस के यात्री कीर्तन करना भूलकर फिल्मी गाने गुनगुनाने लगे। मानव कितना स्वार्थी है कि संकट से बचते ही अपने दाता को इतना शीघ्र भूल जाता है।

अगले दिन अमावस्या थी व सूर्यग्रहण था। टनकपुर से रेल द्वारा दिल्ली आये। गरम लू के थपेड़ो ने शरीर को झुलसा दिया। कहाँ तो हिमालय का शान्त और सुखद वातावरण और कहाँ मैदान की गर्म हवा। ज्यो ज्यो हम घर की ओर बढ़ रहे थे त्यो त्यो हमारे मन जो इस यात्रा मे अब तक निर्द्वन्द बने हुए थे, सासारिक मोहमाया मे पुनः लिप्त होने लगे।

रेल में बैठे हुए हमारे मनोभावो को भांपते हुए दाता ने कहा, "मेरा दाता कितना दयालु है। उसने पगपग पर हमारी कैसी रक्षा की है, वह क्या भूलने की बात है! मनुष्य को सदा अपनी मृत्यु को याद रखना चाहिये जिससे वह कुकर्मो से बच सके। मगर मानव मन का यह कैसा अनोखा स्वभाव है कि वह भगवान और मृत्यु दोनों को ही भुलाकर मायामोह की उधेड़-बुन मे सदा लगा रहता है। जैसे ही संकट की घड़ी टली वह अहंकार में फूलकर कुप्पा हो जाता है। वह समझने लगता है 'हम चौडे और बाजार संकरा।'

इसी प्रसंग मे दाता ने पाण्डवो के वनवासकालीन युधिष्ठिर-यक्ष का संवाद सुनाया। यक्ष के अनेक प्रश्नो मे एक प्रश्न यह भी था, "संसार मे सबसे आश्चर्यजनक क्या बात है?" युधिष्ठिर का उत्तर था, "मनुष्य यह जानता है कि उसे मरना है परन्तु फिर भी वह मृत्यु को भूलकर संसार मे आसक्त हो जाता है, यही सबसे आश्चर्य की बात है।"

'अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम् ।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ।।

इस संवाद के बाद दाता ने राजस्थान की निम्न काव्योक्तियां सुनाई –

"निस दिन प्राणीमात्र जो, जम के आलय जात ।
स्थिरता चाहत पाछली, यह अचरज की बात ।।"

"जुग देखो जावे है, दुनिया आँख्या देखता ।
अचरज मोहि आवे है, मरणो क्यों भूले मिनख ।।"

भाई श्री समुद्रसिंह जी शेखावत को दिल्ली स्टेशनपर ही बुला लिया गया था । उन्हें दर्शन देकर दाता ने हम लोगों को साथ लेकर जयपुर के लिए प्रस्थान किया । वहां श्री रामकृष्ण शुक्ल के यहां एक दिन ठहर कर दाता अजमेर और पुष्कर होते हुए नान्दशा लौट गये । दाता के लौटने पर सभी अतीव प्रसन्न हुए । यात्रा की सफल समाप्ति के उपलक्ष्य में तीन दिन का अखण्ड कीर्तन हुआ व आनन्द के साथ ही साथ तीनों दिन प्रसाद का भी वितरण हुआ । जब इस यात्रा की स्मृति आती है तो वह अलौकिक आनन्द और नैसर्गिक सुषमा मन में और आँखों के सामने नाच उठती है । वास्तव में –

मूकं करोति वाचालम् पंगु लंघयते गिरिम् ।
यत् कृपा तद् अहम् वन्दे, परमानंद माधवम् ।।

o o o

समागम-नीमराणा

राजस्थान के राजधरानों मे जन्मोत्सव मनाने की परम्परा रही है। इसी क्रम मे नीमराणा के महाराजा श्री राजेन्द्रसिंह जी ने दिसम्बर सन् १९५४ मे जन्मोत्सव के अवसर पर दाता से भक्तमण्डली सहित नीमराणा पधारने हेतु निवेदन किया। दाता तो भक्तवत्सल है ही। सच्चे प्रेम से की गई कोई भी प्रार्थना या पुकार उनके द्वारपर ठुकराई नहीं जाती। उन्होने हँसते हँसते स्वीकृति प्रदान कर दी। तदनुसार राजा साहब ने सभी सत्संगी बन्धुओ को निमंत्रण पत्र प्रेषित कर दिये। जन्मोत्सव दिनांक १९-१२-५४ का था।

अनेक सत्संगी बन्धु नीमराणा के लिये चल पडे। जोशी जी ने अजमेर से एक टैक्सी दाता को लेने नान्दशा भेज दी जिसमे श्री दाता १७-१२-५४ को अजमेर पधार गये। वहाँ कई लोग पूर्व मे ही पहुँच चुके थे। रात्रि विश्राम अजमेर मे कर प्रातः ही रेल द्वारा नीमराणा के लिए प्रस्थान हुआ। रेल फुलेरा ८-३० पर पहुँची। वहाँ से गाड़ी बदलनी थी अतः डेढ घण्टे का समय मिला।

गुदड़ीबाबा से मिलन

दाता प्लेटफार्म पर घूम रहे थे कि हठात् उनकी दृष्टि गन्दे पानी के एक गड्ढे की तरफ गई। उस गड्ढे मे गन्दे पानी से सने हुए कपडो सहित एक पागल व्यक्ति खड़ा था। उसके कपडे, गूदड़ी और बालो की लटो से दुर्गन्ध युक्त कीचड़ की बूंदें टपक रही थी। बड़ी घृणास्पद स्थिति थी। देखनेवाले तो उसे पागल ही समझे किन्तु गूदड़ी के लाल ऐसे ही छिपे रहते है। कोई पारखी ही उन्हें पहचान पाता है। प्रथम दृष्टिपात में ही दाता की पैनी नजर में उस व्यक्ति की महानता छिपी न रह सकी। उन्होने उसे तुरन्त पहचान लिया कि वह प्रसिद्ध सन्त गूदड़ी बाबा है। उसे लाने हेतु जोशी जी को भेजा। उन्होने गड्ढे के पास जाकर नमस्कार किया। नमस्कार का जवाब देना तो दूर उसने उनकी तरफ झाका भी नहीं। तब दुबारा उन्होने जोर से पुकारा और प्रणाम किया। उसने उनकी तरफ देखकर बन्दर की तरह मुंह बनाया, दांत किटकिटाये और क्रोध की विचित्र मुद्रा बना ली मानो मारने को उद्यत हो। जब जोशी जी ने बताया कि दाता पधारे है और वे उन्हें बुला रहे है तब वह उस गन्दे पानी से बाहर निकला और मस्ती से प्लेटफार्म की ओर चला।

इस अन्तराल में दाता रेल के डिब्बे में जा विराजे। वह बिना कुछ बोले ही प्लेटफार्म पर चल रहा था। बाबा के पैरो में उस हालत मे भी कुछ घड़िया बंधी थी जो बुरी तरह कीचड़ से सनी हुई थी। पूरे वस्त्रो से कीचड़ टपक रहा था,

मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। जहा जहा से होकर वह आया वहाँ वहाँ कीचड का एक रेला सा बन गया। वह उसी डिब्बे के पास आकर खडा हो गया जहाँ दाता बिराजे हुए थे। वह बिना किसी इशारे के दाता की ओर विस्मयमिश्रित हर्षपूर्वक अपलक नयनो से देखने लगा। तब दाता ने उसे हाथ जोडकर 'जय शकर' किया जिसके प्रत्युत्तर मे पलकें झुकाकर शरमाते हुए मुस्करा दिया बोला कुछ भी नहीं। अनेक सत्समियो ने उसे चारो ओर से घेर लिया। कुछ दर्शक भी एकत्रित हो गय। उसने वहाँ खडे लोगो से सकेत करते हुए रुपये मागे। कइयो ने उसे नोट निकाल कर दिये। सभी दिये हुए नोटो को कीचड सने हाथो से मुट्ठी में दबाता रहा। गोविन्दगढ के ठाकुर श्री करणसिंह जी ने जब से एक रुपये के नोट की गड्डी निकालकर उसमें से कुछ रुपये देने चाहे तो उसने पूरी गड्डी ही लेने के भाव प्रकट किये। उन्होंने पूरी गड्डी ही उसे थमा दी। इस प्रकार देखते देखते उसने सकडो रुपये एकत्रित कर लिए। इसके बाद वह कुछ देर तक दाता की ओर कातरदृष्टि से देखता हुआ खडा रहा। दाता भी मुस्कराहट के साथ उसी की ओर निहारते रहे। दोनो के बीच सभाषण कुछ भी नही हुआ। मौन सत्सग नैनो के माध्यम से ही हुआ।

कुछ देर ठहर कर वह वापिस रवाना हो गया। प्लेटफार्म पर अनेक गरीब व्यक्ति भी थे। वह गरीबो के हाथो में हाथोहाथ रुपये थमाता हुआ वापिस खाली हाथ उसी गड्ढे की ओर चला गया। ठण्डा वातावरण होते हुए भी मस्ती से ठण्डे पानी में जाकर खडा हुआ। गजब की मस्ती। प्रभु के प्रति उसका दीवानापन देखने को मिला और देखनेवालो को आनन्द आ गया।

गाडी चल दी पर बहुत देर तक दाता बाबा के बारे में ही बताते रहे। दाता ने बताया 'इस बाबा की गति परमहस की है। यह परमानन्द बाबा की तरह उच्चकोटि का सत है जिसकी नजर में गन्दा पानी और गगाजल में कोई भेद नही। ऐसी अभेद दृष्टि साधना की उच्चावस्था का प्रमाण है। जगत वाले इन्हें न जान सकें इसके लिए सन्तजन आवरण डाल लेते है। कोई इनके पास जाता है तो गालियाँ देते है और पीटने की मुद्रा बना लेते है। इनकी गालिया या मार खा कर भी जो ठहर जाता है वह इनका कृपापात्र बन जाता है। जो लोग उसे पहचान चुके है और निरतर उसकी खोज में रहते है उन्हें भी वे आसानी से नहीं मिलते। क्योकि वे एक जगह नहीं टिकते है। वे निरन्तर गरीबो और अपाहिजो की सेवा करते ही फिरते है।" इस तरह दाता ने उस गुदडीबाबा की खूब प्रशसा की। इसी प्रसग में दाता ने एक महान सन्त की कथा इस प्रकार सुनाई—

एक दिन एक सन्त महापुरुष विचरण करते हुए एक बडी बस्ती में पहुँचे। बस्ती के अधिकाश वासियों के हृदय में प्रभु के प्रति प्रेमभाव था। वे साधु-सन्तों की सेवा में तत्पर रहा करते थे। ऐसे सिद्ध महापुरुष को अपने गाँव मे अनायास

ही आया देखकर भक्तजनो ने उन्हे चारो ओर से घेर लिया और लगे उनका भाँति भाँति से स्वागत-सत्कार करने और उनके प्रति भक्तिभाव दर्शाने। उनकी महानता से आकर्षित होकर वे लोग उनके शिष्य बनने को आतुर हो उठे। महात्मा एकान्तवास के प्रेमी थे। वे अपनी अलमस्ती मे वहाँ जा पहुँचे थे। ऐसी भीड़ और सेवा-सत्कार से उनका दम घुटने लगा, फिर भक्तो की शिष्य बनाने की जिद्द और हठधर्मिता ने तो उनकी रही सही कसर ही निकाल दी। शिष्य बनने की भीड़ से घबराकर, एक दिन जब सब लोग उनके पास इकठ्ठे थे, वे उठे और कमण्डल हाथ मे लेकर वहाँ से दौड़ पड़े। वह भीड़ भी उन्हे रोकने हेतु उनके पीछे दौड़ी किन्तु वे दौड़ते ही गये; दौड़ते ही गये। भीड़ भी पीछे पीछे दौड़ती रही, मगर कुछ ही देर मे लोग थक कर रुकने लगे। दो-तिहाई भीड रुक गई। शेष दौड़ते रहे किन्तु सन्त महाराज ने तो पीछे मुड़कर ही नही देखा; केवल दौड़ते ही गये। कुछ काल के उपरान्त उनमें से भी कई थक कर रुक गये। कुछ देर बाद शेष रहे व्यक्तियो में केवल पाँच ही उनके पीछे दौड़ते रहे।"

"सन्त महाराज ने अब पीछे मुड़कर देखा तो केवल पाँच व्यक्तियो को ही दौड़ते देखा। वे दौड़कर एक गन्दे पानी के नाले में जा घुसे; उसमे डुबकी लगाकर हाथ मे जल लेकर मुंह मे भरकर कुल्ले करने लगे। ऐसा करते देखकर पाँच व्यक्तियो मे से दो व्यक्ति उन्हें ऐसा घृणित कार्य करते देखकर लौट पड़े। तीन व्यक्ति फिर भी डटे रहे। उनकी उत्कट लालसा और अनुराग-वैराग्य देखकर उन्होने उन्हे समझाया कि जिस दिन तुम इस गन्दे पानी और गंगाजल को समभाव से ग्रहण कर लोगे तब ही परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की क्षमता प्राप्त होगी। कहना नहीं होगा अंत मे इतनी भीड़ मे से केवल तीन ही व्यक्ति उन महापुरुष के शिष्य बन पाये।"

"सोचो और समझो! इस कथानक का यह तात्पर्य कदापि नही है कि तुम अनजाने ही हर किसी पागल को अथवा सन्त को देखकर ही उसे भगवान और गुरु समझकर सर्वस्व लुटा दो। पहले कुछ शक्ति अर्जित करो ताकि तुम सच्चे और झूठे की पहचान कर सको। परमहंस देव श्री रामकृष्ण ने अपनी भक्त-मण्डली को कहा था कि साधु को रात में देखो और दिन मे देखो। पूरी पहचान करके ही उसके शिष्य बनो। हर किसी के सामने यदि तुम समर्पित हो जाओगे तो अपना सब कुछ गंवा दोगे लेकिन पावोगे कुछ भी नहीं।"

"सोच समझकर पूरी छान-बीन के पश्चात् ही किसी महापुरुष के शरणागत होना चाहिये। सच्चे भावो के मोती पिरोओ। सोडावाटर सा उफानी भावावेश काम का नहीं है। जैसे गुरु शिष्य की परीक्षा लेकर ही दीक्षा देता है उसी प्रकार सर्वप्रथम शिष्य को भी हर प्रकार से गुरु की क्षमता और शक्ति का आकलन करने के पश्चात् ही समर्पण करना चाहिये।"

'यद्यपि शिष्य सदगुरु की पहचान करने में सर्वथा अक्षम ही है तथापि उसके इस प्रयास को परम उपकारी सतगुरु देव क्षमा करते हुए अपनी अहैतुकी दया महर से कुछ ऐसे सकेंत और स्थिति उत्पन्न कर देते है जिससे शिष्य के मन में उनके प्रति सदभाव दृढ होते जाते हैं। उसकी मनोग्रन्थियां स्वत ही समाप्त होकर मन में अपूर्व शान्ति व्याप्त हो जाती है हृदय में प्रकाश जगमगा जाता है। तभी उसे समझना चाहिये कि वही उसका सही मुकाम है।

नीमराणा की ओर

फुलेरा से आगे रेल में भक्तिभाव सम्बन्धी सत्सग चलता रहा क्योंकि उस डिब्बे में सारे के सारे ही सत्सगी थे। रीगस, नीमका थाना आदि स्थानो पर होती हुई गाडी ठीक चार बजे अटली स्टेशन पर पहुँची और उसके अगले स्टेशन पर सब ही उतर पडे। दिल्ली से समुद्रसिंह जी मदनगोपाल जी आदि जयपुर व अन्य स्थानो के लोग पहले ही नीमराणा पहुँच चुके थ। राव साहब मसूदा श्री नारायणसिंह जी भी पधारे थे। बस द्वारा जाना था। मार्ग में कुछ गॉव ऐसे आये जिनके खण्डहरो को देखकर सन १९४७ की घटनाओं की याद ताजी हो आयी। यहाँ अहीरो और अन्य हिन्दुओ ने सैंकडो पठानो और यवनो को मौत के घाट उतारा था। कोई धर्म किसी को सताने और हिंसा करने का उपदेश नहीं देता। सभी धर्मो का उद्देश्य अपने ठिकानेपर पहुँचने का है। मूर्ख और अज्ञानी लोग ही अपने स्वार्थो की पूर्ति हेतु धर्म की आड लेकर ऐसे जघन्य अपराध करते है। अज्ञानी लोग झूठी भावना में बहकर स्वार्थी लोगों के बहकावे में आ जाते है और भोले-भाले निर्दोष प्राणियो की शान्ति भग कर देते है। इन विचारो से बस में बैठे लोगो के चेहरे तनिक मुरझा से गये।

नीमराणा में

शाम होते होते नीमराणा पधारना हुआ। राजा साहब और नीमराणा की जनता ने दाता एव भक्तमण्डली का भव्य भावभीना स्वागत किया। चारों ओर हर्ष और उल्लास का वातावरण था। नगर की गलियों में मकानों के झरोखो और छतों पर नरनारियों की अपार भीड दर्शनार्थ खडी थी जो बहुत देर से दाता के पधारने की प्रतीक्षा में आतुर सी हो रही थी। दाता के दर्शन करके सभी ने अपने भाग्य की सराहना की। कीर्तन करते हुए जुलूस के साथ दाता नगर में होते हुए बाहर टेकरी पर स्थित किले के विशाल महल में पधारे। 'दाता की जय' के निनाद से आकाश गूज उठा।

दाता व अन्य सभी के ठहरने की व्यवस्था महलो में ही की गई। नाश्ता भोजन व ठहरना आदि की व्यवस्था उत्तम थी। सेवा-सत्कार में तो मानो राजा साहब ने दिल ही निकालकर रख दिया।

रात्रि में महल के ही विशाल और सुसज्जित कक्ष में सत्संग का आयोजन हुआ जिसमे ग्रामवासी भी काफी संख्या में उपस्थित हुए। दाता का मर्मस्पर्शी प्रभावोत्पादक एवं कर्णप्रिय प्रवचन हुआ। अनेक ग्रामवासियो की दाता के प्रति आस्था दृढ़ हुई। अनेक दुःखी और रोगी व्यक्ति भी दाता के दरबार मे निःसंकोच उपस्थित हुए और उनके दुःख-दर्द तत्क्षण ही समाप्त हुए। प्रवचन के बाद कीर्तन हुआ। राजा साहब प्रेम-भक्ति से अभिभूत होकर करताले हाथ मे लिए मस्ती से नृत्य करने लगे। वे भावविभोर होकर सब अहंकार और शरीर की सुध-बुध भूल गये। नेत्रो से अश्रु बहने लगे। उनका शरीर भीमाकार है। उनके जैसे आकार का व्यक्ति पांच मिनिट भी नृत्य नही कर सकता। किन्तु दाता की उस समय महर की क्या दिव्य दृष्टि पड़ी कि उन्होने "सब कुछ खोकर सब कुछ पा लिया।" वे घण्टो नृत्य करते रहे। नारायणलाल जी कांकर कीर्तन करते करते भावविभोर होकर बेहोश हो गये। दाता के संकेत पर ही उनकी उन्मादावस्था दूर हुई और उनकी चेतना लौटी। कीर्तन मे अभूतपूर्व पूर्ण आनन्द और मस्ती रही। अनेक सत्संगियो को दिव्य दर्शन भी हुए। कीर्तन व नृत्य रात्रि के तीसरे प्रहर तक चलता रहा।

दूसरे दिन दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर दाता विजयबाग मे पधारे। वहां राजा साहब की माता जी थी। वही राजा साहब और रानी साहिबा को गौ सेवा करने का उपदेश दिया, "गृहस्थियों के लिए गौ सेवा सब से बड़ा तप है, जिसमें 'एक पन्थ दो काज' निहित है। स्वार्थ और परमार्थ दोनो ही सध जाते है। जीते जी जीवनभर गौ की मातृवत सेवा करना ही साधना का सहज सोपान मानते है। गरुडपुराणान्तर्गत मात्र गाय की पूंछ के सहारे वैतरणी पार करना तो प्रतीकात्मक सांकेतिक उपदेश है"।

महलो में राजा साहब का जन्मोत्सव सात्विक पूजाविधान सहित मनाया गया। सभी उपस्थित बन्धुओ एवं जनसमुदाय ने इस उपलक्ष मे उन्हें हार्दिक बधाई दी और उनकी दीर्घायु हेतु मंगल कामना प्रकट की। इस दिन दाता एवं अन्य लोगो का स्थान टीबों के मध्य बने हुए एक लम्बे चोडे कुंड में हुआ। वहां से बावड़ी देखने पधारे। इस बावड़ी का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। वापस आने पर दाता ने अनेक लोगो के कष्टो को दूर किया। उस दिन कुछ लोग आनन्द की तरंग में दाता के ध्यान में इतने लीन हो गये कि उन्हें दीन दुनिया की कोई खबर ही नही रही। रात्रि को सत्संग के अन्तर्गत कीर्तन, ध्यान और प्रवचन हुए। दूसरे दिन रात्रि मे जयपुर के कुछ सत्संगी दाता के सामने बैठकर उनकी अहेतुकी कृपाप्राप्ति की प्रार्थना करने लगे। दाता विनोद में उन्हें बहलाते रहे। दाता विनोद में भी सार की बातें इस प्रकार लपेट कर कहते है कि कोई विरला ही मुमुक्षुजन 'निहारगर' की भांति उस अमूल्य तत्व को ग्रहण कर पाता है। निहारगर वह व्यक्ति है जो गली-कूंचे में मिट्टी को खूब बुहारकर इकट्ठी कर

चलनी से छान-बीन कर बहुमूल्य, सोना-चादी अथवा सिक्के निकाला करता है। इस कार्य में परिश्रम खूब करना पड़ता है जब कि प्राप्ति राम-भरोसे ही होती है। राजस्थान के ग्रामीण अचलों में इस जाति के लोग पहले बहुधा देखे जाते थे किन्तु अब यह व्यवसाय धीरे धीरे विलुप्त सा हो गया है। कहा भी गया है –

"पडयो अपावन ठौर में, कचन तजै न कोय।"

दाता, साधु व साधक के लिए निहारगर' की तरह सक्तिसार को ग्रहण करना और निस्सार वस्तु का परित्याग करने पर सदा जोर देते रहते हैं।

इस प्रकार अपूर्व आनन्द लुटाते हुए दाता तीन दिन तक वहा बिराजे। राजा साहब व उनके कर्मचारियों ने आतिथ्य सत्कार से सभी का दिल जीत लिया। उनके आनन्द का अदाजा महज इस लेखक को कहे कथन से ही लगाया जा सकता है, भाई साहब! इस राजेन्द्र पर इतनी अपार कृपा है कि कुछ कहने में नहीं आता। किसी पर उनकी महर की बूद गिरती है किसी पर नल किन्तु मेरे पर तो महर का बम्बा ही गिर रहा है।'

चौथे दिन वहा से विदा हुए तो उन्होंने और वहा के निवासियों ने दाता और अन्य लोगों को मानो प्रेमाश्रुओ से भिगो ही दिया। वह दृश्य बडा भावविह्वल करने वाला था।

दादूपन्थी सन्त श्री गगादास जी से मिलन

नीमराणा से दाता कार द्वारा रवाना होकर अलवर पहुँचे। उस समय अलवर में जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री अमरसिंह जी राणावत थे। वे दाता के परम भक्त है। दाता उन्हीं के यहाँ ठहरे। अन्य सत्सगी नीमराणा से बस द्वारा आयें। बस मार्ग में ही खराब हो गई अत उन सभी को ठण्डी रात जगल में ही बितानी पड़ी। अग्नि के सहारे उन्होने रात्रि व्यतीत की। वे लोग प्रात अलवर पहुँचे।

उसी दिन शाम को चार बजे दाता प्रसिद्ध दादूपन्थी सन्त स्वामी गगादास जी महाराज के दर्शनार्थ श्री नन्दलालसिंह जी उपखण्ड अधिकारी के निवासस्थान पर पधारे। वे एक वयोवृद्ध सन्त थे जिनका आश्रम मारवाड़ क्षेत्र के नागौर जिले में 'पो' के नाम से विख्यात है। उनके और समुद्रसिंह जी के आग्रह पर ही दाता का अलवर पधारना हुआ था। इन दोनो महापुरुषों के मिलन का दृश्य परम सुखदायक एव हृदयहारी था। उन्होने एक दूसरे को राम राम कहते हुए नमस्कार किया और जब दाता उनके चरण स्पर्श करने लगे तो आनन्दित होकर उन्होंने उन्हें यह कहते हुए हृदय से लगा लिया "आप मेरे आत्मा राम हो।' दोनों के ही इस विनयशील आचरण से दर्शकों के हृदय में आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। सत्सग मण्डली ने जब स्वामी गगादास जी महाराज के चरण स्पर्श करते हुए

प्रणाम किया तो वे खिलखिलाकर हसते हुए कहने लगे, "वाह ! वाह ! कैसी प्यारी सुन्दर गाये (आत्माएं) है । कोई सीधी है तो कोई भोली भाली । जबकि कुछ गुस्सैल और मारकणी ! मारवाड़ी नागौरी गायो की तरह इनका रंग (स्वभाव) सफेद बुर्राक और निर्मल है ।" फिर दाता की ओर देखकर सांकेतिक मुस्कराहट के साथ बोले, "साथ मे लाठीवाला गोपाल ग्वाला भी खड़ा है, वह इन सबको घेर कर गौर (गो लोक) ले जावेगा ।" तत्पश्चात् नेत्र मूंद कर आत्मस्थ होते हुए बोले, "अब तक जितने भी अवतार हुए हैं, उनसे इस बार एक कला अधिक है ।" यह सुनकर उपस्थित लोग हंसने लगे और दाता भी हंसे बिना न रह सके । जब पिता श्री जयसिह जी ने बाबा के श्रीचरणो मे प्रणाम किया तो बाबा आत्मविभोर अवस्था मे सहसा कहने लगे, "धन्य हो नन्द बाबा ! तुम धन्य हो जो तुम्हें गोकुल का ऐसा प्यारा गोपाल मिला !" जब मातेश्वरी जी ने धोक लगाई तो बरबस ही उनके मुख से यह बोल फूट पड़े, "वाह रे राधा ! तूने कैसी तपस्या की है जो इन्हे पाया ।"

"राधा तू बड़भागिनी, कौन तपस्या कीन ।
तीन लोक के नाथ जो, सो तेरे आधीन ।।"

बाबा के इन सहज रहस्यात्मक कथनो से भक्तमण्डली बाबा और दाता की जयजयकार कर उठी । इसी परिपेक्ष्य मे दाता विह्वल होकर रसखान की प्रेमभाव भरी काव्योक्तियां दुहराने लगे । अन्त में प्रवचन का समारोह करते हुए दाता ने राजस्थान के प्रसिद्ध भक्तकवि नागरीदास जी द्वारा रचित गोपियो के अनन्य प्रेमपगी यह दुर्लभ गर्वोक्ति गा कर सुनाई–

"घर तजौं, वन तजौं, 'नागर' नगर तजौं,
बंसी बट-तट तजौं, काहू पै न लजिहों ।
देह तजौं, गेह तजौं, नेह कहो कैसे तजौं
और काज छांडि, आज ऐसे साज सजिहों ।
बावरो भयो है लोक, बावरी कहत मोकों,
बावरी कहते मैं हूं काहू ना बरजिहों ।
कहैया-सुनैया तजौं, बाप और मैया तजौं,
दैया ! तजौं मैया पै कन्हैया न तजिहों ।।"

प्रेम-राज्य की भाव-भूमि में ऐसी ही अनन्य समर्पण की दिव्य मुक्तामणियां मुद्रायें न्यौछावर हुआ करती है । यह तो घायल की सी गति है जिसे घायल ही जानता है । जिसने प्रेम सुधारस का ऐसा उन्मादकारी प्याला पिया है उसकी व्याकुलता, व्यग्रता, कसक और बेचैनी वही जानता है जिसने 'पी' हो । किसी शायर ने क्या खूब कहा है–

"अरे शोहदो ! तुमने पी हो तो जानो,
तसव्वर पर बिजली गिरी हो तो जानो ॥"

ऐसे प्रेमालाप के बाद जब दाता विदा होने लगे तो बाबा ने गद्गद होते हुए कहा, "और सम्हालते रहना। प्रत्युत्तर में सहज दीन विनम्रतावश दाता कहने लगे "बाबा! मेरा राम तो तेरा छोटा सा अबोध बच्चा है। तेरे प्रेम का तुच्छ भिखारी है जो ऐसी भीख मागते मागते दर-दर डोलता फिरता है।'

दूसरे दिन दाता एक स्वामी जी से और मिलने पधारे। अलवर के पास ही एक नदी के किनारे एक मन्दिर में एक सन्त बिराज रहे थे। दाता उनके भी दर्शन हेतु पधारे। यहां भी बड़े प्रेम से बातें हुईं।

अलवर से भर्तृहरि आश्रम, जयपुर, अजमेर और पुष्कर होते हुए दाता नान्दशा लौट आये।

० ० ०

झूंठा आरोप

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।

—श्रीमद्भगवतगीता

काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् अधोगति मे ले जाने वाले है, इसलिये इन तीनो को त्याग देना चाहिये । यह तीनो ही अनर्थो के मूल है । जो मनुष्य इनको अपना लेता है निश्चय ही वह नरक को प्राप्त होता है । इन तीनो अनर्थो के साथ यदि मद और अहंकार मिल जाय तो फिर कहना ही क्या ? फिर तो उस मनुष्य को नष्ट होने से कोई बचा भी नही सकता । यदि मनुष्य वास्तविक आनन्द को प्राप्त करना चाहे तो इन विकारो से सदा के लिए पिण्ड छुडा लेना चाहिये । ये विकार मनुष्य को दाता की भक्ति से दूर ले जाकर ऐसे नरक के गड्ढे मे डाल देते है कि जिससे निकलना संभव ही नही है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी फरमाया है :—

जहाँ काम तहाँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।
तुलसी कबहुँ न रहि सके, रवि-रजनी एक ठाम ।।

रवि और रजनी को किसी ने एकसाथ कभी नहीं देखा होगा । उसी तरह ईश-भक्त और कामी व्यक्ति का एकसाथ रहना संभव नहीं । दाता का मार्ग ईश-भक्ति का है अतः उनमे परदुःखकातरता, प्रियभाषण, अन्तःकरण की उपरामता, अभिमान का त्याग, अनासक्ति, क्षमा, धैर्य, पवित्रता आदि गुण विद्यमान है । इसके विपरीत दाता का विरोध करनेवाले व्यक्ति, विशेषरुप से नान्दशा जागीरदार और उसके व्यक्ति काम, क्रोध, मद, अहंकार आदि अवगुणो से परिपूर्ण होने से निरंतर दाता को नीचा दिखाने एवं उन्हे अपमानित करने की योजना निर्माण मे ही लगे रहते थे । दाता ने सत्संग के माध्यम से उन्हें शुद्ध मार्गपर लाने की चेष्टा की किन्तु सब व्यर्थ । ईर्ष्या का मद बहुत बढ़ चुका था । अहंकार के वशीभूत वे अपने आप को खुदा से अधिक ही मानते थे । संसार की नश्वरता को स्वीकारते हुए भी उनकी कथनी और करनी मे अन्तर था ।

मनुष्य जब अधोगति को जाने को होता है तो दाता उसके विवेक को पहले ही नष्ट कर देता है । यही गति उन विरोधियो की थी । उनकी विरोधी भावनाएं सन् १९५० के बाद प्रबल वेग से उभर कर सामने आने लगी । उनका मुख्य उद्देश्य दाता को जेल में बन्द करवाने का था । मोडा गाडरी की हत्या के अवसर पर वे

लोग पूर्ण आश्वस्त थे कि दाता को उस मामले में लपेट लिया जावेगा और उन्हें आजन्म कैद हो जावेगी किन्तु प्रभुकृपा से जब उनका बाल भी बाका नहीं हुआ तब वे बड़े दु खी हुए। ईर्ष्यालु व्यक्तियों के पास विवेक तो होता नहीं अत विफल होने पर भी उनके मस्तिष्क में नये षडयंत्र का उदय होता है। वे अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

उन दिनों में ऐसी प्रथा थी कि मांगलिक कार्यों व अन्य कार्यों मे ढोल बजाया जाता था। जागीरदार के गाँवो में ढोल जागीरदार का हुआ करता था। नान्दशा में भी ठाकुर का ढोल था। गाडरी की हत्या के समय से ही ठाकुर साहब ने अपने ढोल को दाता और उनके अनुयायियों के यहाँ ले जाने से रोक दिया था। दाता और उनके अनुयायियो के लिए समस्या हो गई। समस्या का हल आवश्यक था क्योंकि काम तो किसी न किसी से पडता ही है। सब ही ने मिलकर एक ढोल बनवा लिया। नया ढोल का बनवा लिया जाना ठाकुर के अहकार पर करारा तमाचा था।

माच सन् १९५५ में मोतीसिह जी के लडके तेजसिंह का विवाह था। इस कार्य हेतु उन्हें नये ढोल का प्रयोग करना पडा। अन्य कार्यों में तो उन्हें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हुई किन्तु निकासी के समय दिक्कत आयी। निकासी के समय मन्दिर के देवता को धोकना होता है और उनके मकान और मन्दिर के बीच ठाकुर का मकान अर्थात गढ था। मन्दिर में धोक लगाने को ठाकुर के मकान के बाहर होकर ही जाना पडता था। ठाकुर साहब और उनके मित्र तथा साथी इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि निकासी के वक्त ढोल लेकर इधर से अवश्य निकलेंगे। पापकर्मों का उदय होता है तो मति भ्रष्ट होती है। ऐसे समय में मनुष्य आसुरी प्रवृत्तियो का शिकार हो जाता है। ठाकुर और उसके साथियो की मति मारी गई। उन्होने लगभग बीस लोगो को मदिरा पिला कर गढ के दरवाजे पर बिठा दिया। होली का त्योहार था। गैर खेलने के बहाने उन लोगों ने डण्डे हाथ मे ले रखे थे। निकासी का समय रात्रि में लगभग दस बजे का था। इधर के लोगो को किसी प्रकार की शका तो थी नही अत वे असावधान थे। निकासी में उनके घरवाले मेहमान और दाता के पिताजी श्री जयसिह जी और जीवनसिंह जी थे। आगे आगे ढोल, उसके पीछे घोडे पर दूल्हा और उसके पीछे बरातियो के रूप में उपयुक्त लोग थे। ज्यो ही निकासी गढ के दरवाजे के सामने पहुँची ठाकुर गालियाँ देता हुआ लकडी लेकर आगे बढा। पीछे से ठाकुर के लोगों ने पत्थर फेंकना प्रारभ कर दिया। ठाकुर के कुछ लोग लकडिया लेकर दौडे। अचानक हमला हुआ देखकर लोग घबरा गये। जिसको जिधर का रास्ता मिला उधर ही भाग खडा हुआ। ढोली ढोल लेकर दूल्हा घोडे को लेकर और मेहमान लोग अपने जीव को लेकर भागे। जयसिह जी जीवनसिह जी और कुछ घरवाले ही वहाँ खडे रह गये। उनके कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या

हो रहा है। इसी बीच ठाकुर साहब आगे बढ़े। वे दारू के नशे में धुत तो थे ही। उन्होंने अपनी लकड़ी उठाई और अपने चाचा जयसिंह जी के सिर पर दे मारी। लकड़ी के लगते ही सिर से खून के फौवारे छूट पड़े। वे सिर पकड़कर वहीं बैठ गये। एक पत्थर दूल्हे के चचेरे भाई रघुनाथसिंह जी के चेहरे पर आकर लगा। उनके आगे के दांत टूट गये। भाग-दौड़ मच गई। इस भाग-दौड़ में ठाकुर साहब का पैर फिसला और वे पास ही स्थित घरट में जा गिरे जिससे उनके सिर में साधारण सी चोट लगी। ठाकुर के गिरते ही उनके साथी एक-एक कर भाग खड़े हुए। ठाकुर के कुछ लोग ठाकुर को उठाकर गढ़ में ले गये। बारात के लोग जो वापिस एकत्रित हुए, वे मन्दिर गये और फिर बारात में जाने की तैयारी करने लगे।

जयसिंह जी को जीवनसिंह जी लेकर हर-निवास पहुँचे। उनकी दशा को देखकर दाता को बहुत दुःख हुआ। दाता जानते थे कि वे लोग दुष्ट हैं अतः इतना ही बोले, "आप वहाँ गये ही क्यों? वे लोग तो मूर्ख है। अच्छा है, भतीजे की मार है। आप इसको फूल समझकर सहन करें।" दूल्हे का बड़ा भाई जिसके दांत टूट गये थे, वह भी वहाँ पहुँचा, और लोग जिनके चोटें लगी, वे भी पहुँचे। दाता ने सभी को समझा-बुझाकर घर भेज दिया। उस दिन चाँदमल जी, रामसिंहजी ओंकारसिंह जी आदि कुछ अजमेर के सत्संगी भी वहाँ थे। उन्हें यह सब कुछ देखकर बड़ा आवेश आया तथा उन्होंने इसकी कार्यवाही करने को कहा किन्तु दाता ने उन्हें शान्त कर दिया।

अगले दिन ठाकुर साहब और उनके आदमी रायपुर पुलिस स्टेशन पर पहुँचे और दाता के विरुद्ध बलवे का मुकदमा दर्ज करा दिया। अनुचित तरीके से उन्होंने डाक्टरी प्रमाणपत्र भी प्राप्त कर लिया। पुलिस स्टेशन पर बताया गया कि दाता ने अपने ५६ व्यक्तियों सहित हमला किया। दाता के हाथ में फर्सा था तथा उन्होंने फर्से से ठाकुर को घायल कर दिया। यदि ठाकुर के लोग वहाँ नहीं होते तो वे ठाकुर साहब को जान से ही मार देते। कितनी विचित्र बात थी कि चोर कोतवाल को ही डांटे। यह दुष्टता की पराकाष्ठा थी। भगवान से कुछ तो डरना था। उन्हें सोचना तो चाहिये था कि भगवान के घर में देर है अन्धेर नहीं। पैसा ही सब कुछ नहीं है। यह सोचना कि पैसे के बल पर कुछ भी किया जा सकता है, भ्रम और भूल है।

दाता ने सबको चुप बैठ रहने के लिए कहा और वे चुप होकर बैठ भी गये किन्तु जब मालूम हुआ कि ठाकुर साहब ने तो सबको फंसाने की कार्यवाही कर दी है तब उन लोगों ने भी कार्यवाही करने का निश्चय किया। अतः रघुनाथसिंह जी ने गंगापुर अस्पताल से अपनी चोट का प्रमाणपत्र लेकर गंगापुर न्यायालय मे मुकदमा दायर कर दिया।

ठाकुर और उनके समर्थको का प्रचार और पसार तो सन् १९५३ जैसा ही था। जागीरदार नान्दशा को मार ही दिया, ठाकुर मर जाता, ठाकुर को बरा तरह घायल कर दिया, दाता ने गिरधारीसिंह जी ठाकुर को बुरी तरह पीटा आदि अनेक शीर्षकों से बातें चारो ओर चल पडी। प्रचार एकतरफा था, इसलिए सुनन वाले विश्वास करते ही, क्यों कि प्रकृति का नियम है कि जो सुना जाता है प्रतिवाद के अभाव में, उसपर विश्वास तो होता ही है। फिर लक्ष्मी का सहयोग मिल जाय तो चुपडी और दो-दो। पुलिस का सहयोग भी मिल ही गया। गगापुर न्यायालय से रिपोट रायपुर पुलिस के पास भेज दी गई थी किन्तु उसपर तो कुछ कार्यवाही नहीं हुई बल्कि ठाकुर की रिपोट को सत्य मान उसके अनुसार कार्यवाही करने हेतु पुलिस नान्दशा जा पहुँची। स्वार्थ में पडकर लोग कितने अन्धे बन जाते हैं। स्वय की भी चिन्ता नहीं करते कि उनका क्या होगा। उनके लिये तो पैसा ही बडा धम है –

> पैसो मारो परमेश्वर ने, पत्नी मारी गुरु।
> छैया छोकरा मारा शालिग्राम, पूजा को नी करू?

पुलिस ने बलवे की कार्यवाही प्रारभ की। मन चाहे गवाहो के बयानों पर दाता सहित तियालीस व्यक्तियों को गिरफ्तार कर रायपुर ले जाया गया।

'दाता और उनके आदमियों को पुलिस पकडकर ले गई है यह समाचार द्रुतगति से चारों ओर फैल गया। विरोधियों का प्रचार जोरो पर था। उन्होने अनेक झूठी अफवाहें फैलाकर दाता को हर प्रकार से अपमानित करने का प्रयास किया। जैसा भोडागाडरी की हत्या के समय प्रचार और प्रसार हुआ था उसी प्रकार का प्रचार और प्रसार इस समय भी किया गया। पत्र-पत्रिकाओ में दाता के विरुद्ध समाचार छापे गये। भूस्वामी सघ ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रचार में दाता को नृशस दुराचारी, हत्यारा पापी अत्याचारी आदि शब्दों से कलकित किया गया। पूर्व की तरह इस बार भी आसपास के लगभग सभी व्यक्ति विरोधियों के चक्कर में आ गये। वे उनकी सभी बातें सच्ची मानकर दाता को दोषी मानने लगे। फिर से चारों ओर आँधी चल पडी। वास्तविक बात जानने वाले कम ही थे।

इस पुस्तक का लेखक उस समय माडल में था। श्री रामप्रकाश जी महाराज भी वहीं बिराज रहे थे। जब यह सूचना वहाँ मिली तब अनायास ही उनके मुख से निकल पडा 'ठाकुर के अन्तिम दिन आ गये मालूम होते है। उसकी मति भ्रष्ट हुई है। उसकी मूखता से दाता को कितना कष्ट हो रहा है। उनकी दयालुता का ये लोग अनुचित लाभ उठा रहे हैं। तुम फौरन जाओ और जो कुछ कर सको करो। यदि तुम लोग कुछ भी नहीं कर सको तो मुझे ले चलो। मैं सब कुछ उनके प्रताप से कर लूंगा।' इस सूचना से वे बडे व्यथित हुए। उन्हें

सान्त्वना देकर कुछ लोग रायपुर पहुँचे। दाता थाने मे विराज रहे थ और लगभग अस्सी व्यक्ति उनके सामने थे। सदैव की भाँति वहाँ भी सत्संग चल रहा था। चिन्ता की रेखाएँ किसी के चेहरेपर नही थी। सब ही प्रसन्नचित और मस्त मानो कही कुछ हुआ ही नही हो। हमारे पहुँचते ही फरमाया, "तुम चिन्तित मालूम होते हो! ऐसा क्यो? तुम्हे इतनी शीघ्र सूचना कैसे मिली? अच्छा ही हुआ कि तुम लोग चले आये! क्या दाता पर तुम्हें भरोसा नहीं? जब हमने किसी का कुछ नहीं विगाड़ा तो फिर चिन्ता की क्या बात है। यह तो दाता की लीला है।" पुलिस की इकतरफा कार्यवाही से हमे रोप था किन्तु दाता ने हमे शान्त कर दिया। उन्होने फरमाया, "पुलिसवाले तो कठपुतली है। ये तो निमित्तमात्र हैं। आप लोग इन्हे क्यो दोषी ठहराते है। कठपुतली तो सूत्रधार के संकेतोपर नाचती है। सूत्रधार तो मेरे दाता हे। यदि तुम रोष कर रहे हो तो इनपर न कर मेरे दातापर कर रहे हो। यह अनुचित हैं। समझदार हो कर वे समझी की वातें करते हो। तुम जानते हो कि दाता की इच्छा के विना एक पत्ता भी नही हिलता। क्या दाता जो कुछ करता है वह अनुचित हे? तुम लोग अहंकार के वशीभूत होकर भले-वुरे के ज्ञान को क्यो खो रहे हो? अहंकार वुरी बला है। इसके चक्कर मे आकर तो लोग वड़ी से वड़ी भूल कर वैठते है जिसकी कल्पना भी संभव नही। जिन लोगो ने यह किया है अच्छा ही किया है क्योंकि इससे उनके मन की तुष्टि तो होगी। यदि आप लोगो को तनिक सा कष्ट या असुविधा हो और उससे उनको प्रसन्नता हो तो अच्छा ही है। हमारा क्या बिगडता है? यहाँ हमें कौनसा कष्ट है। मान-अपमान तो सब दाता का है। हमारा क्या है। हम तो उसके सामने तिनके मात्र है। जो व्यक्ति अपने को बड़ा व दूसरो को छोटा मानता है, वह अज्ञानी और मूर्ख है। प्राणी जितना छोटा वनकर चलता है उतना ही महान वनता है। नर की और नल के पानी की एक सी गति वताई गई है:-

"नर की अरु नल नीर की एक ही गति कर जोई।
जैतो नीचो ह्वे चले, तैतो ऊँचो होय।।"

दाता ने उस समय वसिष्ठ और विश्वामित्र का उदाहरण प्रस्तुत किया। विश्वामित्र ब्रह्म ऋषि के पद पर आसीन होना चाहते थे क्योकि वसिष्ठ ब्रह्म ऋषि थे और विश्वामित्र राज ऋषि। विश्वामित्र ने इस हेतु अपनी तपस्या का सब बल लगा दिया। इस हेतु उन्होंने वसिष्ठ को वड़ा कष्ट पहुँचाया, यहाँ तक की उनके पुत्रो की हत्या कर दी। वसिष्ठ जी ने प्रभु-इच्छा समझ सब कुछ हँसते हँसते सह लिया किन्तु विश्वामित्र जी के प्रति मन में तनिक सा भी विकार नही आने दिया। ब्रह्मज्ञानी थे पूरे। वे जानते थे कि ब्रह्म नित्य हे और जगत् मिथ्या है। वे यह भी जानते थे कि आत्मा अजर-अमर हे उसको कोई नही मार सकता।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। श्रीमद्भगवतगीता

प्राणी जानते हुए भी अनजान बन जाता है इसी का तो दुःख है। अहकार मनुष्य के मार्ग को अवरुद्ध करता है। विश्वामित्र त्रिकालदर्शी और सिद्ध महापुरुष होते हुए भी अहकाररूपी विकार से नहीं बच सके, इसीलिए वे अशान्त थे और इसी लिए कम-अकम सभी कर रहे थे। जब वसिष्ठ जी की कृपा से उनकी यह गुत्थी सुलझी तो क्षणमात्र में वे ब्रह्मर्षि बन गये। ज्यों ही अपने अहकार को वसिष्ठ जी के चरणो में अर्पित किया कि शुद्ध ब्रह्मरूप ही हो गये। उनके मुख से स्वत ही निकल पडा, 'धिक बल क्षत्रिय बलम ब्रह्म तेजो बल बलम ॥'' दाता ने इस कथा को बडे विस्तार से बताया किन्तु स्थानाभाव से और यह सोचते हुए कि इस पौराणिक कथा से पाठक अवश्य परिचित होगे साररूप में ही यहा कहा गया है। दाता का प्रवचन वहा बडी देर तक चलता रहा। पुलिसवाले भी खडे खडे सुनते रहे।

दाता के दर्शनो और वचनामृत श्रवण से सब चिन्ताए अपने आप दूर हो गई। पुलिसवालो ने यह महसूस किया कि उन्होंने दाता को गिरफ्तार कर शायद गलती कर दी है अत शाम को चार बजे केस को गगापुर चालान कर दिया। हम लोगो का प्रयास था कि रायपुर थाने में ही जमानत ले ली जाय किन्तु थानेदार साहब ने यह कह कर मना कर दिया कि केस जमानत काबिल नहीं है। फिर करते भी क्या ?

तियालीस व्यक्तियो का चालान था। लगभग तीस व्यक्ति अन्य थे। इस प्रकार सित्तर-पिचेत्तर व्यक्ति रायपुर से पैदल चले। रात्रि विश्राम देवरिया पुलिस चौकीपर किया गया और अगले दिन लगभग ग्यारह बजे गगापुर के बाहर सोमदत्त जी की बाडी में पहुंचे।

दाता को पुलिस ने पकड लिया है' यह समाचार द्रुतगति से चारो ओर फैल गया था। सूचना अजमेर और जयपुर तक भी पहुँची। चारो ओर सनसनी सी फैल गई। श्री चांदमल जी जोशी ने तार द्वारा प्रशासन को शिकायत की। जयपुर वाले पुलिस की भर्त्सना करते हुए मुख्यमत्री और आई जी पुलिस तक पहुंचे। मुख्यमत्री महोदय ने भीलवाडा पुलिस अधीक्षक से रिपोर्ट चाही। भीलवाडा अधीक्षक को इस घटना का कुछ पता था नहीं। उसने अपने सहायक अधीक्षक को तत्काल भेजा जो दाता के गगापुर पहुँचने के पूर्व ही पहुँच चुका था। वह भी सोमदत्त जी की बाडी में पहुंचा। उसने दाता को नमस्कार कर पुलिस द्वारा की गई अनुचित कार्यवाही पर खेद प्रकट किया और प्रत्येक को दो सौ रुपयो की जमानत ले उन्हे रिहा कर दिया। ठाकुर साहब और उनके दल के व्यक्ति भी दाता के पहुंचने के पूर्व ही गगापुर पहुँच चुके थे। उनकी इच्छा थी कि दाता को बाजार में होते हुए ले जाया जाय। जब उन्हें मालूम हुआ कि सबको जमानत पर छोड रहे हैं तो वे बडे दुःखी हुए और प्रयत्न किया कि जमानत न हो किन्तु उनका प्रयत्न सफल नहीं हो सका। दाता के साथ ही हम सब शाम को नान्दशा पहुंच गये।

ठाकुर साहब के दलवालो को यह आशा नही थी कि आसानी से छूट जावेंगे व जमानत हो जावेगी। जमानत हो जाने पर वे सब क्रोध से पागल हो गये। उन्होने नान्दशा जाकर अपने अनुयायियो और आसपास के गाँव के लोगो को बुलवाकर एक विशाल मीटिंग की। उस मीटिंग मे आसपास के जागीरदारो और भूस्वामी संघ के व्यक्तियो को भी बुलाया। सभी ने मिलकर दाता को जाति से बहिष्कृत करने का निर्णय लिया। इतना करने पर भी उन्हे सन्तोष नही हुआ, अतः वे प्रत्येक समाज के मुखियाओ के पास जाकर प्रयास करने लगे कि उनका समाज दाता से कोई सम्बन्ध न रखे। नाई, धोबी, ढोली, हरिजन, दरोगा आदि सभी जाति के लोगो को दाता के यहाँ जाने से रोक दिया गया। कहने का तात्पर्य है कि हर काम से और हर जाति से उनका बहिष्कार किया गया। सभा हुई जिसमे यह भी निर्णय लिया गया कि जो भी व्यक्ति दाता के यहाँ जावेगा उसका भी बहिष्कार होगा। दाता के यहाँ जानेवालो का हुक्का, बीड़ी आदि भी बन्द कर दिया गया। कुएँ से पानी भरना, गायो का चरणोट मे जाना, गायो का कुओं पर पानी पीना आदि कार्यों के लिए भी रोक लगा दी। उनकी ओर से दाता को दबाने का हरसंभव और असंभव प्रयास किया गया। किन्तु दाता की लीला ही विचित्र है। वे जितना भी दाता को अपमानित करने की कोशिश करते, उतना ही उनका यश बढ़ रहा था। भयानक तूफान चन्द दिनो चल कर रह गया। वास्तविकता धीरे धीरे सामने आने लगी। झूंठी अफवाहें और झूंठे प्रभाव स्वतः ही मिटने लगे। कुछ दिनो तक तो लुके छिपे व्यवहार होता गया किन्तु फिर व्यवहार में कोई सीमा नहीं रही। पूर्ववत ही व्यवहार होने लगा।

दोनो ओर के मुकदमो को पुलिस ने गंगापुर न्यायालय मे प्रस्तुत कर दिया। अदालत में कार्यवाही प्रारंभ हुई। आरोप सुनाते वक्त दाता ने आरोप को इन्कार करते हुए फरमाया, "यदि माकोराम को जेल भेजने से ठाकुर साहब और उनकी पार्टी को प्रसन्नता होती है तो म्हाकोराम जेल जाने को तैयार है।" आरोपपत्र के उत्तर के बाद निवेदनपत्र प्रस्तुत कर दाता की न्यायालय में उपस्थिति से मुक्ति ले ली गई। न्यायाधीश श्री भैंदलाल जी जवेरिया निवासी उदयपुर थे। वैसे तो न्यायाधीश न्यायप्रिय एवं अच्छे व्यक्ति थे किन्तु पता नही क्यो वे दाता से नाराज थे। शायद विरोधियो के प्रभाव के कारण ही ऐसा रहा हो। मुकदमा न्यायालय में जाने के बाद वे दाता की निन्दा कर दिया करते थे। एक समय तो ऐसा भी आया जब उन्होने अपने मित्रो मे यह कह दिया, "बहुत से दाता देखे है। मेरा कुछ बिगाडे तब जानूं।" मनुष्य के स्वभाव की विचित्रता ही अनोखी है। दाता के उनके कोई सम्पर्क नही। न कोई सम्बन्ध ही। न्यायालय के मुकदमे मे साधारण से मुलजिम मात्र। फिर इस प्रकार के विचार प्रकट करना एक न्यायाधीश के लिए उपयुक्त नही था। आ रे बैल ! मुझे मारवाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। जब काल नजदीक आता है तो सियार का मुंह गॉव की ओर जाता है।

ठाकुर साहब ने मुकदमें को सगीन बनाने की चेष्टा की। सरकारी वकील तो था ही किन्तु उस पर विश्वास न कर बाहर से उच्च कोटि के वकीलो को बुलाया गया। अच्छे अच्छे मस्तिष्क लगाये गये। प्रयास उनका यह रहा कि दाता को हर अवस्था में जेल की सजा हो। उनके गवाहो के बयान चल रहे थे। एक पेशी पर कोट में जयसिंह जी खड़े थे। वे मारवाडी शैली से साफा बाधते थे और मूछों पर साधारण सा वट लगाया करते थे। वैसे वे सीधे साधे और निमल हृदय वाले सरल व्यक्ति थे। अचानक मजिस्ट्रेट की नजर बयान लेते लेते उन पर पडी। ये बोले, "ठाकुर साहब। लगता है आपको घमण्ड बहुत है। मूछों के बट बहुत लगा रखा है। जानते हो या नहीं ? यह जवेरिया की कोट है। मूछों का बट खोल दो, वरना मूछो को ही उखड़वा दूगा।" इस पर जयसिंह जी और अन्य उपस्थित लोगों को बुरा तो बहुत लगा किन्तु करते क्या ? जयसिंह जी इतना ही बोले, "मेरे हाथो से तो खुलता नही है। सरकार के हाथ लम्बे हैं, वह बडी है, सब कुछ कर सकती है।" मजिस्ट्रेट का यह व्यवहार मुकदमों की अन्य अदालत में परिवर्तित कराने का कारण बन गया। भीलवाडा सेशन कोट में प्राथना पत्र प्रस्तुत कर प्रतिज्ञापत्र देकर मुकदमो को भीलवाडा न्यायालय में परिवर्तित करा लिया गया। जवेरिया साहब हाथ मलते ही रह गये। कालान्तर में ये क्षय रोग से पीडित हुए और मरणासन्न हो गये। तब जाकर उन्हें अपने किये पर पश्चाताप हुआ। अति सकट में ही मनुष्य अपनी करनी पर पछताता है और उसे परमात्मा याद आता है। उन्होने दाता से क्षमायाचना की। दाता तो दया के सागर हैं। उनके सामने कोई बुरा है ही नहीं। उन्होने न केवल जवेरिया साहब को माफ किया वरन् उनके कष्ट का भी निवारण कर दिया।

मुकदमें भीलवाडा कोट में चले। अभियुक्त तियालीस थे। उनके विरुद्ध मामला सिद्ध करने के लिए अनेक गवाह थे। इस ओर जो लोग सहयोग दे रहे थे उन पर ठाकुर साहब ने १०७ का मामला दर्ज करा दिया। प्रत्येक पेशी पर अनेक लोगों को भीलवाडा जाना होता था। अच्छा जमाव होता था। गवाहों के अधिक होने से समय तो लगता ही था, व्यय भी कम नहीं होता था। इधर उनका फेंका हुआ प्रत्येक अस्त्र व्यथ जा रहा था। धीरे धीरे वे हताश होने लगे और उनका जोश भी ठण्डा पडने लगा। अन्त में फैसले का दिन भी आया। ठाकुर ने जो मुकदमा लगाया वह खारिज हुआ। रघुनाथसिंह ने जो मुकदमा लगाया उसमें ठाकुर साहब को एक हजार रुपये जुर्माना और माधवसिंह को छ माह की सजा सुनाई गई। ठाकुर साहब की आशा के विपरीत फैसला था। उनका तथा उनके अनुयायियों का मुह उतर गया। उन्होने ऊपर सेशन कोट में अपील कर दी।

फैसले के समय हम में से कुछ मुस्करा दिये। उनका प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था क्योकि अपराधियो को तो दण्ड मिलना चाहिये। किन्तु दाता तो दयालु हैं। उन्होंने कहा, "किसी के दु ख पर हसो नहीं। तुम लोग जाओ और इन लोगो की जमानत की व्यवस्था करो।"

दूसरा मुकदमा सेशन कोर्ट में चलता रहा। ठाकुर साहब पूर्णतया निराश हो गये थे। उनके साथी भी एक एक कर उन्हें छोड़ते जा रहे थे। झूठे मित्र विपत्ति में कब साथ देने लगे। सेशन कोर्ट में होने वाली कार्यवाही से वे निराश थे। उन्हें जेल की सजा की आशंका होने लगी। उनके वकीलों ने भी सलाह दी कि किसी तरह दाता को प्रसन्न कर समझौता कर लिया जाय। वे घबरा गये। एक दिन दोनों स्त्री-पुरुष हरनिवास आकर दाता के चरणों में आ गिरे। गिड़गिड़ा कर क्षमायाचना मांगने लगे। दाता ने हुक्म दे दिया कि राजीनामा कर दिया जाय। वकील साहब नारायणलाल जी ने किसी कारण विशेष से पेशी पर राजीनामा प्रस्तुत न कर अगली पेशी मांग ली। इस पर ठाकुर साहब इतने घबरा गये कि उनसे कुछ कहा नहीं जाता था। वे नित्य प्रति दाता के पास आने लगे। दाता की आज्ञा से अगली पेशी पर वकील साहब ने कह सुन कर मामले को समाप्त करा दिया। मामला राजीनामा काबिल नहीं था, इसलिए यह लिख कर देना पड़ा कि राजीनामा नहीं होगा तो आपस में द्वेष बढ़ने की आशा है और आपस में झगड़ा हो सकता है। इस पर जज साहब राजीनामे के लिए तैयार हो गये और राजीनामा हो गया। वकील साहब ने राजीनामे के पूर्व ठाकुर साहब से पाई पेपर पर यह अवश्य लिखवा लिया था कि दाता का किसी भी मामले में कोई दोष नहीं है। सब दोष उनका ही है, उन्हें माफ कर दिया जाय। भविष्य में वे ऐसा कभी नहीं करेंगे।

इस प्रकार लगाया गया झूठा आरोप प्रभुकृपा से समाप्त हुआ। दाता और उनके अनुयायियों को परेशानी तो अवश्य हुई लेकिन एक जबरदस्त संगठन शिथिल हुआ जो गरीबों को हर समय सताया करता था।

मुकदमेबाजी का तो अन्त हुआ, किन्तु दाता ने देखा कि यह तो रोजरोज का झगड़ा है। 'आये थे हरिभजन को ओर ओटन लागे कपास।' क्यों न यह स्थान ही छोड़ दिया जाय! इस विचार का हम सब ने विरोध किया। कारण बताया कि यहाँ मकान है, जमीन है, कुटुम्ब है और अनेक सुविधाएँ हैं। इस स्थान को छोड़ने में हानि है। दाता ने एक ही वाक्य मे सबको चुप कर दिया। वह वाक्य था, "सोने की कटारी क्या सीने में भोंकने की होती है?"

० ० ०

काश्मीर भ्रमण

जम्मू और काश्मीर भारत का सबसे अधिक सुरम्य आकर्षक और दर्शनीय क्षेत्र है। पूरा काश्मीर हिमाच्छादित पहाड़ियों से घिरा हुआ है। पहाड़ियों के मध्य विस्तृत घाटी है जिसे 'काश्मीर की घाटी' कहते हैं। काश्मीर बड़ा ही रम्य प्रदेश है। प्रकृति ने इसके सौन्दय को निखारने में बड़ा प्रयत्न किया है। प्रति वर्ष देश-विदेश के हजारों दर्शक इसे देखने आते हैं। श्रीमानों के नव-दम्पति युगल विवाह के ठीक बाद इस क्षेत्र में घूमना पसन्द करते हैं। वहाँ की झीलों में नावों का चलाना शिकारों में रहना, पर्वतों और वाटिकाओं में भ्रमण और बर्फ में फिसलना आदि मुर्दादिलों में भी प्राण फूकने का काम करते हैं। केसर की क्यारियाँ शहतूत तथा अन्य फलों के बाग इसकी सौन्दयश्री में चार चाँद लगा देते हैं। काश्मीर जाकर किसी का मन दुःखी नहीं होता। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही साथ इसका धार्मिक महत्व भी कम नहीं है। भारत का प्रसिद्ध तीर्थ अमरनाथ इसी क्षेत्र में स्थित है। इसके अतिरिक्त शंकराचार्य जी का मन्दिर और मठ, वैष्णव देवी का मन्दिर, सूर्य मन्दिर आदि कई तीर्थ हैं। काश्मीर की शोभा का वर्णन करना कठिन है।

भ्रमण की योजना

पिछले प्रकरण में आपने पढ़ा है कि जागीरदार साहब नान्दशा और उनके सहयोगियों ने दाता को परेशान करने के लिए किस किस प्रकार के घृणित कार्य किए। नान्दशा और आसपास का वातावरण अनुकूल नहीं था। वह तो बड़ा ही दूषित था। यद्यपि दाता पर इसका कोई प्रभाव नहीं था किन्तु मन स्थिति में कुछ परिवर्तन हो इस हेतु हरिराम जी नाथानी ने काश्मीर भ्रमण का प्रस्ताव दाता के सम्मुख रखा। हम लोग भी काश्मीर दर्शन के इच्छुक थे अतः हम लोगों ने भी निवेदन किया कि काश्मीर जैसे सुरम्य प्रदेश को अवश्य देखा जाना चाहिये। पहले तो दाता ने कुछ ध्यान दिया नहीं किन्तु जब नाथानी जी ने गदगद् होकर प्रार्थना की तो उनके आग्रह को देखकर चलने की स्वीकृति दे दी। दाता के लिए नाथानी जी ने एक जीप की व्यवस्था अलग से कर दी। इस जीप में सुमेरसिंह ड्राईवर के अतिरिक्त मातेश्वरी जी सम्पत कवर, कु हरदयालसिंह, गोविन्द प्रसाद जी और यह सेवक था। नान्दशा से दाता का पधारना भीलवाड़ा हुआ। भीलवाड़ा से कई लोग साथ चलने को तैयार हो गये किन्तु साधन के अभाव में उनकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकी।

प्रस्थान

भीलवाड़ा से जीप के अतिरिक्त एक कार भी रवाना हुई। कार मे हरिराम जी और उनकी पत्नी, हेमराज जी चतुर्वेदी, शंकरलाल जी और ड्राईवर प्रह्लाद थे। दोनो गाड़ियाँ अजमेर होती हुई जयपुर पहुँची। जयपुर में श्री गिरधर निवास में विराजना हुआ। कुछ ही समय मे सभी भक्तजन उपस्थित हो गये। जयपुर से शुक्ला साहव, श्री रामकिशोर जी और मोरीजा ठाकुर साहव भी चलने को तैयार हो गये। शर्मा जी के पास आस्टीन कार थी जो साथ ले ली गई। काश्मीर में प्रवेश हेतु आज्ञापत्र की आवश्यकता थी अतः राजस्थान के सचिव मेहता जी श्री वलवन्तसिह जी की सहायता से आज्ञापत्र प्राप्त किया गया। वड़ी विचित्र विडम्वना है कि भारत के एक भाग से दूसरे भाग मे जाने हेतु भी सुरक्षा आज्ञा पत्र लेने की आवश्यकता पड़े।

अगले दिन तीनो गाडियाँ जयपुर से रवाना हुई। शुक्ला साहव ने सेवा के लिए अपने छोटे लड़के कन्तु को साथ ले लिया था। रात्रि विश्राम अलवर डाक वंगले मे करके अगले दिन दिल्ली पहुँचे। श्री समुद्रसिंह जी अलवर ही आ गये थे। दिल्ली में उन्ही के यहाँ वीकानेर हाऊस में विराजना हुआ। उन दिनो व्यास जी श्री मदनगोपाल जी वहीं थे। नानक भी वहीं था। दिल्ली में रात्रि को वड़ा अच्छा सत्संग हुआ। व्यास श्री मदनगोपाल जी दाता के अनन्य भक्तों में से एक थे। वे वडे विद्वान, योग्य एवं भक्तहृदय व्यक्ति थे। उन दिनो वे 'वीकानेर हाऊस' के सहायक मैनेजर थे। भक्तहृदय होते हुए भी 'कर्म गति टारे नहीं टरे' वे एक चक्कर मे आ गये और उस चक्कर से उनके परिवार में एक भूचाल सा आ गया। एक दिन एक तान्त्रिक साधू उनकी अनुपस्थिति मे उनके घर आया और अपने मंत्र-तंत्र के प्रभाव से उनकी पत्नी को संमोहित कर दिया। तंत्र-मंत्र के प्रभाव से उनकी पत्नी के मस्तिष्क में विकृति आ गई, जिससे घर-गृहस्थी अस्त-व्यस्त हो गई। उपचार कराया गया किन्तु रोग का उपचार हो सकता है मंत्र-तंत्र का उपचार डाक्टरो के हाथ कहाँ। उन्होने दाता को उनकी पत्नी की अवस्था के वारे में वताया और उसे ठीक करने की प्रार्थना की। दाता ने हंसते हुए सभी वाते वताई और असीम कृपा कर उनकी पत्नी को तंत्रशक्ति से मुक्त किया। क्षणमात्र में उनकी मस्तिष्क विकृति ठीक हो गई। जो आर्थिक हानि होनी थी सो तो हुई किन्तु जीवन तो सरस व सुन्दर हुआ। वह सव दाता की दया का ही प्रभाव था।

अमृतसर मे

दिल्ली से रवाना होकर अमृतसर पधारना हुआ। दिल्ली से अमृतसर जानेवाली सड़क चौड़ी और अच्छी है। तीन-चार गाड़ियाँ एकसाथ आ जा सकती हैं फिर भी इतना ट्राफिक था कि पगपग पर दुर्घटना का भय था। मार्ग में तीन-

चार ट्रकें उलटी हुयी देखी। सडक के दोनों ओर बडे बडे पेड और अनाज के हरे-भरे खेत थे। दृश्य बड़ा ही सुन्दर था। अमतसर में नाथानी जी के मामाजी के यहाँ ठहरना हुआ।

अमृतसर वैसे तो भारत का प्रसिद्ध नगर है और अनेक बातों के लिए प्रसिद्ध है किन्तु दूध के लिए भी कम प्रसिद्ध नहीं है। वहाँ का दूध शुद्ध व अच्छा था। दूध की दुकानो पर दूध के लिए बडी बडी गिलासों का प्रयोग किया जाता है। कम से कम आधा किलो दूध आता होगा। यहाँ की भैंसें हृष्ट-पुष्ट और अच्छा दूध देने वाली होती हैं। उन्हें अधिकतर हरीघास ही खिलाई जाती है। एक नई बात वहाँ देखने को मिली। दूध बेचने वाले, जहाँ भी दूध देना होता है अपने साथ भैंस को ले जाते हैं और जिस ग्राहक को जितना चाहिये उसे उतना ही दूध सामने निकालकर देते हैं। इन भैंसों से जब चाहें तब दूध निकाला जा सकता है। एक एक भैंस एक बार में दस दस किलो तक दूध दे देती है। गायें बहुत कम दिखाई दीं। भैंसों के साथ साथ गायों को भी पाला जाता तो अच्छी बात होती। भारत कृष्ण का देश है जिसे गाय प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। गाय कामधेनु है। वह ऐश्वर्य से परिपूर्ण है। उसका दूध बुद्धिवर्धक होता है जबकि भैंस का दूध जडता का सूचक है। कुछ भी हो दूध बडा मधुर और स्वादिष्ट लगा और दाता के अतिरिक्त हम सब ने खूब दूध पिया।

अमतसर व्यास नदी के तट पर स्थित है। व्यास पवित्र नदी मानी जाती है। नगर के मध्यभाग में अमृतसर नामक सरोवर है। इस सरोवर के कारण ही इस नगर का नाम अमृतसर पडा है। अमृतसर सिक्खों का प्रमुख तीर्थस्थान है। यहाँ तेरह गुरुद्वारे हैं। रामनाथ जी का मकान जलिया वाले बाग के निकट ही था। अत सबसे पहले दाता हम सब के साथ वहीं पधारे। यह वही स्थान है जहाँ जनरल डायर ने अनेक निरीह लोगो को घेरकर गोलियों से भून दिया था। यह स्थान अंग्रेजों की नृशंसता का जीता-जागता उदाहरण है। वहाँ जाते ही प्रत्येक देशवासी के हृदय का खून खौलने लगता है और बरबस ही नेत्रों से अश्रु टपक पडते हैं। यह स्थान छोटासा है जो चारों ओर ऊँची दिवारों से घिरा हुआ है। यह स्थान अब राष्ट्रीय तीर्थ बन गया है। वहाँ अपने आप यह भाव उठे –

"जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
न्यौछावर कर दें हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारतवर्ष॥" प्रसाद

जलियावाले बाग से निकलकर मुख्य गुरुद्वारा अर्थात् स्वर्ण-मन्दिर देखने गये। यह मन्दिर एक सरोवर के मध्य में स्थित है। विशाल सरोवर के मध्य पैंसठफीट वर्ग के चबूतरे पर यह मन्दिर स्थित है। इस मन्दिर में नगे सिर नहीं जाने दिया जाता है। सिर किसी न किसी से ढका होना आवश्यक है। हम सबने अपने अपने रुमालों से सिर ढक लिया और मन्दिर में गये। मन्दिर के बीचोबीच

मुख्य पीठ पर 'गुरुग्रन्थ साहब' प्रतिष्ठित है। गुरुग्रन्थ साहब सिक्ख धर्म की मुख्य पवित्र पुस्तक है। इस धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक साहब थे। गुरुनानक के जीवन पर कबीर, रविदास आदि सन्तों का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनका मानना था कि ईश्वर एक है और वह निराकार है। मूर्ति पूजा में उनका विश्वास नहीं था। धार्मिक रूढ़ियों तथा जाति-पांति के भेदभाव और छुआ-छूत के भी वे विरोधी थे। वे हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं समझते थे। उन्होंने दोनों जातियों की एकता पर बल दिया। उनका रहन-सहन, ईश्वरभक्ति और उपासना का तरीका बड़ा सादा था। वे प्रार्थना और भजन को उपासना का मुख्य साधन मानते थे। उनकी अनेक रचनाएं है जो 'नानकवाणी' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी वाणी को 'उदासी' नाम दिया गया है। गुरुनानक ने जिस विचारधारा को चलाया वह आगे चलकर सिक्ख धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुई। सिक्ख धर्मावलम्बी इन्हे अपना प्रथम गुरु मानते है। गुरुनानक के बाद सिक्ख धर्म के नौ गुरु और हुए। गुरु गोविन्दसिंह इस धर्म के अन्तिम गुरु थे। पांचवें गुरु श्री अर्जुन देव ने गुरुग्रन्थ का संकलन किया। इसमें उन्होंने कई सन्तों के पदों का संग्रह किया। जिस प्रकार प्राचीनकाल मे वेदों में अनेक ऋषि-महर्षियों द्वारा प्रणीत मन्त्रों का संकलन है उसी प्रकार गुरु ग्रन्थ साहब में भी अनेक सन्तों के 'सबद' संग्रहीत है। प्रारम्भ के पांच गुरुओं के अतिरिक्त नवें गुरु श्री तेगबहादुर की वाणी भी गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत है जिसके लिए पांचवें गुरु ने स्वयं विशेष रूप से निर्देश दिया था।

जिस समय दाता मन्दिर में पधारे उस समय कथा चल रही थी। कुछ देर तक कथा का श्रवण किया गया। फिर सरोवर के दर्शन का आनन्द लेते हुए मन्दिर के बाहर आ गये। मन्दिर वास्तव में दर्शनीय है और भारतीय कलाकृति का एक अनूठा नमूना है। वहां से दुर्गा भवानी के मन्दिर में गये। वह मन्दिर भी सुन्दर है।

दूसरे दिन प्रातः ही स्नानार्थ एक कुएं पर पधारना हो गया। हरेभरे खेतों के मध्य एक कुआं था जिस पर मोटर चल रही थी। एक हौज बना था जिसमे पानी गिर रहा था। हौज पूरा पानी से भरा था। चार पंजाबी हौज मे स्नान कर रहे थे। शरीर उनका हृष्ट-पुष्ट तथा सुन्दर था जिससे काम के अवतार का भ्रम होता था। मस्ती से स्नान कर रहे थे और साथ ही हंसीमजाक भी। उनकी मस्ती को देखकर उस कौम के प्रति गर्व हुआ कि कैसी मस्त कौम है। वह कौम अब तक भारत का गौरव रही है। अमृतसर के आदमियों की मस्ती और वहां की भैसें देखने की ही वस्तु है। अमृतसर में माताजी जी के मामाजी ने दाता की बड़ी सेवा की। वे भी हृदयरोग से पीड़ित थे। कहीं आना जाना उनकी शक्ति के बाहर था। माताजी जी की प्रार्थना पर दाता ने उन्हें कष्टमुक्त किया। वे अपने आप को स्वस्थ अनुभव करने लगे। उन्हें भूख भी लगने लगी व खुराक में भी वृद्धि हुई। दाता निरर्थक किसी को कष्ट नहीं देते वरन् जहां भी पधारते है

वहा का भला ही करते है। उनका स्वभाव ही है कि कण लेते है और बदले मे मण लौटाते हैं।

जम्मू-काश्मीर में

अमृतसर से पठानकोट पहुचे। पठानकोट सैनिक गतिविधियो के लिए प्रसिद्ध है। काश्मीर जाने के लिए यह अन्तिम रेलवे स्टेशन था। यहाँ महाराजा रणजीतसिंह का मन्दिर दर्शनीय है। इसमें ईरान से लाया गया सामान विद्यमान है। वहा से जम्मू की ओर बढे। पजाब और जम्मू के बीच एक नदी है जिसमें काँटेदार तार बिछे हुए हैं। उन तारों पर होकर कोई आ-जा नहीं सकता। सडक पर चौकी थी जहाँ गाडियो और पासपोर्ट की जाच हुई। नाथानी जी की कार में डालडा घी का एक पीपा था जो वहीं उतरवा लिया गया। उन दिनो जम्मू-काश्मीर मे डालडा घी के ले जाने पर प्रतिबन्ध था।

जम्मू में विश्रान्तिगृह मे ठहरे। जम्मू छोटा किन्तु सुन्दर नगर है। वहाँ हर प्रकार की व्यवस्था बडी सुन्दर थी। यहाँ का भोजन भी सात्विक और स्वादिष्ट था। वहाँ के निवासियो का व्यवहार भी सराहनीय था।

अगले दिन श्रीनगर के लिए रवाना हुए। सडक ऊची-ऊँची पहाडियों के बीच होकर जाती थी जिसके एक ओर कल-कल स्वर से बहते हुए पानी के स्रोत या नदियाँ थी तो दूसरी ओर हरी हरी पहाडिया। कुछ दूर ही गये होगे कि पीछे से सैना की ट्रकें आ गई। सामान्यत उन दिनों सेना की ट्रकों का आवागमन रहता था। उस समय ४० ट्रकें थी। सेना की सभी गाडिया जब तक नही निकल गई तब तक हमारी गाडियो को एक ओर खडा कर देना पडा। चलने पर बैनियाल का दर्रा आया। बैनियाल की पहाडी ऊची है। काश्मीर-घाटी में इसको पार करके जाना होता है। अधिक ऊँची होने से खतरे बहुत है। इन खतरों से बचने के लिए राम कृष्ण नाम से एक टनल की खुदाई का कार्य चल रहा था। टनल का कार्य लगभग समाप्ति पर था। टनल में प्रवेश की मनाही थी। बताया गया कि यह टनल तीन मील लम्बी है।

हमारी गाडियो को बैनियाल की पहाडी पर होकर जाना पडा। दृश्य तो बडा सुन्दर था किन्तु सडक पर इतने मोड थे कि अच्छे अच्छे ड्राईवरो के गाडियो को चलाने में हाथ-पाव फूल जाते हैं। कुछ ऊपर चढे होगे कि सडक पर कुहरा छाने लगा। ड्राईवरो के लिए परीक्षा का समय था। ठण्ड से हाथ सिकुड रहे थे। सडक कोठरे से युक्त एव टेढी मेढी और चढाई थी। साथ ही ड्राईवरों के लिए अनजानी। जीप के ड्राईवर श्री सुमेरसिंह जो जो दक्ष ड्राईवर माने जाते है, उनके हाथ ठण्ड से सिकुड गये। उनके हाथ-पाव फूल गये। उन्होने टाना से जीप चलाने की अपनी असमर्थता प्रकट की। एक स्थान पर तो जीप गिरते

गिरते बची। एक चौकी पर जीप को रोक दिया गया। सुमेरसिंह ने अग्नि मे अपने हाथ गरम किए तब जाकर वे जीप चला सके। दाता की कृपा से ही तीनो गाड़ियां उस घाटी को पार कर सकी। मार्ग से कुछ दूर हट कर वैष्णवी देवी का मन्दिर है किन्तु समय अधिक होने से हम लोग वहां नही जा सके। कुछ ही आगे बढे होगे कि संध्या समय निकट आ गया और सभी को ठण्ड का अनुभव होने लगा। आगे बढ़ना कष्टप्रद होने लगा अतः काजीकुण्ड के डाकबंगले पर ठहर जाना पड़ा।

स्टेशनमास्टर साहब श्री राधाकृष्णजी जयपुरवाले के लड़के श्री जगदीशचन्द्र सेना में मेजर के पद पर नियुक्त थे। उनकी उस समय काश्मीर में तैनाती थी। वे उस दिन श्रीनगर में थे। रात्रि को दाता ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर अपनी काश्मीर मे पहुँचने की सूचना दी तथा आज्ञा दी कि प्रातः चार बजे सड़क पर बीस मील पर मिलो।

काजीकुण्ड से प्रातः ही रवाना होकर श्रीनगर की ओर बढे। बीस मील की दूरी रही होगी कि श्रीनगर की ओर से मोटरसाईकल पर श्री जगदीशचन्द्र आते हुए दिखाई दिये। आते ही उन्होने दाता व मातेश्वरी जी को साष्टांगप्रणाम किया। हम सब को उनके अचानक मिल जाने से आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता हुई। जब उन्होने बताया कि दाता ने उन्हे दर्शन देकर वहाँ पहुँचने का आदेश दिया है तो अतीव प्रसन्नता हुई। दाता की महानता और दयालुता पर गर्व हो आया और कुछ समय तक तो आनन्द के सागर मे गोता लगा गये। इसके बाद श्रीनगर की ओर बढ़ गये।

पंजाब नेशनल बैंक के मैनेजर श्री सेठी की एक कोठी दीवान गंज मे थी जिसमे विराजना हुआ। कोठी मे और तो सब सुविधाएँ थी किन्तु शौचालय एक ही था और वह भी साधारण सा। अतः शौचालय की परेशानी थी।

श्रीनगर वैसे तो सुन्दर और रमणीक नगर है किन्तु बड़ा महंगा है। उस समय ठहरने के स्थान वहां इतने महंगे थे कि कुछ कहा नही जा सकता था। एक छोटे से कमरे का किराया भी पन्द्रह रुपयो से लेकर चालीस रुपये प्रति दिन का था। वहाँ तो कहीं भी जाकर खडे रहते तो उस स्थान का भी किराया लगता था। एक प्रकार से पैसो की लूट थी। साधारण आय वाले व्यक्ति का वहाँ ठहरना संभव ही नहीं है। हर समय भ्रमणकारियो की भीड़ लगी रहती थी। वहाँ पानी की कमी नही थी किन्तु सड़को और गलियो से पानी निकालने हेतु गटर नहीं थे। सड़को और गलियो में पानी भरा रहता था इसलिए पूरे नगर में गन्दगी अधिक थी। झेलम नदी शहर के बीचोबीच होकर निकली है जो शहर को दो भागों मे विभाजित करती है। श्रीनगर बहुत ही गन्दा शहर प्रतीत हुआ किन्तु शहर के बाहर निकलते ही प्राकृतिक सौन्दर्य की अद्‌भुत छटा मन को मोहित किये बिना

नहीं रहती। शहर के चारों ओर घाटी के छोर पर स्थित श्वेत बर्फ की चादर से ढँकी हुई पर्वतश्रेणियाँ इतनी सुन्दर और प्यारी लगती है कि दर्शक एक बार तो अपने आपको ही भूल बैठता है। घाटी में चारों ओर चावल के खेत थे जिनमें उस समय पानी भरा हुआ था। खेतो का सौन्दर्य देखते ही बनता था।

शौचालय की व्यवस्था न होने से शौच के लिए तीस-चालीस मील की यात्रा करनी होती थी। सडक के दोनों ओर धान के खेत थे। खुला स्थान पहाड़ियो के पास ही मिलता था। अतः शौच के कार्यक्रम में ही हम लोगों ने पूरे काश्मीर को देख लिया था। पन्द्रह दिन तक श्रीनगर में विराजना हुआ। प्रतिदिन प्रातः एक सडक पर निकल जाते और दैनिक कार्यों से भी निवृत्त होकर उस ओर के स्थान भी देख लेते थे। प्रातः उठकर दैनिक कार्य हेतु निकल जाना, वापिस आकर भोजन और विश्राम करना, तीसरे प्रहर को भ्रमण हेतु निकल पडना और रात्रि को सत्संग करना यही वहाँ का दैनिक कार्यक्रम था।

जगदीशचन्द्र जी की वजह से काश्मीर स्थित सेना के जनरल कमाण्डिंग अफसर श्री उम्मेदसिंह जी दूदूवाले दाता के दर्शन हेतु आ गये। वे एक दिन दाता को आजाद काश्मीर की सीमा पर ले गये। वहा जो भी सैनिक गतिविधियाँ हुई थी उसका विवरण जानने को मिला। जो कुछ विवरण जानने को मिला वह रोमांचित कर देने वाला था।

श्रीनगर से लगी एक पहाडी पर शंकराचार्य द्वारा स्थापित शिवलिंग है। इस पर्वत को ही लोग शंकराचार्य कहते है। मन्दिर पर जाने के लिए दो मील की चढाई करनी होती है। पर्वत के नीचे शंकर मठ है। नगर में शाह हमदन की मस्जिद है जो देवदारु की लकडी से बनी है। यह मस्जिद एक पुराने मन्दिर को तोडकर बनाई गई है। इसके एक कोने के पास पानी का स्रोत है। हिन्दू अभी भी उस स्थान की पूजा करते हैं और मानते हे कि वह काली मन्दिर का स्थान है। श्रीनगर में ही महाश्री का पाव शिखरोवाला मन्दिर है जो उस समय श्मशान भूमि के रूप में था। नगर के पास ही 'हरिपर्वत' नामक एक छोटी पहाडी है जिस पर अकबर के समय एक परकोटा बनवा दिया गया था। परकोटे के भीतर एक मन्दिर और एक गुरुद्वारा है। इस पहाडी के दक्षिण में एक विशाल शिला पर महागणेश जी की मूर्ति है।

एक दिन दाता का पधारना हवाई स्टेशन की ओर हुआ। मार्ग में एक ठेकेदार का बादाम का बाग था। उस ठेकेदार को लोग 'रहीम दादा' के नाम से पुकारते थे। जब उसकी दृष्टि दाता पर पडी तो वह दौडा हुआ आया और जमीन तक झुक कर नमस्कार किया। कुछ देर वह दाता की वाणी को सुनता रहा। वह दाता से बडा प्रभावित हुआ। उसने बादाम के बाग मे पधारने के लिए दाता से आग्रह किया। उसने दाता को कुछ बादामें भेंट की। उसने बताया "इस क्षेत्र में कबायली लोग पहुँच गये थे। यह तो सरदार भाई की कृपा हो गई जिससे

हम लोग बच गये अन्यथा हमारा क्या होता यह तो भगवान ही जान सकता है।" विवेकी जन ही वस्तुस्थिति का सही परिप्रेक्ष्य बोध कर पाते है।

उस दिन के बाद वह दाता के दर्शन प्रति दिन करता और बादाम भेंट करता। वह दाता के दर्शन कर गद्‌गद्‌ होता और हाथ जोड़कर एक ओर खड़ा हो जाता। दाता भी मुस्कराते हुए उससे बड़ी देर तक इधर उधर की बाते करते रहते। काश्मीर मे मेवे और फलो की कमी नही है। स्ट्राबेरी भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। प्राय. प्रातःकाल के नाश्ते मे स्ट्राबेरी अवश्य होती। केसर की खेती भी वही देखने को मिली।

यहाँ 'शिकारा' पर्याप्त मात्रा मे देखे गये। शिकारा लकड़ी के नाव मे बने मकान होते है जो नदी या झीलो मे होते है। उनमे यात्री लोग किराया देकर रहते है। वे पानी मे चलते फिरते घर है जो बडे ही अच्छे लगते है। नगर के पास ही डलझील है, जिसमे अनेक शिकारे थे। हरिराम जी की इच्छा एक दो दिन शिकारा मे रहने की हुई। दाता की आज्ञा लेकर वे पत्नी को लेकर एक शिकारे मे जा रहे। शिकारे मे रहने, खाने-पीने आदि की सभी व्यवस्था होती है। हर प्रकार की सुविधा उनमे होती है। किराया भी सामान्य मकानो से कई गुना अधिक होता है। श्रीमन्त ही उनमे रहते है। नाथानी जी दो दिन शिकारे मे रहकर वापिस लौट आये।

डलझील के एक ओर शाहजहाँ बाग, निशात बाग, शालीमार बाग और निशाद् झरना है। सभी स्थान बडे सुन्दर है। हजारो भ्रमणकारी इन्हे देखने प्रति दिन आते है। बागो में भिन्न भिन्न प्रकार के पौधे और चिड़ियाये देखने को मिली। इसी झील पर एक दिन चोमू ठाकुर और उनका परिवार मिल गया। वे दाता के दर्शन कर अतीव प्रसन्न हुए। बड़ी देर तक वे दाता से बातें करते रहे।

काश्मीर में हम लोगो ने चलते फिरते बाग और खेत भी देखे। पानी मे लकड़ी के लठ्ठे डालकर उन्हे आपस मे बांध दिया जाता है और उन पर मिट्टी डालकर पौधे लगा दिये जाते है। ये चलते फिरते खेत बडे ही सुहावने लगते है। इनके मालिक नावो की तरह इन्हे जहाँ चाहते है ले जाते है।

एक दिन नगीनाझील देखने गये। नाव मे बैठकर झील के मध्य एक शिकारे मे जाकर स्नान किया। इस झील मे कई नव-विवाहित जोडे छोटी छोटी नावो मे अलग-अलग बैठकर किलोले कर रहे थे। उनके शरीर पर अन्डरवीयर के अलावा कोई वस्त्र नही था। नये जोड़ो के लिए यह झील क्रीड़ास्थली है। अत्यधिक रमणीक होने से वैसे तो पूरा काश्मीर ही उनके लिये रंगभूमि है किन्तु नगीना झील की अपनी विशेषता है। यह झील नगर से दूर होने से एकान्तता लिए हुए है।

एक दिन प्रातः क्षीर भवानी के दर्शन करने गये। वहाँ से व्यास नदी पर जाकर स्नान किया। पानी बहुत ठण्डा था। व्यास दाता की प्रिय नदी है अतः

अत्यधिक जल के शीतल होने पर भी बडी देर तक स्नान करते रहे। लौटते वक्त मार्ग के सौन्दर्य को देख देखकर आनन्दित हुए। सडको के दोनो ओर पानी ही पानी था। हरे भरे खेतो के अन्त में बर्फ से ढके हुए पहाड थे।

एक दिन गुलबर्ग की ओर निकल गये। पहाडियो के पास पहुँचकर निर्मल स्रोत में दैनिक कार्यों से निवृत्त हुए। वहाँ से गुलबर्ग के लिए दो मील की चढाई थी। मार्ग अच्छा न होने से गाडियों को चढाई के नीचे ही छोडना पडा। ऊपर जाने के लिए घोडे सवारी के लिए किराये पर मिलते है। श्रीमन्त लोग सवारी का प्रयोग करते हैं। हम लोगों के लिए दो मील साधारण चढाई का क्या महत्व है। मातेश्वरी जी आदि सभी लोग पैदल ही ऊपर पहुँचे। ऊपर विस्तृत मैदान था। उस मैदान के अन्त में बर्फ की ढलुआ पहाडियाँ थी जहाँ लोग स्केटिंग करते हैं। एक किनारे एक छोटा सा गाँव है जो शेख अब्दुला का जन्म स्थान है। स्केटिंग के लिए अनेक युवक-युवतियाँ आते है और फिसलने का आनन्द लेते है। गुलबर्ग काश्मीर का सबसे अधिक रम्य स्थान है।

श्रीनगर में रहकर लगभग पूरे काश्मीर को देख लिया था। केवल पहलगाव और अमरनाथ का स्थान रह गया था। इन दोनों स्थानो को देखने की योजना लौटते वक्त की थी। अत श्रीनगर से पहलगाव के लिए रवाना हो गये। वहाँ इन पन्द्रह दिनों में अनेक लोग दाता से परिचित हो गये थे। सभी ने बडी भावभीनी बिदाई दी। मार्ग में अनन्तनाग के दर्शन किए। मटनगाव भी मार्ग में ही आया। इस गाँव में एक सरोवर है। वहाँ के पन्डे लोग इसे मार्तण्ड तीर्थ बनाते हैं। यहा एक साधु की समाधि है। समाधि पर एक गड्ढा है जिसको लोग पाण्डवों की गुफा कहते हैं। मटन से दो-तीन मील दूरी पर एक पहाडी पर मार्तण्ड मन्दिर बना है। यह मन्दिर बडा विशाल और प्राचीन है। बडी बडी शिलाओं जैसे पत्थरो से बना है। इस मन्दिर को देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहा। बरबस ही यह विचार हो आया कि इतने बडे पत्थरो को इस ऊँचाई तक कैसे पहुँचाया होगा। मन्दिर खण्डहर के रुप में था फिर भी सुन्दर और आकर्षक। वहाँ से अवन्तिपुर पहुँचे। वहाँ भी दो मन्दिर है। इन दोनों मन्दिरो की पूजा हिन्दू पुजारी ही करते हैं। उन लोगो ने बताया की बडी कठिनाई से वे अपने धर्म को बचा पाये हैं। अभी भी अनेक दुःखों का सामना उन्हें करना पड रहा है। जिस प्रकार मुह में दाँतों के बीच जीभ रह रही है उसी प्रकार मुसलमानों के बीच उन्हें रहना पड रहा है। भारत के स्वतंत्र होने के बाद कुछ राहत मिली है।

तीसरे पहर पहलगाव पहुँचे। वहाँ नदी के किनारे तम्बू लगाकर रहना पडा। वहाँ पहुँचने के बाद मौसम खराब हो गया। वर्षा भी हो गई। शुक्ला साहब को ज्वर हो आया। उस समय तक अमरनाथ का मार्ग नहीं खुला था फिर भी कुछ लोगों की अमरनाथ जाने की इच्छा थी। शुक्ला साहब को वही रुकने को कहा

गया किन्तु जब दाता ने देखा कि वे मन ही मन दुःखी है तो अमरनाथ जाने का कार्यक्रम ही स्थगित कर दिया। खराब मौसम मे बर्फ मे चलने के खतरे को उठाना ठीक नहीं था। अतः वहीं से वापिस हो गये।

वापसी

पहलगाँव से प्रातः ही रवाना हुए। उस दिन निर्जला एकादशी थी। बेनियाल पहुँचते पहुँचते तीसरा पहर हो गया। सड़क पर बादलो की वजह से अन्धेरा था इसलिए ड्राईवरो को गाड़ियाँ चलाने में कठिनाई हो रही थी। गाड़ियो को रोक रोक कर कभी कभी मार्ग देखना पड़ता था। बड़ी कठिनाई से दाता-दाता करते हुए दर्रा पार किया। आगे का मार्ग साफ था अतः शामतक जम्मू पहुँच गये।

अगले दिन पठानकोट होते हुए भाखरानांगल बाँध की ओर बढे। नांगल के लिए एक सीधा मार्ग होशियारपुर होकर जाता था। उसी मार्ग से चल पडे। मार्ग में ऐसा सुविधाजनक स्थान नहीं आया जहाँ ठहर कर भोजन की व्यवस्था की जा सके। भोजन तो दूर उस दिन नाश्ता भी नहीं हो सका। होशियारपुर शाम की पांच बजे पहुँचे। आगे चलने पर सोन नदी आयी। नदी पर पुल नहीं था। नदी में पानी चढ़ गया था इसलिए जीप और कारो को निकालना कठिन हो गया। यदि नदी पार नहीं की जाती तो नांगल पहुँचने के लिए पुनः वापिस लौट कर कई मीलो की दूरी पार करनी पड़ती जिसमें पूरा दिन लग सकता था। एक समस्या खड़ी हो गई। दो दिन के भूखे अलग। अन्त में दाता ने वाहनो को पानी में से निकालने की आज्ञा दे दी। जीप की मशीन तो ऊपर थी किन्तु दोनो कारो में तो पानी भरने का खतरा था। आस्टिन कार तो बहुत ही छोटी और नीची थी। पानी की गहराई तीन फीट से कम नहीं थी और चौड़ाई लगभग १५० फिट थी। वहाँ उपस्थित लोगो ने कारो को पानी में डालने से मना कर दिया। ड्राईवर लोग हिचकिचाये किन्तु दाता ने कारो को आगे बढ़ाने का आदेश दे दिया। ड्राईवरों ने फेनबल्ट खोल कारों को पानी में डाल दिया। कारें आगे चलती रहीं व पीछे से दाता हाथ का संकेत करते रहे। पहले जीप निकली। जीप के पीछे कार व उसके पीछे आस्टिन। कारें आधी ऊँचाई तक पानी में डूब गई थी किन्तु परम आश्चर्य की बात ही हुई की न तो पानी ही कारों में गया और न कारो की मशीन ही रूकी। सभी लोग कारों को पार होते देख दाँतों तले अंगुली दबाने लगे। वाहनो के निकल जाने पर दाता आगे बढे। उनके पीछे अन्य लोग थे। पानी में आधी दूरी पार की होगी कि पानी के वेग से शर्मा साहब भयभीत हो गये। भय से उनके हृदय की गति बढ़ गई। साथ ही हृदय-चाप भी बढ़ गया। वे घबरा गये। आगे बढ़ना व पानी से बाहर होना कठिन हो गया। यदि उन्हें पकड़ा न होता तो वे पानी में गिर पड़ते। उनकी हालत देख अन्य सभी लोग घबरा गये। नाथानी जी ने आगे बढ़कर दाता से अर्ज किया और उनकी पुकार की। दाता ने

हाथ का संकेत किया। देखते ही देखते उनके हृदय का दर्द बन्द हो गया और वे ठीक महसूस करने लगे। वे पानी से बाहर आये और दाता के चरणों में लोट गये। प्रभुकृपा से ही वे मृत्यु मुख से बच पाये।

दुनिया की ऐसी कोई बात नहीं है जिसको महापुरुष न कर सकते हों। वे चाहें तो क्षणमात्र में पर्वत को राई में और राई को पर्वत में बदल सकते है किन्तु वे ऐसा करते नहीं हैं। वे तो सभी कार्य प्रभु की इच्छा पर छोड देते हैं। जब ऊपर ही आ पडती है और अन्य कोई मार्ग नजर नहीं आता है तभी वे अपनी शक्ति अर्थात् इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हैं। वे कभी भी अपने लिये अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग नहीं करते है। जब जब ही ऐसा हुआ है तो अन्यो के हित के लिए ही हुआ है।

आगे का मार्ग पहाडियो से होकर जाता था अत वाहनो की गति कम ही रही। ठीक रात्रि के बारह बजे नागल पहुचे। इन्जिनीयर श्री बतरा एव शिवपुरीजी उन दिनों नागल में ही थे। वे प्रशिक्षण हेतु वहाँ थे सूचना मिलते ही वे आ गये। उन्होंने जवाहरलाल नेहरु अतिथि गृह में ठहरने की व्यवस्था की। सभी लोग दो दिन के भूखे थे इसलिए हलवाई की दुकान पर ही व्यवस्था करनी पडी।

अगले दिन भाखरा बाध को देखने पधारना हुआ। बाँध निर्माणाधीन था। बिजलीघर बन चुका था। सातसौ छब्बीस फीट तक की ऊँचाई तक बाँध को ले जाने की योजना थी। अनेक क्रेने लगी हुई थीं। सभी कार्य जैसे सीमेन्ट का गिट्टी में मिलाना, गिट्टी का ले जाना, मिश्रण का करना, मिश्रण को ले जाना आदि सभी कार्य मशीनो द्वारा किया जा रहा था। हजारों श्रमिक काम कर रहे थे। वहाँ नया नगर सा बसा हुआ लग रहा था। बतरा साहब ने दाता को पूरी योजना विस्तार से बताई। बाँध के कार्य को देख सभी लोगों को सन्तोष हुआ। वहा से वापिस नागल आ गये। पुल के पास से ही नदी में से नहर निकाली गई है। नहर भी नदी सी लग रही थी। इसके बाद नदी के नीचे बनी सुरग में पधारे। वहाँ सामान्य व्यक्तियों को जाने की मनाही थी। सुरग में बडी ठण्डक और शान्ति थी। वहाँ से अतिथिगृह में पहुंचे।

नागल से विदा होकर जालधर पहुँचे। यह नगर जलन्धर नामक दैत्य की राजधानी रहा है जो भगवान शकर द्वारा मारा गया था। यहाँ जालन्धरनाथ जी का स्थान है। यहाँ विश्वदेवी का सुन्दर मन्दिर है। इसे त्रिगत-तीर्थ भी कहते हैं। वहां से सर हिन्द पहुँचे। वहाँ गुरु गोविन्दसिंह के दोनों बालकों की समाधि देखी। यहाँ अजीतसिंह और झुझारसिंह को दिवार में जिंदा चुनवा दिया था। अजीत ने प्रार्थना की थी कि उसके छोटे भाई को न चुनवाया जाय किन्तु उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर पहले झुझारसिंह को ही दिवार में चुनवाया गया। अपने गुरुपुत्रों की मृत्यु का बदला बन्दा बैरागी ने अनेक नवाबों को मृत्यु के घाट उतार कर

लिया। समाधि स्थल पर पहुँचते ही चलचित्र की भाँति वह प्राचीन इतिहास नेत्रों के सामने आ गया। हम सबने उन शहीदों को मस्तक नवा कर बड़े सम्मान के साथ प्रणाम किया। मुझको यह पद याद हो आया :-

शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा।।

वहाँ से आनन्द साहब गये। यह स्थान गुरु गोविन्दसिंह के चार पाटवी शिष्यों में से एक का है। वहाँ गुरु साहब का विशाल मन्दिर है। वहाँ के व्यवस्थापक ने दाता का अभूत पूर्व स्वागत किया। उन्होंने सभी को रोक लिया और भोजन प्रसाद के बाद ही जाने दिया। वहाँ से चण्डीगढ़ पहुँचे। चण्डीगढ़ हरियाणा और पंजाब की राजधानी है। बिलकुल नये ढंग से इसका निर्माण हुआ है। दोनों ही विधानसभा भवनों को देखा। नगर बहुत ही सुन्दर है। वहाँ से अम्बाला पहुँचे और वहीं रात्रि विश्राम किया।

गीता का प्रारंभ इस श्लोक से किया गया है :-

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।

अम्बाला से रवाना होने पर मार्ग मे यही धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र सामने आया। इसका इतिहास प्राचीन है। इस पावन क्षेत्र मे सरस्वती नदी के पवित्र तटों पर ऋषियोंने सर्व प्रथम वेदमंत्रों का उच्चारण किया, ब्रह्मा तथा अन्यान्य देवताओं ने यज्ञों का आयोजन किया और महर्षि वशिष्ट और विश्वामित्र ने ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त किया, पाण्डवों और कौरवों ने इसी को महाभारतीय समर का युद्धाङ्गण बनाया, भगवान कृष्ण ने गीता का अमर संदेश सुनाया और भगवान व्यास देव ने इसी से सम्बन्धित महाभारत की रचना की। महाराज पृथु ने इसी स्थान को कृषि भूमि बनाया। इसी स्थान पर हिन्दू सम्राटों और मुसलमान बादशाहों को राज्य लक्ष्मी से वंचित होना पड़ा। प्रत्येक युग मे सम्राज्यों के उत्थान और पतन का इतिहास इसी क्षेत्र में मानव रक्त से लिखा गया। यह क्षेत्र पचास मील लम्बा व पचास मील चौड़ा है। अब इस क्षेत्र में अनेक नगर व गाँव बस गये हैं। दक्षिण किनारे पर पानीपत, पश्चिम में पटियाला स्टेट, पूर्व में यमुना और उत्तर में सरस्वती है। कुरुक्षेत्र में अनेक सरोवर और कुएँ है। इस समय कुरुक्षेत्र का गीता मन्दिर देखने योग्य है।

वहाँ से दिल्ली पहुँचे। वहाँ भक्तजनों के आग्रह पर दो दिन रुकना पड़ा। दाता ने कृपाकर वहाँ आनन्द की सरिता बहा दी जिसका पान कर कई भक्तों ने कई दिनों की लगी प्यास बुझाई। वहाँ से रवाना होकर अलवर पधारना हुआ। अमरसिंहजी राणावत उस समय जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। उनपर कृपा कर

एक दिन वहीं विराजना हुआ। सत्सग और कीर्तन हुआ। सत्सग में कुछ कैदी भी सम्मिलित हुए। कीतन के समय कई कैदी नृत्य करने लगे। वे भक्ति के रस में सराबोर हो गये। दाता ने उन्हें समझाया तुम यह मत समझना कि तुम ही कैदी हो। हम सब कैदी हैं। तुमने तो कुछ नियम विरुद्ध काम किया जिसको लोगों ने देख लिया और तुम कैदी बन गये। अनदेखे लाखों व्यक्ति अपराध कर रहे है वे सरकार की निगाह में कैदी नहीं बने किन्तु परमात्मा की निगाह में तो पापी है ही। आप उनसे तो कई गुना अच्छे हो। हम दुनिया की कैद में कैद है। हमें माया-मोह बुरी तरह दबोचे हुए है। वह अपनी जेल से प्राणियों को निकलने नहीं देता। तुम्हें पश्चाताप तो है। पश्चाताप से पाप धुल जाता है और मन निर्मल हो जाता है। दुनिया में सारभूत वस्तु तो एक मेरे दाता ही हैं। उसे पाने की कोशिश करो। अहकार रहित होकर उसके चरणों में अपना सब कुछ समर्पण कर दो, देखो कितनी शान्ति और आनन्द मिलता है। तुम यह समझते होगे कि तुम पापी हो अत उसकी तुम्हारे पर महर नहीं होती। अरे! वह तो बड़ा दयालु है। वह तो कुछ भी नहीं देखता। देखता है केवल तुम्हारा प्रेम! तुम्हारा प्यार! तुम्हारे भाव। यह मत सोचो कि ज्ञानी की ही पहुंच उस तक हैं। दाता को बाँध सके ऐसी शक्ति ज्ञान में नहीं है। दाता को बाँधने की शक्ति तो प्रेम में ही है। भक्ति के बधन में ही वह आता है। इस तरह बडी देर तक दाता कैदियों को समझाते रहे।

अगले दिन भर्तृहरि के आश्रम पर होते हुए जयपुर पहुचे। शुक्लाजी के यहा भीड लग गई। सभी को आनन्दित कर दाता अजमेर होते हुए नान्दशा पधार गये। काश्मीर यात्रा एक भ्रमण यात्रा ही रही। इस यात्रा में दाता की लीलाओं का दर्शन कम ही देखने को मिला। साथ में जाने वाले व्यक्तियों का मन नई नई वस्तुओं की ओर प्रकृति सौन्दर्य को देखने में ही लगा रहता था अत सत्सग प्रवचन भी कम ही हो पाया। दिल्ली में दाता की अनन्त कृपा रही। वहाँ सत्सग प्रवचन भी खूब चला व सभी ने खूब आनन्दरस का पान भी किया किन्तु काश्मीर में वैसा आनन्द नहीं मिल पाया। वहाँ भी सत्सग तो प्रतिदिन होता था किन्तु दिनभर के भ्रमण से थके होने से सभी को सत्सग के स्थान पर सोना ही अच्छा लगता था। फिर भी दाता दयाल की असीम कृपा तो पग पग पर बनी रहती थी। उनके सानिध्य में ही अपार आनन्द ही आनन्द था। प्राकृतिक सौन्दर्यों को देखने की जिज्ञासा तो लगभग सभी की समाप्त हो ही गई। इस यात्रा का आनन्द भी निराला ही था व अन्य यात्राओ से भिन्न भी।

o o o

नासिक कुम्भ में

ई. स. १९५७ के आश्विन माह मे जब खेतो में फसले लहलहा रही थी, ताल-तड़ाग जल से परिपूर्ण थे और चारो ओर आनन्द का वातावरण छा रहा था, नासिक मे कुम्भ का मेला लगा। सन् १९५४ में दाता प्रयाग कुम्भ मे हो आये थे तथा भीड़-भाड़ भी पसन्द नहीं करते थे इसलिए नासिक के कुम्भ मे जाने के विचार कम ही थे किन्तु हरिराम जी के विशेष आग्रह पर दाता माधवलाल जी त्रिवेदी को साथ लेकर हरिराम जी के साथ ही जीप द्वारा भीलवाड़ा पधार गये। दूसरे दिन दोपहर की रेल द्वारा नासिक के लिए रवानगी हो गई। साथ मे हरिराम जी, माधवलाल जी, सोहनलाल जी ओझा और लक्ष्मीचन्द नाथानी थे। नाथानी जी और दाता प्रथम श्रेणी मे व अन्य तृतीय श्रेणी में थे। कालाकुण्ड से ही तृतीय श्रेणी वाले तीनो व्यक्तियों को दाता ने अपने पास बुलवा लिया। दूसरे दिन रात्रि को आठ बजे नासिक पहुँचे। स्टेशन से कार किराये पर लेकर नाथानी जी के मित्र के यहाँ पहुँचे। मित्र को ज्यो ही नाथानी जी का पता चला, दौड़ा हुआ बाहर आया और बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। जब नाथानी जी ने दाता का परिचय दिया तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। पूरे दिन भोजन हुआ नहीं था और दो दिन की यात्रा से थके भी थे अतः खा-पीकर सो गये।

अगले दिन गोदावरी पर स्नान करने पधारे। दाता ने वहां जी भर कर जलक्रीड़ा का आनन्द लिया। साथ वाले लोगो ने भी वैसा ही किया। माधवलाल जी ने बताया कि उस समय ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ जैसे यमुना में भगवान कृष्ण और ग्वाल-बालो की जलक्रीडा हो रही हो। गोदावरी से स्नान कर 'राम-दरबार' के मन्दिर में पधारना हुआ। बहुत भीड़ थी फिर भी मन्दिर मे प्रवेश कर श्रीविग्रह के दर्शन किये। विग्रह बडे आकर्षक और मनमोहक थे और ऐसा लगता था मानो साक्षात् दरबार लगा हो। वहाँ से पंचवटी में पधारना हो गया। यह वही पंचवटी है जिसके लिए मुनि अगस्त्य ने भगवान राम को कुछ काल के लिए बसने हेतु निवेदन किया था। राम चरित मानस में गोस्वामी जी ने लिखा है–

'है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊँ॥'

यह पंचवटी परम पावन स्थान है। यहाँ पर भगवान राम और माँ सीता का निवास कुछ समय तक हुआ था जहां उन्होने पवित्र नर-लीला की थी। यहीं रावण ने मारीच को स्वर्णमृग बनाकर मां जानकी को भ्रमित किया था तथा अवसर देखकर उसे हर ले गया था। वहां जाने पर दाता अत्यधिक प्रसन्न दिखाई दिये। इधर उधर घूम रहे थे कि अचानक शोर-गुल हुआ। वहाँ एक गुफा थी। गुफा में कुछ

गुण्डों ने एक महिला के साथ अनुचित व्यवहार किया जिस वजह से यह गडबडी हुई थी। नाथानी जी द्वारा पुलिस को सूचना देकर गुण्डों को पुलिस के सुपुर्द कर दिया गया। आज का मानव कितना पतित हो गया है। वासना में फस कर किस तरह वह पापकम करने को उद्यत हो जाता है। काम क्रोध में लिप्त होकर वह अपने विवेक को खो बैठता है। रजोगुण में से उत्पन्न हुए काम और क्रोध मनुष्य के शत्रु हैं। वे ही मनुष्य को पाप कम की ओर घसीटते हैं –

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भव ।

मानव जीवन एक महत्वपूण जीवन है। इसका लाभ प्राप्त किया जाना चाहिये। ऐसे कम जिससे लाभ के स्थान पर हानि होती है करने से क्या लाभ ? उन महाशय को अपने विवेकहीन कम के लिए क्या मिला, केवल अपमान और बदनामी और ऊपर से जूते अलग। यदि तनिक भी बुद्धि का प्रयोग करते तो ऐसा नहीं होता। कुसगति से ही तो मनुष्य पथभ्रष्ट होता है। अत मनुष्य को चाहिये कि वह सदैव महापुरुषों की सगति करने का प्रयास करे। किसी महापुरुष साधु-सन्त की कृपा होने पर ही पाप की वासना नष्ट हो सकती है।

वह गुफा झोपडी की आकृति की है। उसके तीन भाग हैं। पहले भाग में प्रवेश और तीसरे भाग में निकास माग है। वहाँ पाच वटवृक्ष हैं। समव है इन्हीं वटवृक्षों के कारण इसका नाम पचवटी पडा हो। दाता पचवटी से वापिस आवास पर पहुँचे। तीन बजे पाण्डव गुफा देखने हेतु पधारना हुआ। आवास से पाण्डव गुफा तक पहुँचने में एक घण्टा लगा। पाण्डव गुफा में बौद्ध प्रतिमाएँ हैं। सभव है यह चैत्य रहा हो। वहाँ का वातावरण शान्त और सुखद था।

शाम को छ बजे वापिस आवास पर पहुँच गये। दाता ने हास्य चित्र प्रस्तुत कर सभी का मनोरंजन किया। इसके बाद सत्सग हुआ। दाता के प्रवचन के बाद नाथानी जी ने भजन सुनाये। इसके बाद सभी ध्यान में बैठ गये। दाता की दया से सभी के मन स्थिर हुए और आनन्द की अनुभूति हुई।

अगले दिन गोदावरी में स्नान कर तथा राम दरबार के दर्शन कर वापिस लौट पडे। फिर दाता माधव जी और सोहन जी को लेकर पडाव में सन्तों के दर्शन हेतु पधारे। सन्तो का पडाव वहाँ से तीन मील दूर था। दाता दोनों ही व्यक्तियों को लेकर पैदल ही चले थे। पडाव के पास जाकर उन दोनों को बताया कि उन्हें जो सन्त और जो सम्प्रदाय अच्छा लगे देखकर बताना। साथ में यह भी कहा कि कहीं गुदडी बाबा मिल जाय तो उसे राम राम कह देना। वे दोनों आज्ञानुसार रवाना हो गये। दाता वहीं खडे रहे।

वे दोनों पहले निम्बार्क सम्प्रदाय में गये। काफी भीडभाड थी किन्तु यह सम्प्रदाय उन्हें आकर्षित नहीं कर सका। वहाँ से वे उदासी आश्रम में पहुँचे। 'आओ चेला' से उनका स्वागत हुआ। फिर गाँजे की चिलम उनके सामने प्रस्तुत की गई। सोहन जी थोडे से विनोद प्रिय हैं अत उन्होंने कहा, 'मैं तो सुलफा पीता हूँ।"

सन्तो ने कहा, "इसकी भी व्यवस्था हो जावेगी। चिन्ता न कर! अभी व्यवस्था करते है।" माधव जी ने उन्हे प्रणाम करते हुए मना किया। वे आगे बढ़ गये। उन्होने वहाँ आये हुए लगभग सभी सम्प्रदायो के सन्तो के दर्शन किये। इस कार्य मे उन्हे चार घण्टे लग गये। जब वे वापिस लौटे तो दाता को उन्होने उसी मुद्रा मे वहाँ खडे पाया जिस मुद्रा मे खडे वे चार घण्टे पूर्व छोड कर गये थे। सामने ही एक तम्बू था जिसमे एक वयोवृद्ध सन्त विराज रहे थे। अनुमानतः उनकी आयु सौ वर्ष के लगभग रही होगी। दाढ़ी-मूछो के बाल चाँदी के सदृश श्वेत और चमकीले थे। सन्त ध्यानमग्न थे। उनके सामने उनके शिष्य बैठे हुए 'गुरुमहिमा' स्तोत्र बोल रहे थे। ज्यो ही स्तोत्र समाप्त हुआ, उन्होने अपनी पलके उघाड़ी। दाता ने उन्हे नमस्कार किया। दाता वापिस आवास के लिए चल पडे। मार्ग मे उन दोनो को पूछा, "तुमने क्या देखा? तुम्हे कही कुछ अच्छा लगा।" माधव जी ने कहा, "भगवन! सन्त तो अनेक है, एक से बढ़कर एक। अनेक सम्प्रदायो के सन्त विराजमान है अपने ऐश्वर्य और समृद्धि के साथ। लेकिन आडम्बर का आवरण बहुत देखने को मिला और साथ ही यह भी देखने को मिला कि यद्यपि उन्होने घरबार छोडकर सन्यास ले लिया है किन्तु वासना और कामना से उनका पिण्ड नही छूटा है। चारो ओर भक्तो और श्रद्धालु व्यक्तियो से घिरे है और अभिलाषा रखते है कि धन की प्राप्ति हो। अधिकतर यही देखने को मिला। कही भी मन नही लगा। गुदड़ी बाबा को भी बहुत देखा किन्तु पड़ाव मे वह कही दिखाई नही दिया।"

माधव जी की बाते सुन दाता ने मुस्करा दिया और बोले, "साधुओ की माया साधु ही जाने। नकल है तो भी असल की ही है। गृहस्थियो के लिए तो सभी सन्त वन्दनीय हैं।" दाता ने जो फरमाया उस पर विचार करे तो सही प्रतीत होता है। सन्त जो कुछ करते है वह परमात्मा के लिए ही तो करते है। सन्त का बाना ही परमात्मा का स्वरूप है तब सन्त की क्या बात की जाय। जोधपुर के महाराजाधिराज मानसिंह जी ने तो एक बार एक गधे को भी जिसके कानो मे मुद्रा थी अपने गुरु का स्वरूप समझ हजारो लोगो की उपस्थिति मे साष्टाग प्रणाम किया था। किन्तु मानव की ऐसी दृष्टि सद्गुरु की कृपा पर ही निर्भर है। ज्ञानदेव ने तो भैसे और कुत्ते मे भी भगवान के दर्शन किए है।

यह सब कुछ होते हुए भी बन्दे के लिए तो सद्गुरु ही मुख्य है। कहावत भी है कि 'सब का थोक राखती वैश्या रह गई बांझ'। ठीक है:—

एक ही साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को, तो फूले फले अघाय॥

मूल को पकड़ने पर ही डाली, पत्ते, फूल और फल हाथ आते है। दर्शन करने की बात है, सबके दर्शन करना चाहिये किन्तु मन लगने की बात है, वह तो सद्गुरु चरणो में ही लगता है और उसकी कृपा होती है तब ही वह सब स्वरूपो मे अपने दर्शन करता है।

भोजनोपरान्त सभी त्र्यम्बकेश्वर के दर्शन हेतु रवाना हुए। तीन बजे वहा पहुँचे। मन्दिर मे पहुँच दाता ने माधव जी को कहा, "बिल्वपत्र, पुष्प चन्दन अगरबत्ती, कुकुम जलपात्र आदि लेकर अभिषेक कर आवो।" वहाँ उस समय यह विधान था कि कोई भी व्यक्ति नगे सिर व पायजामा पेन्ट आदि कपडो में निज मन्दिर में नहीं जा सकता था। माधव जी पायजामा भी पहने हुए थे व सिर भी नगा था। निज मन्दिर के बाहर २०-२५ सिपाही नगी तलवारें लिये हुए खड़े थे। माधव जी को इस बात का ध्यान नही था। उन्होने सब साधन लिए और निज मन्दिर में चले गये। प्रभु की लीला ही कहनी चाहिये कि सिपाहियो व पण्डे-पुजारियो के होने पर भी किसी ने उन्हें रोका नहीं। वे सीधे शिवलिंग के पास पहुँचे। स्नान करा कर चन्दन, कुकुम, पुष्प आदि चढा बिल्वपत्र चढाये। फिर अगरबत्ती जला कर अगरबत्ती से आरती की व प्रणाम किया। जब वे प्रणाम कर के उठ रहे थे तब एक दण्डी स्वामी की नजर उन पर पडी। क्रोध से अपना कमण्डल जमीन पर पटकते हुए चिल्लाये 'अरे! यह व्यक्ति यहा कैसे आ गया? इसे फौरन बाहर निकालो।' माधव जी हाथ जोड कर बडी नम्रता के साथ बोले 'स्वामी जी! आप क्रोध क्यो करते है? मुझे तो जो करना था कर लिया। आप शान्त हो! मुझे आशीर्वाद दें मैं आप से आशीर्वाद की आशा रखता हूँ।' स्वामी जी ने तो कुछ सुना ही नहीं। वे तो चिल्लाते ही रहे "निकालो, निकालो इसे यहा से निकालो।' उनकी आवाज सुन कर सिपाही वहाँ आ गये और माधव जी से उलझ गये। ज्यों-त्यों कर उन्होने सिपाहियो से अपना पिण्ड छुडाया। दाता दूर खडे खडे यह तमाशा देख रहे थे। उनके चेहरे पर मुस्कराहट थी।

दर्शन पूजा के बाद दाता का पधारना त्र्यम्बक पहाड पर हुआ। वहाँ कुछ शिवलिंग और गुफाएँ है। ऊपर जाने हेतु सीढियाँ बनी हुई है। दाता तेजी से सीढिया चढ गये। अन्य लोगो को उनके पीछे दौडना पडा। सीढियाँ जहा समाप्त होती हैं वहाँ १०८ शिवलिंग है जिन पर हर समय पानी की बूदें गिरती रहती हैं। कहते हैं कि इन शिवलिंगों की पूजा गौतम-पत्नी अहल्या ने की थी। यह स्थान गोदावरी का उद्गम स्थान है। वहाँ से दाता का गोरखनाथ जी की गुफा की ओर पधारना हुआ। गुफा पहाड को खोदकर बनाई है। दाता गुफा में पधारे। माधव जी आदि बाहर ही खडे रहे। कुछ समय बाद उन लोगो को ऐसा अनुभव हुआ कि गुफा के अन्दर से दो व्यक्तियो के बोलने की आवाज आ रही है। खिलखिलाकर हँसने की भी आवाज आयी। लगभग पन्द्रह मिनिट बाद दाता गुफा के बाहर निकले। फिर माधवजी गुफा में गये। गुफा में कोई नहीं था। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि जब गुफा में कोई नही है फिर हँसने और बात करने की आवाज कहाँ से आयी। गुफा में एक दीपक टिमटिमा रहा था किन्तु उसका प्रकाश तेज था। उस प्रकाश में बारीक वस्तु भी सरलता से देखी जा सकती थी। माधवजी भेंट चढाकर लौट पडे। बाहर आने पर दाता ने पूछा "अन्दर क्या देखा?" माधवजी ने अन्दर

जो कुछ अनुभव हुआ सो कह सुनाया जिसपर दाता ने फरमाया, "मेरे नाथ की अनन्त महर है। इस महर का आनन्द विरला ही ले सकता है।"

वहाँ से भर्तृहरि की गुफा मे पधारना हुआ। वहाँ भी दाता पहले पधारे। लौटने पर दाता के मुखपर प्रसन्नता की झलक थी। इसके वाद माधवजी गये। उस गुफा मे भी अखण्ड ज्योति थी। वहाँ से लौटकर वापिस उस स्थान पर आये जहाँ नीचे जाने हेतु सीढियाँ प्रारंभ होती है। वहाँ गोरखनाथ जी और भर्तृहरिजी की धूनियाँ थी जो प्रज्वलित थी। दाता वहीं विराज गये। अन्य सभी लोग जो पीछे रह गये थे वे भी वहाँ आ गये। वहाँ से चल कर अमृतकुण्ड पहुँचे। वहां का पानी शीतल और मधुर था। सभी ने पानी पिया। फिर नीचे उतर पडे। पहाड़ी पर जाकर आने मे पूरा एक घण्टा लगा। वहां से एक अन्य मन्दिर मे गये जहाँ वागोर का एक पण्डित सेवा करता था। पण्डितजी दाता के दर्शन कर व माधवजी सोहन आदि से मिलकर वडे प्रसन्न हुए। उन्होंने सबका वडे सम्मान के साथ स्वागत किया। कुछ देर वही विराजकर फिर वापिस नासिक लौटना हो गया।

अगला दिन कुंभ स्नान का मुख्य दिन था अतः दाता ने प्रातः जल्दी ही स्नान कर लिया। कुछ समय वाद ही स्नानार्थ सन्तो का जुलूस निकलने वाला था। सव लोग मकान के वहार चबूतरे पर खडे हो गये। कुछ ही देर वाद वैण्ड वाजे की धुन, नगाड़ो की आवाज और घण्टो का नाद सुनाई दिया। जुलूस के आगे हाथी पर नगाडे और उसके पीछे सजे हुए घोड़ो पर ध्वज और पताकाएँ थी सव से आगे शंकराचार्य सम्प्रदाय के सन्तो का जुलूस था। हाथी के हौदे में मण्डलेश्वर विराजे हुए थे। चँवर ढुलाये जा रहे थे। सम्प्रदाय के अन्य सन्त पैदल उनके पीछे पीछे जय वोलते हुए चल रहे थे। उनके पीछे निम्बकाचार्य मण्डल था। वड़ी शान शौकत के साथ। पीछे संत भजन वोलते हुए चल रहे थे। उनके पीछे अनेक सम्प्रदाय के मण्डलेश्वर अपने सम्प्रदाय के सन्तो के साथ थे। किन्हीं-किन्ही सम्प्रदायमण्डल के आगे अखाडे की व्यवस्था भी थी। वड़ा आकर्षक नजारा था। राजा-महाराजो का जुलूस भी इस जुलूस के सामने तुच्छ था। वड़ा लम्वा था वह जुलूस। जयजयकार से आकाश गूंज रहा था। दाता ने फरमाया, "इन सन्तों में गुदड़िया वावा भी आवेगा। माको राम कहे जव उन्हें जाकर राम राम कह देना और कहना कि नान्दशा वाला वावा भी आया है।" कुछ समय की प्रतीक्षा के वाद ही गुदड़िया वावा अपने साथियो के साथ अन्य सन्तो के पीछे आता हुआ दिखाई दिया। ज्योंही दाता का संकेत हुआ दोनो चल पडे। सोहनजी ने जाते ही वावा के चरणो में प्रणाम किया। वावा चौक पड़ा और अपनी टेढ़ी मेढ़ी लकड़ी से सोहनजी को दे मारी और आक्रोश से उनकी ओर देखने लगा। उनकी ऐसी स्थिति देखकर माधव जी ने चरणस्पर्श का साहस नहीं किया। साथ चलने वाले सन्तो मे से एक ने कहा, "वावा ये संसारी जीव है। इन पर क्रोध नहीं करना है। इनको तो आशीर्वाद देना है। आपका कार्य तो

प्राणियो का कल्याण करने का है।' माधवजी बाबा के साथ साथ चलने लगे। उन्होंने हाथ जोडकर प्रणाम किया। बाबा ने उनकी ओर देखा। मौका देखकर माधवजी ने कहा, "नान्दशावाले दाता महाराज पधारे हैं उन्होंने आपको राम राम कहलाया है।' बाबा यह सुनकर प्रसन्नचित होगये। माधवजी की ओर स्नेह दृष्टि से देखते हुए बोले "मेरा भी प्रणाम कह देना।

जुलूस निकल गया। सब लोग मकान में आ गये। दाता भावमग्न थे। कुछ समय तक चुपचाप विराजे रहे। अन्य लोग भी उनके चेहरे पर अपनी दृष्टि स्थिर कर ध्यान मग्न थे। कुछ देर यही स्थिति रही। फिर दाता संतों के गुणानुवाद करने लगे। उनका फरमाना था कि सन्त परमात्मा का स्वरूप ही है। बहुत देर तक दाता सन्तों के बारे में बताते रहे।

अगले दिन कार से अलोरा पधारना हुआ। दाता ने वहाँ की गुफाएँ देखी। वहाँ लगभग ६५ गुफाएं हैं किन्तु ३४ तक ही क्रमाक है। १ से १२ बौद्ध धम १३ से २९ हिन्दू धम, और ३० से ३४ तक जैन धर्म सबधी हैं। ये गुफाएं अजन्ता के सदृश ही है। गुफाएँ कलाकृतियों से परिपूर्ण हैं। वहाँ से घृष्णेश्वर महादेव के दर्शन हेतु पधारना हुआ जहाँ पास ही नदी बह रही थी। नदी में स्नान का आनन्द लेकर मन्दिर में पहुँचे और भगवान शिव का अभिषेक कराया। यह लिङग द्वादश ज्योतिर्लिङगों में से एक है। पुजारी गरीब व्यक्ति था। उसके ६ कुवारी लड़कियाँ थी। बडा सात्विक ब्राह्मण था। सुदामा की तरह ही गरीब। सरस्वती की उसपर अपार कृपा थी किन्तु लक्ष्मी महारानी की उसपर कोपदृष्टि थी। भगवान शिव तो भोलेनाथ हैं। सदैव उन्मीलित नेत्रों से ध्यान में रहते हैं। दुनिया से बेखबर। अब तक उनका ध्यान ब्राह्मण की गरीबी पर गया ही नहीं था। ब्राह्मण के ६ लडकियाँ है और वह भी कुवारी तो उनका ध्यान उन कन्याओं की तरफ गया। दाता के रूप में वहाँ उपस्थित हो गये और उस गरीब पुजारी पर कृपा दृष्टि कर दी। माथाजी से दक्षिणा के रूप में इतना धन दिलवा दिया जिससे उसका काय भली प्रकार चल सके। वहाँ से दौलताबाद पधारना हुआ। वहाँ एक कमरा किरायें से लेकर ठहर गये।

अगले दिन स्नान कर नाश्ता कर ही रहे थे कि एक नजारा सामने आया। शोर-गुल की आवाज आयी। पास के ही कमरे में किसी महाविद्यालय के विद्यार्थी ठहरे हुए थे। प्रोफेसर और युवको के बीच कहा सुनी हो गई। वे प्रोफेसर को पीटने को उद्यत हो गये। दाता ने माधवजी से कहा, "माधव! दौडो-दौडो। ये युवक मास्टर को पीट देंगे।' माधवजी एकदम उठकर उनके पास गये। माधवजी को देखकर युवक तनिक सहमें। एक ने आगे बढकर कहा, "देखिये साहब। हमारे खर्चे के लिए सरकारने इन्हें पैसा दिया है और ये देते नहीं हैं। पैसा इनके बाप का तो है नही जो ये नहीं दे रहे हैं। यदि साहब पैसा नहीं देंगे तो इन्हें मारेंगे।" उधर मास्टर साहब भी अडे हुए थे। उन्होंने कहा, "ये छात्र व्यर्थ पैसा

खर्च कर देते है और फिर मागते है। मुझसे प्रिन्सिपल साहब लड़ेंगे। मैं इन्हे व्यर्थ का पैसा नही देता।" प्रिन्सिपल साहब ने प्रति छात्र को प्रतिदिन के हिसाब से पैसा दिया था। लड़के वही मांग रहे थे। ऐसा लगता था कि प्रोफेसर साहब उसमे से कुछ बचाना चाहते थे। दोनो ही ओर स्वार्थ की भावना थी। माधवजी ने प्रोफेसर साहब से कहा, "आप तो समझदार है। बालक अपने प्रतिदिन का भत्ता माग रहे है। दे-लेकर झगड़ा मिटाओ। व्यर्थ विवाद करने से क्या लाभ ?" बात प्रोफेसर के समझ मे आ गई और उसने युवको को पैसा दे दिया। विवाद समाप्त हुआ। माधवजी वापिस दाता के पास आगये और पूरा विवरण बता दिया। दाता हंसने लगे। उन्होने फरमाया, "देश की क्या हालत होती जा रही है। गुरु-शिष्य मे कैसा व्यवहार होना चाहिए और आजकल कैसा व्यवहार हो रहा है? देश के भविष्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। दाता ही इस देश की रक्षा करे तो करे। बेड़ा ही गरक है। हमारे देश की कैसी महान सस्कृति रही है ? हमारे यहाँ तो गुरु को माता-पिता से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सज्ञा दी गई है। कहा जाता है :-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

कितना ऊंचा आदर्श है हमारा। शिष्य गुरु के आदेश का सदैव पालन करते रहे है। अपना सर्वस्व देकर भी गुरु की आज्ञा का पालन किया गया है। और आज देखो गुरुओ की दशा। गुरु सरे बाजार अपमानित किये जाते है। मार भी खाते है। छात्र अनुशासनहीन होते जा रहे है। दोष छात्रो का तो है ही किन्तु अध्यापक भी दोषी है। आज का अध्यापक स्वार्थी और लालची होता जा रहा है। छात्र के कल्याण की कामना तो होती ही नहीं। छात्र जाय गढ्ढे मे उनके उदर की पूर्ति तो होनी ही चाहिये। ऐसी अवस्था में वही होगा जो आज देखने को मिल रहा है। भगवान कृष्ण उज्जैन मे महात्मा सन्दीपनि ऋषि के आश्रम मे पढ़ते थे। पढाई समाप्त हुई तो भगवान कृष्ण ने दक्षिणा देनी चाही। उन्होने मना कर दिया और कहा, "तुम्हारी योग्यता ही मेरे लिए बहुत बड़ी दक्षिणा है।" कैसा त्यागमय उत्तर था ? पहले के गुरु अपने शिष्य से कुछ लेना तो दूर उनके यहाँ का भोजन-पानी भी नही लेते थे। शारीरिक सेवा लेते, वह भी उनके निर्माण और उत्तम विकास के लिए ही। अहर्निश वे अपने शिष्य के हितचिन्तन मे ही लगे रहते थे। आज ये लोग कैसे है ? इनसे अपने मां-बाप व देश की क्या सेवा होगी! आज कितना गिर गया है हमारा देश ? देश के भाग्य निर्माता ही देश के भक्षक बने हुए है। दाता से प्रार्थना है कि वह इस देश की रक्षा करे"।

सराय से सीधे ही स्टेशन पधारना हो गया। वही से रेल पकड़ कर वापिस भीलवाड़ा पधारना हुआ और वहाँ से नान्दशा।

० ० ०

स्वामी श्री प्रबुद्धानन्द जी से मिलन

'सन्तमिलन और हरिकथा तुलसी दुर्लभ दोय ।'

तुलसीदास जी ने हरिकथा और सन्तमिलन को बड़ा दुलभ बताया है। हरिकृपा से ही यह सभव है। जब हरिकृपा होती है तब ही सदगुणों का जीवन में प्रवेश होता है और जब सदगुणों का प्रवेश होता है तब ही सत्सग की इच्छा होती है। यह सब दाता की कृपा पर ही निभर है। जिस पर दाता की कृपा हो जाती है उसका तो कायापलट ही हो जाता है।

स्वामी प्रबुद्धानन्द जी एक उच्चकोटि के सन्त हुए है। जनवरी सन १९२९ में वे जयपुर में ही बिराज रहे थे। उन्होने दाता के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। उनकी इच्छा दाता से मिलने की हुई। धीरे धीरे मन में उठती हुई मिलन की इच्छा की तरगें बलवती होती गई। उन्होने अपने आपको उन तरगों के शमन करने में असमर्थ पाया। उन्होने, श्री हनुमान शर्मा आई जी पुलिस जिन पर उनका विशेष स्नेह था को बुलाकर अपनी इच्छा व्यक्त की तो उन्होने दाता को जयपुर लिवा लाने का परामर्श दिया। उन्होंने एक पत्र दाता को लिखा। पत्र का उत्तर जब नही आ पाया तो उन्होने टेक्सी कार देकर जोशी जी को नान्दशा भेजा और जयपुर पधारने की प्रार्थना की। दाता का पधारना उस कार से अजमेर हो गया।

उस समय श्री मदनगोपाल जी व्यास अजमेर में सर्किट हाऊस के मैनेजर थे। वे दाता के अनन्य भक्तों में से एक थे। उनके आग्रह पर दाता का बिराजना सर्किट हाऊस में हुआ। उन दिनों भूदानयज्ञ के प्रवतक श्री विनोबा भावे का कार्यक्रम अजमेर में था। वे श्री हरिभाऊ उपाध्याय के गाव हटूडी में ठहरे हुए थे। उनका अगले दिन प्रात ५ बजे दरगाह में प्रवचन देने का कार्यक्रम था। जिलाधीश की ओर से व्यवस्था थी कि सर्किट हाऊस की कार उन्हें हटूडी से लेकर दरगाह में आवेगी और प्रवचन के बाद वापिस हटूडी छोड देगी। श्री मदनगोपाल जी को इस व्यवस्था हेतु सरकार की ओर से विशेष आज्ञा मिली थी। हरिभाऊ जी ने उन्हें बताया था कि लगभग चार बजे वे उन्हें फोन पर आवश्यक आदेश दे देंगे।

इधर दाता का पधारना सर्किट हाऊस में हो गया। दाता के वहाँ पधारते ही भक्त लोग उपस्थित हो गये और रात्रि के तीन बजे तक सत्सग चलता रहा। फिर सब विश्राम हेतु चल गये। मदनगोपाल जी ने अपने एक व्यक्ति को फोन पर बिठा दिया और हिदायत कर दी कि फोन आते ही उन्हें जगा दिया जाय। थके

होने के कारण उन्हे लेटते ही निद्रा आ गई। संयोग की बात है कि उस व्यक्ति को जो फोन पर नियुक्त किया गया था, उसे भी निद्रा देवी ने अपनी गोद मे ले लिया। मदनगोपाल जी भी सो गये और वह व्यक्ति भी। सात बजे के लगभग मदनगोपाल जी की निद्रा खुली तो वे हडबड़ा कर उठे और फोन पर जाकर देखा तो वह व्यक्ति जिसे नियुक्त किया था सोया हुआ है। उसे जगाया गया। मदनगोपाल जी को देख कर वह घबरा गया। वह अपनी लापरवाही के लिए लज्जित हुआ और क्षमा मांगने लगा। मदनगोपाल जी का मुंह उतर गया। वे चिन्तित हो गये। उन्होने सोच लिया कि आज नौकरी गई। पांच बजे विनोबा जी दरगाह मे नही पहुँचे होगे और प्रवचन नही हुआ होगा। बड़ी अव्यवस्था हुई होगी। अब क्या होगा ?

आठ बजे हरिभाऊ जी की लड़की सुशीला जी सर्किट हाऊस मे आयी। आते ही उन्होने व्यास जी को उनकी सुन्दर व्यवस्था के लिए धन्यवाद दिया। व्यास जी हक्के-बक्के होकर देखते रह गये। सुशीला जी ने बताया की उनका ड्राईवर गोपाल समय पर कार लेकर आ गया था। सभी काम समयानुसार हो गया। प्रवचन भी अच्छा रहा। अच्छी व्यवस्था की वजह से विनोबा जी बडे प्रसन्न हुए है। व्यास जी ने तत्काल गोपाल को बुलाया। वह भी सो कर ही उठा था। उसको जब पूछा गया तो उसने बताया कि वह तो सो रहा था। वह तो कार लेकर कही नही गया। इस पर सभी को आश्चर्य हुआ। जिलाधीश ने भी कार की सुन्दर व्यवस्था के लिए व्यास जी को फोन पर धन्यवाद दिया। मदनगोपाल जी सब कुछ समझ गये। वे समझ गये कि यह सब दाता की ही लीला है। अपने भक्त की रक्षा हेतु उसने यह सब कुछ किया है। इस गोरख धन्धे को सुशीलाजी क्या समझे। वह तो धन्यवाद देकर अपने घर गई।

मदनगोपाल जी दाता के पास पहुँचे। उनके वहाँ जाते ही दाता ने पूछा, "तुम्हारी सब व्यवस्था ठीक हो गई ? किसी बात की परेशानी तो नही हुई ?" मदनगोपाल जी की आँखो से आँसू बह चले। उन्होने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "भगवन ! आपकी लीला बड़ी अनोखी है। हम लोग आपकी माया को क्या समझें। उनपर आपको महर करनी थी। उनके भाग्य बडे अच्छे है। आपको उन्हे दर्शन देने थे सो इस तरह दिये। हम अधमो के लिए इतना कष्ट !" दाता मुस्कराते हुए बोले, "मेरे दाता बडे दयालु है रे ! जो उसका हो जाता है उसका तो सारा का सारा काम वही करता है। जिसने अपने आप को उसे सौप दिया वह उसका बन गया।"

इस घटना का विवरण जानकर सभी रोमांचित हो गये। आनन्दातिरेक मे व्यास जी तो जैसे पागल ही हो गये। चाँद जी की प्रसन्नता का भी पारावार नहीं। सभी दीनबन्धु की जय बोल उठे। कुछ लोगो के मन मे विचार आया कि दाता ने विनोबाजी को इस प्रकार दर्शन दिये इससे वे क्या जाने होगे। दाता को स्वयं

प्रत्यक्ष में पधारकर दर्शन देना चाहिए। उन्होंने दाता से आज्ञा लेकर दाता को उनसे मिलने की योजना बनाई। सर्वोदय नेता श्री गोकुलभाई भट्ट दाता से परिचित थे। उन्होने और पुलिस विभाग के महा निरीक्षक श्री गोवधन शर्मा ने मिलकर उनसे मिलने का समय निश्चित किया। दाता का पधारना उस कुटिया में हुआ जिसमें विनोबा जी विराज रहे थे। साधारण औपचारिकता के बाद विनोबा जी ने भू-दान की बात चलाई। उन्होंने दाता से कहा 'आप भी अपने घर में अन्नसग्रह के लिए एक पात्र रखा करें जिसमें एक एक मुट्ठी अन्न प्रतिदिन डाला करें।' दाता ने इसके उत्तर में हँसते हुए कहा 'यह तो आप लोगो की कार्यप्रणाली है। मेरा राम तो स्वय ही दाता द्वारा प्रदत्त एक मुट्ठी अनाज पर जीवित है और उसी पर आश्रित है। हम तो जैसे दाता रखता है उसी प्रकार रहते है। हमारा तो कुछ है ही नहीं।" यह सुनकर विनोबा जी हंसने लगे। इसके बाद भूदान की बातें बन्द हो गई। फिर मीरा की भक्ति और मेवाड की वीरता सम्बन्धी बातें होती रही। कुछ समय ठहर कर दाता वापिस पधार गये।

अगले दिन जयपुर पधारना हो गया। अजमेर से चाँद जी दाता के साथ ही गये। जयपुर में शुक्ला साहब के यहाँ विराजना हुआ। सभी लोग दो घण्टे के अन्दर अन्दर एकत्रित हो गये। दाता के पधारने से चारों ओर आनन्द की लहर दौड पडी। शुक्ला साहब के यहां तो मेला सा लग गया। श्री हनुमान शर्मा भी सुनते ही आ गये। प्रभावोत्पादक प्रवचन से अनेक लोग खिचे हुए चले आये। रात्रि के सत्सग में महा लेखाकार और श्रम आयुक्त श्री चन्द्रा भी उपस्थित हुए।

अगले दिन हनुमान शर्मा के साथ दाता का पधारना प्रबुद्धानन्दजी के यहाँ हुआ। साथ में समुद्रसिह जी डाक्टर साहब जगन्नाथ जी और चादमल जी जोशी थे। उन दिनो स्वामी जी मौन रखते थे। उन्होने स्लेट पर लिखकर दाता का स्वागत किया और उनके पधारने से हुई प्रसन्नता को व्यक्त किया। उनका हृदय गद गद हो रहा था और नेत्रों में प्रेमाधिक्य से अश्रुबिन्दु टपक रहे थे। दाता ने फरमाया, " ज्ञान तो आप जैसे महापुरुषो के लिए है। हमारे जैसे मूढों के लिये ज्ञान का क्या काम है। हमारे पास तो ज्ञान को रखने के लिए भी जगह नहीं है। अज्ञानी रहकर मौज लूटने में ही आनन्द है। हम तो ढोर वृत्ति में ही आनन्द मानते हैं। आपने ढोरो (पशुओ) को देखा है ? वे अपनी इच्छा कुछ रखते नहीं। मालिक उन्हें जहाँ बिठा देता है बैठ जाते हैं और वे जो खाने को देता है खा लेते है। उनकी अपनी कोई इच्छा नहीं। उसी तरह की हमारी वृत्ति है। दाता की इच्छा ही हमारी इच्छा है। वह जहां बिठा देता है, बैठ जाते है और जो खाने को दे देता है वही खा लेते हैं। इसी में आनन्द मानते है। उस मालिक की हम तो कठपुतली है। वह नचाता रहता है और हम नाचते रहते हैं। यह नाच उसी का है। इस प्रकार दाता ने अपनी निरभिमानिता और दाता की कृपा पर प्रकाश डाला। स्वामी जी सुन सुन कर गद् गद हो रहे थे। आगे दाता ने स्वामी जी की

महानता का बखान करते हुए फरमाया. "आप तो प्राणिमात्र को ब्रह्म परमात्मा के रूप मे देखते हे और सर्वान्तर्यामी प्रभु को प्राणिमात्र मे देखते है अतः आप मे प्राणिमात्र के लिए प्रेम भरा पड़ा है। आपने तो दाता को भली प्रकार पहचान लिया है अतः आपकी दृष्टि तो महान हो गई है। आपको तो सभी मे दाता ही दाता दिखाई देता है। आप तो मोह-माया से परे है। आपकी महर चाहिए। जिसने अपने आप को पहचान लिया है, उसने उस परमात्मा अर्थात् दाता को पहचान लिया है। उसके लिए सभी नाम, सभी काम, सभी रूप उसी एक परमात्मा के है। संत मलूकदास जी ने कहा है :–

"सबहन के हम, सबै हमारे; जीव जन्तु सब मोहि प्यारे।
तीनो लोक हमारी माया, अंत कतहुँ काऊ नाहिं पाया।
छत्तीस पवन हमारी जाति; हम ही दिन और हम ही राति।
हम ही तरुवर, कीट पतंगा, हम ही दुर्गा हम ही गंगा।
हम ही मुल्ला, हम ही काजी, तीरथ बरत हमारी बाजी।
हमरै क्रोध और हमरै काम, हम ही दशरथ, हम ही राम।
हम ही कृष्ण, हम ही बलराम, हम ही रावण, हम ही कंस।
हम ही मारा अपना वंस, हम ही किया भारत विध्वंस।।"

"आप सभी को एक ही दृष्टि से देखते है। आप भेदबुद्धि, अहंकार, स्वार्थ और दुराग्रह से रहित हे अतः आप ही से विश्व का हित संभव है। आप तो रन्तिदेव के शब्दो में ही सोचते है। रन्ति देव ने कहा था :–

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।।
कश्चास्य स्यादुपायोऽत्र येनाऽहं दुःखितात्मनाम्।
अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं दुःखभाग्सदा।।

अतः आपको नमस्कार है।"

श्री दाता बड़ी देर तक फर्माते रहे और गद् गद् स्वामी दत्तचित्त होकर सुनते रहे। अन्त मे उन्होने स्लेट पर लिखा, "आपने बड़ा अच्छा सत्संग दिया। आपके यहाँ पधारने का एवं सत्संग चर्चा का आनन्द मेरे हृदय पटल पर स्वर्ण अक्षरो में लिखा रहेगा। मै कृतार्थ हुआ।" स्वामी जी ने भारी हृदय से दाता को विदा किया।

कुछ दिन जयपुर विराजकर दाता वापिस नान्दशा पधार गये। कुछ दिनो बाद दाता का पधारना भीलवाड़ा हुआ। वही दाता ने श्री हनुमान शर्मा और प्रबुद्धानन्दजी को पत्र लिखे जिसमें प्रबुद्धानन्दजी के प्रति दाता के उद्‌गारो का आभास मिलता है।

दाता की दृष्टि मे अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी चराचरात्मक जगत देखने-सुनने मे आता है सब सर्वाधार सर्वनियन्ता सर्वशक्तिमान, सर्व कल्याण स्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है सदा उन्ही से परिपूर्ण है। कोई भी अंश उससे रहित नहीं है। दाता सदा सर्वदा उस परमात्मा को सद्‌गुरु के रुप में अपने पास समझते हुए निरन्तर उसका स्मरण करते है। न मालूम कितने ही व्यक्तियो को दाता ने अपने सरल मधुर और सरस शब्दों में जो राह भटक गये है उन्हें राह पर लाकर अनन्त ज्ञान रूपी दीपक हाथ में पकड़ाया है। एक क्षण भी दाता का दाता के स्मरण बिना नहीं जाता तथा वे हर प्राणी से विशेषकर अपने बन्दो से भी यही चाह करते है कि वे भी अपना एक भी श्वास व्यर्थ न जाने दें। दाता की कृपारुपी बिजली कभी भी चमक सकती है। स्वाति नक्षत्र की बूंद कभी भी सीप के मुंह में गिर सकती है। हमें तो हर समय अपना मुंह खुला ही रखना चाहिये।

० ० ०

भात में वृद्धि

व्यास श्री मदनगोपाल जी के भाई की लड़कियों की शादी थी। व्यास कुटुम्ब बीकानेर का निवासी है। अतः शादी भी बीकानेर में करना ही निश्चित हुआ। मदनगोपाल जी दाता के अनन्य भक्त रहे है। उनकी इच्छा थी कि दाता बीकानेर पधारकर वर-वधू को आशीर्वाद देकर सबको कृतार्थ करें। मदनगोपाल जी उस समय अजमेर सर्किट हाऊस के मैनेजर थे। वे अजमेर से जयपुर वाले श्री चैतन्यप्रकाश जी रंगा की फियाट कार लेकर दिनाक २७-२-६० को अजमेर से रंगा जी और चांदमल जी के साथ नान्दशा के लिये रवाना हुए। कार का ड्राईवर सियाराम भी दाता के चरणो मे विशेष प्रेम रखता था। चारो ही व्यक्ति रात्रि को गंगापुर विश्राम कर अगले दिन नान्दशा पहुँचे। दाता ने चलना स्वीकार कर लिया अतः उसी दिन शाम को नान्दशा से रवाना हो गये। बान्दनवाड़ा के पास पहुँचते पहुँचते तो दाता के सिवा सभी को निद्रा आने लगी। सियाराम जी को तो विजयनगर से ही सुरती ने आ घेरा था। वहाँ वे चाय पीना चाहते थे किन्तु शंकावश वे पी नही सके। बादनवाड़ा पहुंचते पहुँचते तो निद्रा ने उन्हे घेर ही लिया। संकोच से वह कह भी नही सका और स्थिति यह हुई कि कार चलाते चलाते ही बरबस निद्रा आ ही गई। कार चलती रही। उस समय दाता के अतिरिक्त सभी निद्रादेवी की गोदी मे आनन्द ले रहे थे। कार नसीराबाद और वहाँ से नसीराबाद की घाटी में होती हुई अजमेर पहुँची। अजमेर में भी सर्किट हाऊस जो एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित है, के बाहर पोर्च पर पहुँच कर एक झटके के साथ कार रुकी। झटका जोर से लगा जिसके कारण सभी की निद्रा टूटी। वे एक दूसरे को देखने लगे। पोर्च मे गाड़ी को देखकर ड्राईवर सहित सभी को भारी आश्चर्य हुआ। ड्राईवर बोला, "हम तो बान्दनवाडा थे। वहाँ मुझको निद्रा के झटके आने लगे थे। यहाँ कैसे आ गये! यहाँ कौन लाया? दाता हँसते हुए बोले, "और कौन लावे, लाने वाला ले आया। तुम तो सो रहे थे। तुम लोग मेरे दाता को खूब सताते हो। छोटे छोटे कामो में भी तंग करते हो। उसकी तो टेव पड़ी हुई है कि वह विपत्ति मे अपने आदमियों की रक्षा करे। उसकी इतनी दया होते हुए भी तुम लोग भूल जाते हो फिर मेरे दाता क्या करें।" इस तरह मधुर शब्दो मे कार मे बैठे हुए ही उलहना दिया। सभी गद्‌गद् हो गये। अधिक प्रसन्नता से उनके कण्ठ अवरुद्ध हो गये। चारो ही के नेत्रों में पानी था। बड़ी अनोखी लीला है दाता की। जिस पर कृपा करना चाहता है उस पर सहज ही कृपा कर देता है। बान्दनवाडा से अजमेर लगभग अठाईस मील की दूरी पर है। इतनी दूरी तक बिना ड्राईवर कार चलती रहे यह एक कितना अनोखा आश्चर्य है नही तो

और क्या है ? ड्राईवर की एक सैकण्ड की चूक कार को अस्तव्यस्त कर खतरा उपस्थित कर देती है किन्तु यह तो दाता की महर ही थी कि जो सब बच गये। दाता का तो स्वभाव ही है कि वह इस प्रकार की विचित्र और अनहोनी बातें कर अपने बन्दों को बांधे रखता है। आये दिन बिना पेट्रोल वाहनों का चलना चलते चलते वाहनों का रुक जाना वाहनों में खराबी हो जाना ड्राईवर के निद्रा लेने पर भी वाहन का ठीक चलना आदि अनहोनी बातें कर अपने बन्दों को चमत्कृत किया ही करते हैं। वे तीनों ही व्यक्ति आज दाता द्वारा की गई इस कृपा से कृतकृत्य हो गये। श्री त्यागी जी पूर्व मे तो कभी दाता के सम्पर्क में आये नहीं थे। एक दिन में ही दाता को अनेक रूपों में देखकर वे दाता के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखने लगे।

कार की आवाज सुनकर सब लोग बाहर आये। दाता को देखकर वे प्रसन्न हो उठे। जब त्यागीजी ने कार की अनहोनी घटना सुनाई तो वे भी दाँतोतले अगुली दबाने लगे। वे दाता की लीलाओं से तो पूरी तरह परिचित थे ही। अन्य लोगों ने भी सुना तो आश्चर्य किया। बड़ी देर रात तक वहीं सर्किट हाऊस में श्री दाता की लीलाओं की ही बातें होती रही।

अगले दिन अर्थात २९-२-६० को अजमेर से रवाना होकर ब्यावर होते हुए जोधपुर पधारे और वहां सर्किट हाऊस में विराजना हुआ।

सर्किट हाऊस के मैनेजर राजपुरोहित श्री हरिसिंह जी दाता की सेवा में उपस्थित रहे। उन्होंने अपने मित्र बारहट श्री शिवकरण जी को दर्शनार्थ बुला लिया। प्रातः ४.३० तक सत्संग चलता रहा। दाता ने कई बातें बताई जिसका सार निम्नानुसार है – 'मन को जितना मारोगे और मार मार कर खाओगे उतनी ही पापों से मुक्ति मिलेगी और निजशक्ति का विकास होगा। मार-मार कर खाने से तात्पर्य है अहंकार और भ्रम को नष्ट करना। इस मनरूपी घोड़े की लगाम दाता के हाथ में थमा दो। या तो तुम उसके बन जाओ या उसको अपना बना लो।''

अगले दिन भी जोधपुर विराजना हुआ। उस दिन एक अमेरिकन सम्भ्रान्त महिला वहां आयी। जब उसे मालूम हुआ कि सर्किट हाऊस मे एक सन्त विराजे हुए हैं तो वह दर्शनार्थ उपस्थित हो गई। दाता के प्रवचन से वह प्रभावित हुई। उसने दाता से पूछा -

महिला– ' आपने इतनी छोटी सी आयु में इतनी अनुभूति कैसे प्राप्त कर ली ? आप किस सम्प्रदाय के है ? आप वैष्णव हैं या शैव ?

दाता– 'मैं किसी भी सम्प्रदाय का नहीं हूँ। सभी सम्प्रदाय मेरे दाता के हैं और मेरे दाता सभी सम्प्रदायों से परे हैं। हमें तो केवल गुरुकृपा का ही आधार है।'' यह सुनकर वह चुप हो गई। कुछ देर चुप रह कर फिर बोली, मुझको दस मिनिट का समय चाहिये।

दाता– "बैठो।" उसे बिठाकर दाता बाहर पधार गये और नौ मिनिट बाद अन्दर पधारे।

महिला– "अब मुझे आज्ञा हो। मुझको जाना है।"

दाता– "तुम लोग मेरे दाता को समय की अवधि मे बाँधना चाहते हो। तुम चाहते हो कि वह तुम्हारी इच्छानुसार समय मे बंधा रहे जब कि वह समय से परे हो कर तुम्हारी दृढ़ता की परीक्षा लेता है। तुम लोग परीक्षा मे असफल हो जाते हो।" सत्पात्र के आधार पर ही श्री दाता प्रवचन करते है। अन्यथा इस प्रकार टाल देते है।

वह अवाक् हो सुनती रही। उसको दर्शनशास्त्र के प्राचार्य से मिलना था अतः आज्ञा लेकर चली गई। उस अमेरिकन महिला के अतिरिक्त और भी कई लोग सत्संग हेतु आये। पूरे दिन आवागमन चलता ही रहा। शाम को छे बजे वहाँ से प्रस्थान कर रात्रि के एक बजे बीकानेर पहुँचना हुआ। सीधे व्यास जी के मकान पर ही पधारना हो गया। दाता के दर्शन कर सब कृतार्थ हुए। यद्यपि यात्रा के कारण थके हुए थे फिर भी भक्तो की भीड़ देखकर प्रातः पांच बजे तक विराजना हुआ। व्यास जी के भाई मेघराज जी ने अनेक प्रश्न पूछे। दाता ने सप्रमाण सब प्रश्नो के उत्तर दिये। प्रश्नों के माध्यम से अच्छा सत्संग चला। तत्वज्ञान की गुह्यतम सीमा में प्रवेश किया जा सका। श्री चाँदमल जी जोशी के शब्दो मे, "इतना आनन्द आया जिसका वर्णन हो नही किया जा सकता है। जैसी अनुभूति उस दिन हुई वैसी अनुभूति पूर्व मे कभी नहीं हुई थी।"

कोलायत बीकानेर के नजदीक ही है। दिनांक २–३–६० को श्री दाता ने कोलायत के लिए प्ररथान किया। गजनेर के पास जाते जाते कार खराब हो गई। ड्राईवर कार को देखने लगा जबकि दाता कुछ दूर पैदल चलकर एक तालाब की पाल पर एक पेड़ की छाया में जा विराजे। राजनीति और देश की उस समय की परिस्थितियो पर बातचीत चल पड़ी। दाता ने उन सब का विश्लेपणात्मक विवरण किया। उन्होंने फरमाया, "भारत मे तो दलरहित सरकार बननी चाहिए। जिसमें भारत के योग्यतम व्यक्ति सम्मिलित किये जाँए। दलगत सरकारें अपने दल के स्वार्थों की पूर्ति मे लग जाती है जिससे देश की वास्तविक प्रगति नहीं हो पाती। योग्य व्यक्तियों के हाथ मे शासन का सूत्र आने पर ही लोगो का लाभ हो सकता है। वीर दामोदर विनायक सावरकर जैसे व्यक्ति को राष्ट्रपति, गोलवलकर जैसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री और पुरुपोत्तमदास जैसे व्यक्ति को गृहमंत्री बनाया जाय। इस प्रकार योग्यत्तम व्यक्तियो का मंत्रिमण्डल बने, तब ही प्रगति की कुछ आशा की जा सकती है। त्याग और वीरता में राणाप्रताप अद्वितीय था किन्तु वीर सावरकर का त्याग भी राणाप्रताप से कम नहीं है। ऐसे ही लोगों की सरकार बनाई जानी चाहिए। लोगो को तैयार करने का बीड़ा बडे बडे सन्तो

को अपने हाथ में लेना चाहिए। स्वय समथ गुरु रामदास ने शिवाजी को बनाने का जिम्मा अपने हाथ में लिया था। उनके प्रयत्न से ही शिवाजी ऐसे लौहपुरुष बन सके जिसने अपने शत्रुओं के दांत खट्टे ही नहीं किए अपितु हिन्दुओं की आन, बान और शान की रक्षा की। शिवाजी एक ऐसे वीरपुरुष हुए हैं जिसने हजारों को मार कर लाखो के प्राणो की रक्षा की और उनके धर्मों को बचाया। वही देश उन्नति कर सकता है जिस देश के व्यक्तियों में राष्ट्रीय चारित्र्य हो। राष्ट्र के चरित्र का निर्माण महान देशभक्तो से ही सभव है। स्वार्थी लोगों के सामथ्य से परे है।' तलैया की पाल पर वृक्ष की शीतल छांह में प्रकट किये दाता के विचारों में कितनी स्पष्टता एव सत्यता है। दाता के विचारों के अनुकूल बनी सरकार अवश्य ही भारत के भविष्य को उज्ज्वल कर सकती है।

दूसरी गाडी के आने में लगभग तीन घण्टे लग गये। इस बीच विभिन्न विषयो पर चर्चा होती रही। जीप के आने पर आगे बढे। ठीक बारह बजे कोलायत जी पहुंचे। कोलायत जी में महर्षि कपिलदेव का समाधि स्थान है। यहाँ कपिल का मन्दिर है। समाधिस्थल मन्दिर के पीछे कुछ दूरी पर है जहां चबूतरा बना हुआ है और चबूतरे पर उनके चरणचिन्ह हैं। यह स्थान सन्तों और महापुरुषों की तपोभूमि रहा है। वहाँ विभिन्न भक्तो और महापुरुषों की चर्चा चल पडी। दाता ने फरमाया, "यह वही स्थान है जहां कुत्ता नामदेवजी की बाटी लेकर भागा था और नामदेव जी घी की कटोरी लेकर उसके पीछे यह कहते हुए भागे थे की नाथ! सूखी बाटी न खावें।' व्यास जी ने पूछा, 'भगवन! यह क्या घटना थी कि नामदेव जी को कुत्ते के पीछे भागना पडा?" दाता ने फरमाया 'नामदेव जी दक्षिण में अच्छे सन्त हुए है। वे प्राणिमात्र में भगवान के दशन करते थे। एक समय वे भोजन बना रहे थे। भोजन में बाटिया थी। सिक जाने पर उन्होंने बाटियाँ घी से चुपडने के लिए इकट्ठी की। इस बीच उन्हें लघुशका की इच्छा हुई। वे लघुशका करने गये। पीछे से एक कुत्ता आया और बाटी लेकर भागा। नामदेव जी के भाव उस समय उच्चतर के थे। उन्होंने उस कुत्ते में अपने इष्टदेव का दशन किया और घी की कटोरी लेकर कुत्ते के पीछे यह कहते हुए दौडे 'हे नाथ! इस सूखी बाटी का भोग न लगावें इसको घी से चुपड लेने दीजिये।

"भक्त ज्ञानदेव भी एक बार इसी क्षेत्र में घूम रहे थे। यहा आते आते उन्हें प्यास लगी। उनके पास कुएँ से पानी निकालने का कोई साधन नहीं था। उन्होने सूक्ष्म रूप धारण कर कुएं में प्रवेश किया और अपनी प्यास बुझाई। नामदेव जी भी साथ थे। उन्हें भी पानी पीना था। इच्छा करते ही कुएं का पानी ऊपर उठा और बाहर बहने लगा।

श्री व्यासजी ने श्री रामकृष्ण परमहस देव का प्रसग छेडा तो दाता ने फरमाया, 'वे तो परमहस ठहरे। वे सदगुरु को 'माता' के रूप में मानते थे। वे सभी में

'माँ' के दर्शन करते थे। वे केवल 'माँ' को ही प्रणाम करते थे। कोई सद्गुरु को पिता के रूप मे, कोई माता के रूप मे, कोई स्वामी के रूप मे और कोई बन्धु के रूप मे मानते है। यशोदा माँ ने तो उसे पुत्र माना है। माता कहो चाहे दाता, बात एक ही है। उसको किसी भी रूप मे माना जाय। जिस रूप में भी बन्दा इच्छा करता है, उसी रूप मे वह प्रकट हो जाता है। होनी चाहिये तीव्र इच्छा और सच्ची लगन।"

दाता सब के साथ मन्दिर मे गये फिर समाधि-स्थल पर होते हुए बीकानेर के लिए प्रस्थान कर दिया। व्यास जी के घर भीड़-भाड़ थी। विवाह में काफी लोग एकत्रित हुए थे। भोजन मे भाँति भाँति के व्यंजन बनाये गये थे। व्यासजी के पिताजी दाता के पास पहुँचे और दोनो हाथ जोड़कर बोले, "भगवन ! बरात मे हजारो व्यक्ति आये हुए है। मेहमान भी अधिक है। भात सर जाना चाहिये। भोजनभण्डार की लाज रखना आपके हाथ मे है।" दाता ने फरमाया, "दाता सब ठीक करेगा। और कोई पुकार हो तो कहो।" दूसरी बार भी उन्होने यही कहा, "भात सर जाना चाहिये।" तीसरी बार पूछने पर भी उन्होने यही कहा, "बस ! भात सर जाना चाहिये। भण्डार को हुक्म हो जाय।" दाता चुप हो गये। वे वहाँ से सीधे भोजन-भण्डार मे गये। वहाँ कुछ देर ध्यानमग्न रहे फिर हाथ से संकेत किया। फिर मुस्कराते हुए वापिस पधार गये। उनकी कृपा से भोजन मे इतनी वृद्धि हुई की खाने और बरतने के पश्चात् भी महीनो वह भोजन चलता रहा। बाद मे एक बार व्यास जी ने बताया कि भण्डार मे मिष्ठान्न की सुगन्ध छः माह पश्चात् भी रही।

भोजन-भण्डार की पुकार सुन लेने के बाद दाता वहाँ नही ठहरे। उन्होने वहाँ भोजन भी नहीं किया। वर-वधू को आशिर्वाद देकर वे वहां से रवाना हो गये। फ़ियटकार तैयार नही हुई थी अतः रेल द्वारा अजमेर पधारना हो गया।

० ० ०

जयसिंह जी का हृदय परिवर्तन

सामान्यत एक पिता अपने पुत्र से कई अपेक्षाएँ रखता है। वह चाहता है कि उसका पुत्र पढ-लिख कर योग्य जीवन निर्वाह में दक्ष, व्यवहार में कुशल, समाज में प्रतिष्ठित और माता पिता एव कुटुम्बियों को सेवा करने वाला बने। कोई भी पिता अपने पुत्र को गरीब, अयोग्य अन्यायी और परमुखापेक्षी देखना पसन्द नहीं करता। जयसिंह की भी आकाक्षाएं थी कि उनके सभी लडके सुयोग्य, होनहार बनें और पढलिख कर किसी उच्च पद पर नियुक्त होकर नौकरी करें। अपने बडे लडके के लिए उनकी कल्पना बहुत ऊची थी। अपनी भावना की पूर्ति हेतु उन्होंने शुरू से ही प्रयत्न करना प्रारभ कर दिया यहाँ तक कि अपने हृदय पर पत्थर रखकर अपने जिगर के टुकडे को सात वर्ष की आयु में ही रायबरेली पढने भेज दिया, किन्तु होता वही है जो राम को मजूर होता है।

कुछ तो उनकी परिस्थितियों ने, कुछ आर्थिक सकट ने कुछ गाँव के वातावरण ने और कुछ कौटुम्बिक वातावरण ने उनकी इच्छापूर्ति में सहयोग नहीं दिया। दाता जैसा कि हमने देखा है प्रारभ से ही त्यागी उदासीन और एकान्त-प्रिय रहे हैं। जीवनयापन के लिये नौकरी करना तो उनकी दृष्टि में अच्छा था ही नहीं। नौकरी से तो उन्हें एक प्रकार से अरुचि थी। विवाह-बन्धन में वे बधना चाहते थे नहीं। विवाह को तो वे अपने पैरों में बेडी डालना मानते थे जो मनुष्य को कैदी की तरह जकड लेता है और उसको केवल मात्र वासना का दास बना लेता है।

दाता के इस प्रकार के विचारों ने जयसिंह जी की अपेक्षाओ पर तुषार पात कर दिया। वे न केवल दु खी हुए वरन् अपने पुत्र के प्रति निराश भी हो गये। फलत श्री दाता के प्रति उनके प्रेम में कमी भी आयी। वे उन्हें उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखने लगे।

दाता अपने बचपन से ही परसेवी और दयालु प्रवृत्ति के रहे हैं। गरीब और अन्त्यज वर्ग के लोगों के प्रति उनकी सहानुभूति रही है। उनकी इस सहानुभूति ने ठाकुर को नाराज कर दिया। क्योंकि अब श्री दाता निम्न वर्ग पर ठाकुर के अत्याचारों में बाधा बन गये थे। ठाकुर और उसके अनुयायियो ने उन्हें समझाने की चेष्टा की किन्तु असफल होने पर वे मन ही मन विरोधी बनकर शत्रु बन गये। जयसिंह जी ठाकुर के काका और ठिकाने के फोजदार थे। निम्न वर्ग से बैगार लेने में उन्हें भी अब असुविधा हो रही थी। वे ठाकुर का पक्ष लेते हो अत उनका उनके बडे पुत्र से असन्तुष्ट होना स्वाभाविक ही था। विभीषण भाई था रावण

का। दोनो भाइयो मे अत्यधिक स्नेह भी था। किन्तु विचारधारा की भिन्नता से वे एक दूसरे के शत्रु वन गये । इसी प्रकार की स्थिति यहाँ भी पिता-पुत्र मे हो गई।

मदिरापान और मांसभक्षण दाता को प्रारंभ से ही पसंद नही था। वे इन दोनो वातो को मनुष्य मात्र के लिये विष के सदृश मानते थे। उनके विचार से मदिरापान और मांसभक्षण क्षत्रिय जाति के पतन का कारण है। अतः वे दोनो वातो से घृणा करते थे जब कि जयसिंह जी मदिरापान और मांसभक्षण को क्षत्रिय जाति के लिए परम आवश्यक मानते थे। उनकी निगाह मे शिकार करना भी क्षत्रियो के लिए आवश्यक था। उनका मानना था कि इसके विना क्षत्रियवालक भीरू और शक्तिहीन हो जाता है और अपने मन मे वह युद्ध के समय उचित कठोरता नही ला पायेगा. अतः पुत्र की इस प्रकार की विपरीत विचार धाराओ ने उनके हृदय पर आघात पहुँचाया और उनसे वहुत नाराज रहने लगे।

जव दाता ने विवाह करना स्वीकार कर लिया तव उन्हे कुछ आशा वंधी किन्तु विवाह के वाद सेना की नौकरी छोड़कर घर आ जाने पर तो वे वहुत ही निराश हुए। नाराज होकर उनको उन्होने परिवार से अलग कर दिया। इधर दाता ठाकुर की अनीति, अनाचार और अन्याय का विरोध खुले रूप से करने लगे, जिसको सहन करना जयसिंह जी के लिए असंभव हो गया। उनका दाता के प्रति रहा-सहा स्नेह भी समाप्त हो गया। धीरे धीरे आपस की वोलचाल भी कम हो गई। दाता ने अपने पिता की न तो कभी अवज्ञा की और न ही उचित कार्यो के लिए उनकी अवहेलना। पिता के प्रति उनके आदर सम्मान मे भी कोई कमी नही थी। ठाकुर की संगति की वजह से जयसिंह जी की उनके प्रति कठोरता वढ़ती ही गई। यहाँ तक कह दिया, "गिरधारी सिंह वड़ा नाजोगा है। वह तो हमारे कुल का कलंक है"। दाता का वढ़ता हुआ प्रभाव, उनका फैलता हुआ यश, और उनके अलौकिक कार्य भी जयसिंह जी की विचारधारा को नही वदल सके। वे तो हरदम यही कहते रहते, "जोगी वना फिरता है, दुनिया को धोखा देता है, ठग है, कुपुत्र है," आदि। कैसी विडम्वना है। लोगो की दृष्टि मे दाता पूर्ण, सक्षम, योग्य, गरीव परवर, दयालु, परोपकारी और समर्थ थे। कई लोग तो उन्हे साक्षात् ईश्वर ही मानते थे। वडे वडे लोग प्रतिदिन कारे, जीपे लेकर आते और कृपा की भीख मांगा करते थे। जयसिंह जी यह सव देखते किन्तु आश्चर्य है कि इन सारी वातो का उनपर कोई प्रभाव नही हुआ। उनकी निगाह मे तो यही वात घर कर चुकी थी कि उनका लड़का विगड़ चुका है।

प्रभु की लीला विचित्र है। उसको समझ लेना ऋषि-महर्षियो के लिए भी संभव नहीं हो सका है। जयसिंह जी का अपने पुत्र के प्रति यह व्यवहार विधि का विधान कहे, या पूर्वजन्म के संस्कार कहें या नियति का चक्र। यह उचित प्रतीत नहीं होता कि ऐसे महापुरुष के पिता अपने पुत्र के प्रति इतने कठोर हों। साधारण पिता भी अपने पुत्र के प्रति इतना कठोर नही होता।

भगवान श्री कृष्ण ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया किन्तु देवकी और वसुदेव को तो ग्यारह वर्ष का वियोग ही दिया। भगवान की उनपर कम कृपा नहीं थी। पैदा होते ही उन्होंने अपने स्वरूप के दर्शन करा दिये। कारागार में भगवान के अवतार के समय सब सो गये थे, केवल देवकी और वसुदेव ही जग रहे थे। सोने वाले सोते रह गये और जगने वालों ने भगवान के वास्तविक स्वरूप के दर्शन कर लिए। सच कहा है कि संसार में जो जागृत रहता है वही भगवान को पा सकता है।

जो जागत है वह पावत है।
जो सोवत है, वह खोवत है॥

जो भगवान के लिए जागता है उसे ही भगवान मिलते हैं। कबीर जी ने कहा है –

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥

कबीर उनके लिए जागे और रोये तो उन्हें भगवान मिले। मीराबाई भी उनके लिए जागी और रोई तो उसे भी भगवान मिले। फिर जयसिंह पर क्यों न कृपा हो। कारण वश देर थी अन्धेर नहीं। जिस तरह वसुदेव को ग्यारह वर्ष की देरी हुई उसी प्रकार जयसिंह जी के लिए भी लगभग ग्यारह वर्ष की देरी ही थी। जयसिंह जी तो वसुदेव जो ठहरे। अपने लाल से दुराव कैसा। किन्तु भ्रम का परदा जो ठहरा। यह परदा ही भ्रान्ति पैदा करता है। इस पर्दे को माया भी माना है। जीव ईश्वर के दर्शन का इच्छुक होता है तो बीच में माया का परदा आ जाता है। यही माया जयसिंह जी और दाता के बीच आ गई। इसी माया ने जयसिंह जी को दाता से दूर कर दिया। पर्दे का हटना जरूरी था।

वसुदेव जी की तपस्या की अवधि समाप्त हुई तो भगवान कृष्ण नन्द-यशोदा को छोड़कर मथुरा में वसुदेव-देवकी के पास चले गये। यही बात जयसिंह जी के साथ भी हुई। जब विरोधियों की गतिविधियाँ बढ़ गई और जब उन्होंने दाता पर हत्या करा देने का आरोप लगाया, तब उन्हें पुनः विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। उन्हें दाता की निर्दोषिता तथा सच्चाई पर और ठाकुर की अनीति पर विश्वास होने लगा। होली के अवसर पर ठाकुर द्वारा किये जानेवाले षडयन्त्र ने तो उनकी आँखें ही खोल दी। ठाकुर और उनके साथियों की क्रूरता अन्याय और दुराचारिता उनके समझ में आ गई, उन्होंने जागीर का कार्य करना बन्द कर दिया। उन्होंने ठाकुर से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। उनका स्नेह दाता के प्रति बढ़ने लगा। वे अब प्रतिदिन हरनिवास आने लगे और नान्दशा पोस्ट ऑफिस का कार्य अपने हाथ में ले लिया। हरनिवास आने पर उन्हें सत्संग का वातावरण मिला। उन्हें सत्संग में आनन्द आने लगा, फलस्वरूप वे प्रतिदिन सत्संग हेतु बैठने लगे। सत्संग के प्रभाव से उनके व्यवहार में कठोरता ने कोमलता का

स्थान ले लिया। उनके खान पान मे भी अन्तर आ गया। अब उन्होने मांस भक्षण पूर्णतया त्याग दिया। मदिरापान भी कम हो गया। उनकी वाणी में मधुरता आ गई। भगवान श्रीकृष्ण के चिन्तन मे उनका मन लगने लगा। क्यो न हो, सत्संग एक ऐसा साधन है जिससे मन शुद्ध होकर निश्चल हो जाता है। जयसिंह जी मे जो परिवर्तन हुआ वह सत्संग एवं दाता की कृपा का ही तो फल था। फिर भी वे अभी तक दाता को अपना पुत्र ही मानते थे।

वे एक दिन किसी मुकदमे की पेशी पर सहाड़ा गये हुए थे। उन्हें देर हो गई। उन दिनो में सड़कें थी नही और न बस आदि की व्यवस्था थी। आवागमन बहुधा पैदल ही हुआ करता था। जयसिंह जी भी उस दिन पैदल ही थे। मेरुणी गाँव के निकट आते आते उन्हे अन्धेरा हो गया। वहाँ से नान्दशा नौ मील दूर है। वे प्रभु का स्मरण करते हुए अपने मार्ग पर चले आ रहे थे। मार्ग मे मेरुणी गाँव से कुछ आगे छोटी छोटी पहाड़ियाँ आती है वहाँ पहुँच कर वे मार्ग भूल गये। दिशा ज्ञान रहा नही, अन्धेरा अधिक हो गया और मार्ग मे कोई व्यक्ति नहीं जो मार्ग बतावे। ऐसी परिस्थिति मे वे घबरा गये। उन्होने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण को याद किया। वे इसी उधेड़ बुन में थे कि क्या करें। इतने मे उन्हे गंगापुर की ओर से दाता आते दिखाई दिये। उन्हें राहत मिली। उन्होने यह सोचा की गिरधारीसिंह भी गंगापुर गया होगा, अब लौट रहा है, अच्छा ही हुआ वह आ गया।

दाता ने उनका हाथ पकड़ लिया और धीरे धीरे नान्दशा के मार्ग पर आ गये। वे नान्दशा के निकट पहुँचे। ज्योही नान्दशा दिखाई देने लगा दाताने इनका हाथ छोड़ दिया और बोले, "आप पधारो माकोराम थोड़ी देर बाद आवेगा।" जयसिंह जी धीरे धीरे चलकर हरनिवास पहुँचे। वहां जाकर उन्होने देखा कि उनका बेटा गिरधारी सिंह (दाता) तो कई लोगो के बीच बैठा है और सत्संग चल रहा है। वे आश्चर्य चकित हो गये। उस समय उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना नही रहा जब दाता ने उनके वहाँ पहुँचने पर पूछा, "आप इस समय कहाँ से पधार रहे है ?" वे मन ही मन विचार करने लगे कि यह जब यहाँ बैठा है, तो मुझे हाथ पकड़कर लाने वाला कौन था ? उन्होने सोचा, "यह क्या इन्द्रजाल है। आँखो देखी बात झूंठी होती नहीं। लगभग सात-आठ मील मेरा हाथ पकड़ कर यह मेरे साथ चला है। गाँव के बाहर इसने मुझे छोड़ा है और यह यहाँ बैठ कर सत्संग कर रहा है और मुझे पूछ रहा है कि मैं कहाँ से आ रहा हूँ।" प्रथम बार उन्हें दाता की अलौकिक शक्ति का आभास हुआ। उन्होने सोचा की दुनिया जो कहती है सत्य ही है। दाता में विलक्षण शक्ति है। किन्तु इस प्रकार के विचार उनके मन में कुछ समय के लिए ही रहे। फिर भ्रम होने लगा। भ्रम होना स्वाभाविक ही है, यह मन की कमजोरी है। उन्होने सोचा कि मेरे साथ आनेवाला कोई अन्य व्यक्ति रहा होगा। अन्धेरा होने से पहचानने में गलती हो गई। अतः थके होने से चुपचाप वहाँ से उठकर हवेली मे चले गये और सो गये।

अगले दिन शाम को जयसिंह जी हर-निवास पहुँचे। उस समय वहा सत्सग चल रहा था। दाता विराजे हुए थे व सामने कई लोग बैठे थे। सभी लोग खुली आँखों से दाता के श्री विग्रह को ध्यानस्थ होकर देख रहे थे। ये भी सभी व्यक्तियों के पीछे जाकर बैठ गये और ध्यान करने लगे। कुछ ही देर में उनका मन स्थिर हो गया। ये ध्यान से दाता के शरीर को खुली आँखों से देखने लगे। देखते ही देखते दाता के शरीर के स्थान पर उनके इष्टदेव भगवान श्रीकृष्ण का शरीर प्रकट हो गया। शिर पर मोरमुकुट है शरीर पर पीताम्बर धारण कर रखा है गले म वैजयन्ती माला है और हाथ में मुरली है। वे घबरा गये। उन्हें अपनी आखों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होने आखें मली, किन्तु उसी स्वरूप को सामने बैठे देखा। वाणी उनकी मूक हो गई नेत्रों में प्रेमाश्रु का स्रोत बह चला और वे गदगद होकर उस सावरे सलोने रूप को निहारते रहे। अन्त में वह सावरा स्वरूप गायब हो गया और उसके स्थान पर दाता का शरीर दिखाई देने लगा। अब उन्हें विश्वास हो गया कि जिसे वह पुत्र कहकर मानते रहे हैं वह तो विश्वसम्राट भगवान कृष्ण ही हैं। उन्हें अब रत्ती-मात्र भी शका नहीं रही। वे उठे और उन्होने दाता को साष्टाग प्रणाम किया, फिर हाथ जोडकर सामने खडे हो गये। उनमें हुए इस अनोखे परिवर्तन ने हम सब को आश्चय में डाल दिया। एक पिता अपने पुत्र को अनेक मनुष्यों के सामने साष्टाग प्रणाम कर रहा है यह हमने अपने जीवन में पहली बार देखा था। सदैव दाता जयसिंह जी के चरण स्पर्श किया करते थे किन्तु बडी अनहोनी बात थी, उन्होंने अपने पुत्र को साष्टाग प्रणाम किया। यह तो हमारी समझ से परे था कि कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता। दशरथ और कौशल्या ने भी तो भगवान राम को प्रणाम किया था जब उन्होंने राम को चतुर्भुज के रूप में देखा था। वसुदेव और देवकी की भी कारागार में यही स्थिति थी जब उन्होंने अपने पैदा होनेवाले पुत्र को चतुभुज रूप में देखा था। जीव जीव है और ब्रह्म ब्रह्म। जीव का टिकाव ब्रह्म के चरणो में ही है। जयसिंह जी ने उसी त्रिलोकीनाथ को प्रणाम किया था न कि अपने पुत्र को। उन्होंने तो अपने पुत्र के रूप में अपने इष्टदेव उस परमपिता परमेश्वर भगवान श्रीकृष्ण को देखा और उसी के चरणो में प्रणिपात किया। हो गई न कृपा उनपर, वे भगवान से दूर तो थे नहीं। अहकार के कारण भ्रम का पर्दा मात्र पड गया था। पर्दा हटने पर वे वास्तविक रूप में आ गये। दाता ने सभी ध्यान करने वालो को अपने अपने अनुभवों के बारे में पूछा किन्तु उनसे बात भी नहीं की।

उस दिन के बाद जयसिंहजी प्रतिदिन सत्सग में बैठने लगे। उनका ध्यान लगने लगा। मन स्थिर हो गया। ध्यान लगते ही उन्हें भगवान कृष्ण के दर्शन होने लगे। उनके दैनिक जीवन में भी निखार आ गया। उनके चेहरे पर अखण्ड तेज व्याप्त हो गया। वे मधु से भी अधिक मधुर हो गये। अब वे त्याग और तपस्या की मूर्ति हो गये। आश्चर्य तो इस बात का है कि कोई छोटे से छोटा काम होता तो

हम तो आलस्यवश ढिलाई करते किन्तु वे तत्काल उठकर उस कार्य को करने को उद्यत हो जाते। वे कहते, "सेवा करने में बड़ा आनन्द आता है।" अब वे पहले वाले जयसिंह जी नहीं रहे थे। वे तो अब करूणा की साक्षात् मूर्ति ही थे। वे अब दाता को जगत्पिता और मातेश्वरी जी को जगत्जननी अन्नपूर्णा माँ मानने लगे। वे मातेश्वरी जी को भी साष्टांग प्रणाम करने लगे थे किन्तु दाता ने यह कहकर उन्हें मना कर दिया कि लोक के लिए यह अमर्यादित बात है। शरीरधर्म और लोकधर्म का पालन तो होना ही चाहिये। दाता ने उन्हें स्वयं को प्रणाम करने के लिये भी मना किया किन्तु उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि वे तो अपने इष्टदेव को प्रणाम करते हैं।

प्रभुकृपा से उनकी सभी सांसारिक इच्छाएँ शान्त हो गई थी। वे धीरे धीरे सांसारिक दुःख-सुख से ऊपर उठने लगे। क्रोध करना भी उनका छूट गया और वे मान-अपमान से भी परे हो गये। परसेवी तो वे इतने हो गये कि छोटे से छोटे आदमी की सेवा करने को तत्पर हो जाते। वे अपने आप को एक तुच्छ सेवक समझते हुए सभी का आदर करने लगे। सत्संगियों को तो वे भगवान का ही रूप मानने लगे और उनका व्यवहार भी तदनुरूप ही हो गया। वे कहते, "आओ ख्याली भगवान, शिवभगवान" आदि। उनका हृदय निर्मल और राग-द्वेष रहित हो गया। उनमें सात्विक भावों का उदय हो गया। मेरे ऊपर और शिवसिंह जी के ऊपर उनकी बड़ी कृपा थी। उन्होंने अपने अनुभव हमें बताये तथा जो जो श्री दाता की महर होती उसके बारे में भी बता दिया करते थे। वे बहुधा हमें पास बिठा लेते और कहते, "मनुष्यजीवन बड़ी कठिनाई से मिलता है। घर में गंगा बह रही है अतः उसमें अवगाहन कर अपने जीवन को पवित्र कर सको तो अच्छा है। ऐसा योग अन्यत्र नहीं मिलेगा।" दाता की कृपा से वे महापुरुष हो गये।

दीनदयाल का कृपा-पात्र होने के बाद लगभग सात वर्ष और जीवित रहे; किन्तु उनके ये सात वर्ष बड़े सरस, मधुर और आनन्द-दायक निकले। वे सन् १९६३ के प्रारंभ में कुछ अस्वस्थता का अनुभव करने लगे। ऐसा लगने लगा कि जैसे शरीर में खून की कमी होती जा रही है। उपचार हेतु निवेदन किया तो उत्तर दिया, "शरीर तो गन्दा है उसका क्या ठिकाना। शरीर को तो अपने कर्मों के फल का भोग भोगना ही पड़ेगा। लगता है इस शरीर के जाने का समय निकट आ गया है अतः उपचार से क्या लाभ ?" हम सब ने उन्हें दाता से अर्ज करने को निवेदन किया तो उन्होंने हँसकर कहा, "उनसे कुछ छिपा नहीं है। मेरा परम सौभाग्य होगा यदि यह शरीर उनके सामने ही चला जाय। इनके करकमलों से मेरे इस शरीर का संस्कार हो जाय, इससे बढ़ कर अच्छी बात क्या हो सकती है ? अनेक ऋषि-महर्षियों की यही इच्छा करते हुए सुना गया है कि अन्तिम समय प्रभु के दर्शन हो जायें। मेरे सन्मुख दाता हैं। इनके सामने यह नश्वर शरीर चला जाय इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात क्या होगी ? बाली को देखो। जब बाली ने भगवान के सामने स्वीकार किया :–

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि ।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी अतकाल गति तोरि ॥

तब भगवान राम ने उसे कहा –

'अचल करौ तनु राखहु प्राना ।'

इस पर बाली ने कहा था –

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं । अन्त राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नामबल सकर कासी । देत सबहि सम गति अविनासी ॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा । बहुरि की प्रभु अस बनिहि बनावा ॥

भगवान उसको अजर अमर करने को तैयार हो गये किन्तु उसने उसे अस्वीकार कर दिया केवल इसीलिये कि उसके स्वामी अन्तिम समय में उसके सामने है । जब भगवान सामने है तो तुच्छ वस्तुओं म क्या मोह है । यह शरीर नश्वर है । आगे पीछे जावेगा ही । मुझको कुछ भी पुकार नहीं करनी है और तुम्हें भी नहीं करनी है" । उनकी पत्नी माँ सुगन कवर उन्हें बीमार देख रोने लगी तो वे कहने लगे, "अरे पगली ! तू त्रिलोकीनाथ की माँ होकर भी रोती है । ऐसे समथ बेटे क होते हुए चिन्ता करती है ? तुम्हें तो चिन्ता नहीं करनी चाहिये ।

उनके देह के अवसान के एक दिन पूव सध्या समय दाता उनसे मिलने गये । उन्हें वहा आया हुआ देखकर वे बोले, आपने क्यों कष्ट किया । आपको यहा पधारने में कष्ट हुआ । मुझ पर तो वैसे ही आपकी अपार कृपा है । आपने बहुत कुछ दे दिया है । केवल एक ही पुकार है कि अन्तिम समय में आपके उस रूप का दशन हो जाय जिस रूप का मैं दशन करता रहा हूँ ।' कई लोग उनसे मिलने गये किन्तु उन्हें दाता के ध्यान में लीन पाया । जब लोग उन्हें तग करने लगे तो वे बोले "आप लोग भगवान का नाम लें । व्यथ की बातों में कोई सार नहीं ।" भगवान के ध्यान में लीन होकर उन्होंने इस नश्वर शरीर का त्याग किया । उस समय उनके शरीर में अपूव आभा निखर आयी ।

जयसिंह जी श्री दाता के पिता थे इसलिए उन पर कृपा की गई यह कह कर दाता पर पक्षपात का दोष लगाना उचित नहीं होगा । वे महान थे तभी तो दाता ने उनके यहाँ अवतार ग्रहण किया । उनके पूव जन्म क काय तो महान रहे ही होगे किन्तु इस जीवन में भी तो उनकी करनी साधारण नहीं रही । उन्हाने तो अपना कुछ रखा ही नहीं । सब कुछ दाता क चरणो में अर्पण कर दिया था । जो जैसा करेगा उसको वैसा ही तो फल मिलता है । जो जैसा बोता है वैसा ही काटता है । जयसिंह जी ने अपने इष्टदेव के सामने सब कुछ भुलाकर अपने आप को उनके चरणों में अर्पित कर दिया था । ऐसा दृढविश्वास और अटूट प्रेम का

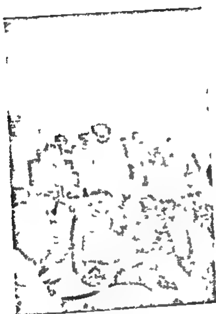
उदाहरण देखने को कम ही मिलता है। उनकी सभी वृत्तियाँ सम होकर सारी इच्छाएँ ही समाप्त हो गई थी। उनका जीवन दातामय ही हो गया था। ठीक रामप्रकाश जी महाराज की तरह ही उन्होने अपना जीवन दातामय बना लिया था। अतः उन्हे भी वैसी ही गति मिली।

उनके स्वर्गवास की सूचना बात की बात मे सर्वत्र फैल गई। अनेक लोग उनके अन्तिम संस्कार मे सम्मिलित हुए। दाता ने अपने करकमलो से सभी संस्कार सम्पन्न किये। अन्तिम श्राद्ध के दिन वृहत् भोजन की व्यवस्था हुई जिसमे शुद्ध घृत का प्रयोग करते हुए पाँचो पक्वान्न बनाये गये। विरोधी लोग भी अपना विरोध छोड़कर भोज मे सम्मिलित हुए। अंतिम श्रद्धांजलि के दूसरे दिन पगड़ी का दस्तूर हुआ। उस समय सैकडो लोगो की उपस्थिति थी।

जयसिंह जी के चले जाने से हम लोगो को अपार क्षति हुई। क्षति इस माने मे कि उनसे हमे पिता का स्नेह और माँ की ममता मिलती थी। हमारे दुःख को वे स्वयं का दुःख मानते थे। उन्हे देखकर हमारे सभी दुःख भाग जाया करते थे। हममे यदि किसी बात को दाता से कहने का साहस नही होता तो हम उनसे कह दिया करते थे। हमारी जटिल से जटिल समस्याओ को दाता से कह कर वे हल करवा दिया करते थे। वे हमारे एक प्रकार से पिता, माता, संरक्षक, मित्र और हितचिन्तक थे।

जयसिंह जी महान, दयालु, परोपकारी, योग्य, अनुभवी और परिश्रमी थे। उनके जीवन की एक घटना है जो बताती है कि वे कितने महान थे। हवेली के पास ही एक दमामी का घर है। एक दिन अचानक उसकी मृत्यु हो गई। सम्बन्धी कोई गाँव मे था नही। अर्थी और लोटा उठाने वाला भी कोई नहीं। जब उन्हें पता चला तो वे वहाँ पहुँच गये। उन्होने अर्थी उठाने वालो की व्यवस्था की। लोटा स्वयं उन्होने ही उठा लिया। कितनी महानता थी। ऐसा कार्य साधारण व्यक्तियों की कार्यक्षमता से परे है। महान् व्यक्ति ही ऐसा कर सकते है।

o .o o



पगड़ी का दस्तूर

श्री राधाकृष्ण जी को सम्मानित करना

प्रभु की लीलाएँ बड़ी अद्भुत होती है। वह चाहे तो किसी रंक को एक क्षण में राजा बना दे और चाहे तो किसी राजा को रंक बना दे। किसी को चाहे तो वह सम्मान दिला दे और चाहे तो दूसरे ही क्षण अपमानित करा दे। उसका विधान ही निराला है। बिचारा सदनाजी बड़े उल्लास से भगवान जगदीश के दर्शन करने पुरी जा रहा था कि मार्ग में उसके हाथ कटवा दिये फिर पुरी के राजा को स्वप्न में आदेश देकर जबरन हाथी पर बिठाकर चँवर दुलाते हुए जुलूस निकलवाया। ऐसी है लीला उसकी। अजीब स्वभाव है प्रभु का।

लीलाएँ करना दाता का स्वभाव है। वह अपने भक्तों को उनकी भावना के अनुसार दर्शन भी देते रहते है और अपनी अनोखी लीलाओं से उन्हें चमत्कृत भी करते हैं। *ऐसे अनेक भक्त हैं जिन्होंने दाता की अनोखी लीलाओं को देखा है।* ईडर निवासी राधाकृष्ण जी सँवर ने आपबीती घटना का वर्णन किया है और बताया है कि किस अदभुत तरीके से दाता उन्हें एक राजा के समान सम्मान दिलाया है। राधाकृष्ण जी मोतीसिंह जी के बहनोई होते हैं। सन १९६० के पूर्व वे दाता के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। वे रेल्वे में नौकरी करते थे और सन १९६० में अहमदाबाद में नियुक्त थे। इसी वर्ष वे एक बार अजमेर मोतीसिंह जी के घर आये। वहाँ–

"तू ही राजा राम है, तू ही घनश्याम है।
तेरे ही चरणों में दाता कोटिश प्रणाम है।।"

की धुन चल रही थी। सामने एक कुर्सी पर दाता की तस्वीर रखी थी। ध्वनि इस मस्ती से चल रही थी कि वे अपने आपको वहाँ बैठने से नहीं रोक सके। वे भी मस्ती से उस कीर्तन में सम्मिलित हो गये। जब कीर्तन समाप्त हुआ तो उन्होंने दाता का परिचय पूछा। परिचय मिलने पर उन्होंने दाता की तस्वीर माँगी। मोतीसिंह जी ने उन्हें यह कह कर मना कर दिया कि बिना दाता की आज्ञा दाता की तस्वीर मिलना संभव नहीं। उन्होंने उन्हें परामर्श दिया कि कार्तिक पूर्णिमा के सत्संग पर जो पुष्कर गो-शाला में होता है उस समय दाता से आज्ञा ली जावे। उस कीर्तन का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने भगवान चतुर्भुज की एक तस्वीर खरीदी और उसी में दाता को देखते हुए प्रति दिन उस *तस्वीर के सामने कीर्तन करने लगे।*

अहमदाबाद स्टेशन पर ही उनका क्वार्टर था। रेलों के आवागमन के शोर से उन्हें कीर्तन में बाधा होती थी अतः उन्होंने चतुर्भुज की तस्वीर के सामने

दाता से प्रार्थना की कि उन्हें कोई शान्त स्थान मिल जाय जिससे वे कीर्तन तो आराम से कर सके। दाता भक्त की भावना का सदा ही आदर करते आये है। कुछ ही दिनो मे उनका स्थानान्तरण ईडर हो गया। ईडर अहमदाबाद से १०४ किलोमीटर दूर एक शान्त स्थान है। वहाँ नियुक्त रेल्वे कर्मचारियो को ऊपर की आमद अधिक होती है अतः प्रत्येक कर्मचारी ऐसी जगह जाने को उत्सुक रहता है। रिश्वत देकर भी लोग वहाँ अपना स्थानान्तरण कराने को इच्छुक रहते थे। राधाकृष्ण जी जैसे व्यक्ति का बिना रिश्वत दिये और बिना सिफारिश के वहाँ स्थानान्तरित हो जाना प्रभुकृपा ही थी। इस परिवर्तन से दाता के चरणो मे इनकी भक्ति बढ़ गई। वे दाता के प्रति अधिक से अधिक श्रद्धा रखने लगे। श्रद्धावान व्यक्ति ही भगवद भक्ति प्राप्ति मे सफल होते है।

श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ श्रीमद्भगवद्गीता

जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ, श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है, ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। वे नियमित रूप से कीर्तन करने लगे।

कातिक पूर्णिमा का समय आ गया अतः वे सत्संग हेतु पुष्कर आ गये। पुष्कर आने मे उनकी पत्नी की बीमारी ने रूकावट पैदा की किन्तु दाता की कृपा ही थी कि वे आ सके। इनकी पत्नी के पैर मे नहरु की तकलीफ थी और वह चल फिर नही सकती थी। उन्होने भगवान से प्रार्थना की कि पत्नी के पैर का दर्द ठीक हो जाए जिससे वे पुष्कर जा सके। दो दिन पूर्व तक तो उनकी पत्नी के पैर मे दर्द कम नहीं हुआ फिर हठात् उसके पैर का दर्द गायब हो गया। तब उनकी पत्नी ने उनको पुष्कर जाने की आज्ञा दे दी। पत्नी ने उन्हें जाने की ही आज्ञा नही दी वरन् स्वयं भी चलने को तैयार हो गई। वे अपने कुटुम्ब के साथ पुष्कर पहुँचे। गोशाला मे पहुँचने पर विदित हुआ कि दाता स्नानार्थ पुष्कर पधारे है। दर्शनो के उत्साह मे देरी असह्य होती है। वे सभी पुष्कर घाट के लिए प्रस्थान कर गये। घाट पर जाकर देखा कि दाता स्नान कर रहे है। भक्त लोग दाता को चारो ओर से घेर कर कीर्तन बोल रहे है। बड़ा आनन्ददायक नजारा था। उनसे नही रहा गया। वे भी कपडे उतारकर पानी में उतर पडे और लोगो मे शामिल होकर जोर जोर से कीर्तन करने लगे। उनकी पत्नी और लड़की भी सीढ़ियों पर खड़ी हो गई। लड़की का अचानक पैर फिसल गया और वह पानी में गिर गई। वह तैरना नहीं जानती थी अतः वह हाथ पैर मारने लगी। राधाकृष्ण जी की दृष्टि अचानक उधर चली गई। लड़की दूर थी अतः वे घबरा गये। देखते क्या है कि लड़की उनकी ओर हाथ पॉव मारती हुई चली आ रही है। उन्होने आगे बढ़कर उसे उठा लिया। पूछने पर लड़की ने बताया कि पानी मे गिरते ही वह डूबने लगी

तब एक दाढीवाले बाबा ने उसे हाथों पर उठा लिया और आपकी ओर ले आया। आपके पास आते ही उसने पानी में डुबकी लगा दी। पास में कई लोग थे जिन्हें यह सुनकर आश्चय हुआ।

स्नानोपरान्त दाता गो-शाला पधार गये। राधाकृष्ण जी भी अपने कुटुम्ब के साथ ही गो-शाला आए। दाता सीधे अपने कमरे में ही पधारे। अनेक भक्त लोग भी दाता के पीछे पीछे कमरे में चले गये। कमरा भक्त लोगो से भर गया। राधाकृष्ण जी नये तो थे ही साथ ही अन्य लोगो से अपरिचित भी। सयोग से गोपालसिंह जी भाटी जिन्हें वे अच्छी तरह जानते थे मिल गये। उनके साथ ये कमरे के बाहर जाकर बैठ गये। सत्सग चल पडा। राधाकृष्ण जी धीरे से गोपालसिंह जी से बोले, यहाँ तो बडे बडे आदमियो का काम है। यहा हमारे जैसे गरीबो को कौन पूछेगा। बात इतनी धीरे कही गई कि किसी के सुनने की तो सभावना ही नहीं थी, किन्तु उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना ही नहीं रहा जब उन्होने दाता को यह कहते सुना दाता के दरबार मे सब समान हैं। यहाँ न कोई बडा है और न छोटा। जितना स्थान एक धनी व्यक्ति को मिलता है उतना ही गरीब को भी मिलता है। जो कोई यह सोचता हो 'गरीबों को कौन पूछे' वह अन्दर आ सकता है। राधाकृष्ण जी शर्म से पानी पानी हो गये। वे कमरे मे जा बैठे। उन्हें सत्सग मण्डली में भी सम्मिलित कर लिया गया और दाता की तस्वीर भी मिल गई।

ईडर जाकर उन्होने दाता की तस्वीर को आसन पर स्थापित कर दी और नित्य साय तस्वीर के सामने तन्मय होकर कीतन करने लगे। उन्हें यह पूरा विश्वास होगया कि जहा कीर्तन होता है वहाँ दाता अवश्य बिराजते हैं। दाता की कृपा से उन्हें कोयले का ठेका भी मिल गया जिससे उनकी आय में भी वृद्धि हो गइ और दिन भी आनन्द से बीतने लगे। उनपर दाता की नित्य प्रति महर होने लगी। दाता बडे दयालु हैं जिसे देना चाहते ह छप्पर फाडकर देते हैं। दाता की दया से उनका सितारा चमकना था। अचानक उनका स्थानान्तरण ईडर से 'गोजारिया' हो गया जो काफी दूर था। उनके लिए कठिनाई हो गई। कहाँ तो शान्त वातावरण मे प्रभु कीर्तन, कहाँ सब घरवालों को छोड 'गोजारिया' रहना। वे बहुत दु खी हुए। उन्होंने नोकरी छोड लकडो की टाल लगाने का विचार किया। उन्होने इसके लिए स्थान की तलाश की किन्तु उपयुक्त स्थान नहीं मिला। उन्होंने दाता की तस्वीर के सामने आत्त होकर पुकार की। पुकार कर वे ध्यान में बैठ गये। उनकी आँखें बन्द थी। अचानक ऐसा अनुभव हुआ कि कमरे में तेज प्रकाश हे। उन्होने आँखें खोल दी। विचित्र दृश्य उनके सामने आया। विवरण उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है — "मैं दाता की तस्वीर के आगे बैठा था। आँखें बन्द कर रखी थी कि अचानक जैसे मेरा पूरा शरीर रोशनी से भर गया और मैंने आँखें खोल दी। उस समय जो दृश्य मुझे दिखाई दिया वह

आज भी मुझे याद है। दाता की तस्वीर में भगवान श्री विष्णु के चतुर्भुज रुप के दर्शन हो रहे थे। चक्रधारी प्रभु मन्द मन्द मुस्करा रहे थे। मुझे समझ नही आ रहा था कि क्या किया जाय, तभी मुझे ध्यान हो आया और मैंने अपने को सौभाग्यशाली समझते हुए भगवान को प्रणाम किया। मेरे मुंह से शब्द निकल पडे, "हे दीनवन्धु ! मेरी ट्रान्सफर हो चुकी है, अव मैं क्या करुं ?" विष्णुरुप मे दाता ने फरमाया और अपना एक हाथ ऊँचा करते हुए अंगुली के संकेत से वताया, "तुम वहाँ चले जाना, तुम्हारा कल्याण होगा"। मैंने प्रभु के वचनो को आज्ञा मान शीष झुकाया। ज्यों ही मैंने सिर ऊपर उठाया तो चतुर्भुज रुप गायव था और तस्वीर में दाता पूर्णरूप से विराजमान थे। मैं गद्गद् हो गया। यह कैसी अपूर्व महर थी प्रभु की। उन्होने मुझे काविल समझा। सुदामा के मुट्ठी भर चावल के वदले पूरा ऐश्वर्य ही दे दिया।

राधाकृष्ण जी ने प्रभु द्वारा वताये गये स्थान को उस समय देखा था जब भगवान का संकेत हुआ था। उस स्थान की वड़ी खोज की किन्तु उसका कही भी पता नही चला। लगभग दस माह व्यतीत हो गये। वे निराश होकर नोकरी पर जाना ही चाहते थे कि एक व्यापारी उनके पास आया। उसने आते ही कहा, "तुम टाल लगाना चाहते हो तो भूमि तो मैं वता दूं।" प्रसन्न होकर वे उसके साथ गये। गाँव के वाहर एक वीरान स्थान पर वह ले गया। वहाँ पास ही एक शिवमन्दिर था। उस स्थान को देखते ही वे फोरन पहचान गये कि यही स्थान है जिसके लिए दाता ने दस माह पूर्व संकेत किया था। उन्होंने दाता का नाम लेकर वहाँ टाल लगा दी। टाल अच्छी चल पड़ी। वही उन्होंने अपने लिए एक भवन का निर्माण करा लिया जिसका नाम 'दाता-निवास' रखा।

एक दिन दाता उन्हें स्वप्न मे दर्शन देकर शिवमन्दिर में ले गये और वहाँ स्वयं शिवलिङ्ग पर जल चढ़ाकर वताया कि वे प्रतिदिन इस प्रकार शिव जी पर जल चढ़ाया करें। उस दिन से वे शिवलिङ्ग पर नियमित रुप से जल चढाने लगे। उनका जीवन वडे आनन्द से वीतने लगा। वे वडे प्रसन्न थे। पूरे कुटुम्व के सदस्य दाता के प्रति अटूट श्रद्धा रखने लगे थे। घर का वातावरण भगवत्मय था। भागवत-ज्ञान के प्राप्त होते ही उनके सारे कर्म इस प्रकार समाप्त हो गये जिस प्रकार अग्नि में कोई वस्तु गिरकर नष्ट हो जाती है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरूतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरूते तथा।।–श्रीमद्भगवद्गीता

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को फरमा रहे हे कि हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धन को भस्ममय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मो को भस्ममय कर देता हे। ठीक इसी प्रकार की अवस्था राधाकृष्ण जी की हो गई।

राधाकृष्ण जी अपने घर-गृहस्थी में प्रसन्न थे। सुख और शान्ति से ओतप्रोत हो गया उनका जीवन। एक दिन उनके घर दो साधु आये। उस दिन उनके वच्चे

का जन्म दिवस था। उन्होने उनका स्वागत किया और सादर भोजन कराया। तत्पश्चात आने का प्रयोजन पूछा। उन्होने उत्तर दिया आज मगलवार था और तुम्हारे बेटे का जन्म दिवस था अत चले आये।' उन्होने दाता की तस्वीर के सामने नमस्कार भी किया। उन साधुओ के आने का प्रयोजन वे समझ न सके। साधु चले गये। तीसरे पहर वे दोनों साधु वापिस आये और बताने लगे 'तुम्हारे गुरु-महाराज यहा पधारे है। राम टेकरी पर बिराज रहे है और तुम्हें बुला रहे है।" वे तत्काल उठ खडे हुए और शीघ्र ही वहां पहुँचे। वहां एक शिवमन्दिर था। शिवमन्दिर के बाहर लोगों की भीड थी। एक ओर सजा हुआ हाथी खडा था तो दूसरी ओर बाजे वाले अपनी धुन बजा रहे थे। वे मन्दिर में पहुँचे। शिवलिङ्ग के पास उन्होने दाता को बैठे पाया। राधाकृष्ण जी ने पृथ्वी पर लेटकर साष्टाग प्रणाम किया। दाता ने उन्हें सकेत से पास बुलाया पुचकारा और बोले 'जाओ! पुत्र सहित हाथी पर बैठ जाओ और ये लोग जैसा कहे वैसा करो।' वे चकित से स्तब्ध रह गये। उनके मुह से शब्द भी नहीं निकल पाया। कुछ सभलने पर दाता का आदेश उन्हें समझ में आया। उन्होने फौरन आदेश का पालन किया। पुत्र को वे साथ लाये ही थे। वे चुपचाप बच्चे सहित हाथी पर जा बैठे। हाथी पर पहले से ही दाता की तस्वीर रखी हुई थी। उनके बैठते ही दो चवर धारी हाथ में चँवर लेकर डुलाने लगे। आगे बाजेवाले हो गये। जो लोग वहा थे वे सब हाथी के पीछे हो गये। सवारी का रूप हो गया। सवारी बडे धूमधाम से निकाली गई। राधाकृष्ण जी अपने बच्चे सहित सकुचित होते हुए बैठे रहे। उनको समझ में ही नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। वे दाता का स्मरण करते हुए चुपचाप बैठे रहे। सवारी पूरे गाँव में होकर निकाली गई। खूब अबीर उछाली गई। फूल उछाले गये। गुलाल से सडकें लाल हो गई। जय-जयकार की गूज उठ रही थी। वातावरण में उल्लास और आनन्द ही आनन्द था। हजारो आदमी उस सवारी में विद्यमान थे। आश्चर्य था कि इतने आदमी आ कहा से गये। राधाकृष्ण जी ने बताया कि उनका तो सिर ही ऊपर नहीं उठ रहा था। जो मानसम्मान एक राजा को मिलना चाहिए वह मानसम्मान दाता ने दया कर एक साधारण से जीव को दिया। कितनी महर थी दाता की उनपर। त्रेता में राम ने वानरों को मित्र बनाकर अपनाया था और निषाद को हृदय से लगाया था। द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के मेवे को छोडकर विदुर के यहा केले के छिलके स्वीकार किये थे। आज इस कलियुग में भगवान दाता ने एक साधारण जीव को हाथी पर बिठाकर सम्मान दिया। चँवर डुलवाये। इन सबका करना उसके लिए कौन सी बडी बात है।

चार पांच घण्टे बाद सवारी राधाकृष्ण जी के घर पहुँची। घर पहुँचते ही राधाकृष्ण जी हाथी से उतरे और सीधे ही दाता की तस्वीर के सामने जाकर रोने लगे। कुछ समय बाद जब वे आश्वस्त हुए तो उन्हें सन्तो व अन्य लोगों को जो

सवारी में घर तक आये थे उनकी याद आयी। वे दौड़ हुए बाहर आये, बाहर तो कोई नही था। न बाजे वाले, न हाथी, न साधु और न अन्य आदमी। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतना शीघ्र सभी लोग कहाँ चले गये। उन्हे आश्चर्य तो हुआ किन्तु पश्चाताप भी। पश्चाताप इस बात का कि घर आये लोगों का वे स्वागत सत्कार नही कर सके। उनका दिल रो दिया। उन्होने मन ही मन सोचा कि वे कितने अभागे है कि घर आये मेहमानो को आदर भी नही दे सके। वे घर से रवाना होकर रामटेकरी पर पहुंचे। वहाँ पहुँच कर उन्हे जरूरत से ज्यादा आश्चर्य हुआ। वहाँ कोई नही था। न दाता ही थे, न कोई सन्त ही थे यहाँ तक की शिवमन्दिर भी नहीं था। 'यह क्या माया है' वे सोचने लगे। वहाँ तो मनुष्य मात्र आया हो इसका भी कोई संकेत नही था। वे अवाक रह गये और शरीर रोमाचित हो गया। वे गद्गद् होकर वही बैठ गये। घण्टो वही बैठकर प्रभु की अपार कृपा को याद कर रोते रहे। रात्रि के लगभग दस बजे वे लौटे।

इस प्रकार दाता ने साधारण से व्यक्ति पर कितनी महर की। दाता तो महान् दयालु है। जो आर्त्त होकर सच्चे हृदय से उसे भजता है, वह तो पूर्ण रूपसे उसका ही हो जाता है। राधाकृष्ण जी उसके हो गये तो कितनी महान् कृपा हो गई दाता की उनपर। वे दाता को साक्षात् कृष्णरूप में ही देखते हैं। उन्होने एक बार कहा भी था, "दाता स्वयं कृष्ण है इसकी अनुभूति मुझे कई बार हो चुकी है। गोकुल मे गायो के साथ घूमने वाले मनमोहन अब दातानिवास में इन्हीं गायो के साथ विराज रहे है। भगवान ने अपनी लीला के दर्शन मुझे दो तीन प्रसंग पर इस तरह कराये है कि जिससे यह विश्वास हो जाता है कि श्री दाता ही भगवान श्रीकृष्ण है और दाता के वेश में पहले नान्दशा और अब बांसा में विराज रहे है।"

श्री राधाकृष्ण जी को कई बार दाता की महर का भान हो चुका है। एक बार मांडल की पाल पर आगे आगे दाता जा रहे थे और पीछे गोपालसिंह जी के साथ राधाकृष्ण जी जा रहे थे। उन्होने धीरे से गोपालकृष्ण जी से कहा, "कृष्ण भी काले थे और माखनचोर थे, दाता भी काले है और साथ ही साथ चोर भी है।" इस प्रकार मजाक ही मजाक में बाते कर रहे थे। दाता काफी आगे थे। वे एकाएक ठहर गये। उन दोनो के पास आने पर बोले, "ये सब चोर है और मैं चोरो का सिरमौर हूँ। अब और किसी को कुछ कहना है?" राधाकृष्ण जी यह सुनकर सन्न रह गये। उन्हें विश्वास हो आया कि ये तो अन्तर्यामी है, इनसे क्या छिपा है? इसके बाद से उन्हें दाता के प्रति किसी प्रकार की कोई शंका नहीं रही, फिर भी मन तो मन ही है। मन में तर्कों का उठना स्वाभाविक है। राधाकृष्ण जी के भी समय समय पर तर्क उठते, किन्तु दाता की कृपा से तत्काल ही उनका समाधान हो जाता। दाता की इच्छा से उनकी छोटी से छोटी इच्छा भी पूरी होने लगी। वे मांडल के तालाब में स्नान कर रहे थे कि उनके मन में तरंग उठी कि दाता अन्य सत्संगियों के साथ तो स्नान करते है किन्तु कभी मेरे

साथ तो स्नान करते नही। यह सोचते सोचते उन्होंने पानी में डुबकी लगायी। डुबकी लगाते ही उन्होने दाता को पानी में पाया। बाहर आते ही दाता गायब। उन्होने अनेक बार डुबकियाँ लगायी। प्रत्येक बार दाता को अपने पास पाया। बाहर आते ही गायब। वे गदगद हो गये। इस प्रकार उनकी इच्छायें पूरी होती रहती हैं।

जीवन में आनेवाले सकटो की सूचना उन्हें किसी न किसी माध्यम से मिल ही जाती है। उन्होने अपने कारोबार को एक व्यक्ति को सौप दिया था। वे उसे हिस्सेदार बनाना चाहते थे। दाता ने सत्सग के अवसर पर कहा "प्रत्येक व्यक्ति से सावधान रहना चाहिए।" उन्होंने सोचा कि दाता का एक भी शब्द व्यथ नहीं निकलता। अवश्य कुछ न कुछ रहस्य है। उन्होने हिस्सेदार के कार्य की जाच की तो हजारो रुपयो का घोटाला पाया। उन्हें यह भी आभास हो गया की वह व्यक्ति पूरे कारोबार को ही हडपना चाहता है। दाता ने सकेत से उन्हें सावधान कर दिया और वे बाल बाल बच गये। अब दाता पर उन्हें इतना विश्वास हो गया कि उनकी आज्ञा के बिना कुछ काय करते ही नहीं। जब भी उन्हें किसी काय की आज्ञा लेनी होती है वे उनकी तस्वीर के सामने जा बैठते हैं और उन्हें सकेत हो जाता है।

उज्जैन कुम मेले के अवसर पर वे उज्जैन गये थे। वहां नदी में उनका पैर फिसल गया। मुह और नाक में पानी चला गया और मरने की सी स्थिति हो गई। दाता ने वहाँ भी पहुँचकर उनकी रक्षा की। इस प्रकार श्री दाता की महर से श्री राधाकृष्ण जी का जीवन ही दातामय हो गया।

o o o

सन्त गंगादास जी के आश्रम पर

दादूपन्थ का संक्षिप्त परिचय

कबीर की शिष्य परम्परा मे सोलहवी सदी मे दादूदयाल नाम से सन्त हुए है, जिन्होने एक अलग ही पन्थ की स्थापना की जो उन्ही के नाम से 'दादू-पन्थ' कहलाया। दादू बडे दयालु स्वभाव के सन्त थे। वे जीव मात्र पर दया का भाव रखते थे। इसी कारण लोग उन्हें दादूदयाल कहने लगे। इनके बनाये हुए 'सबद' और 'बानी' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इन बानियो मे उन्होने संसार की असारता और ईश्वर-भक्ति के उपदेश दिये है। ये अपने शिष्यो को वेदान्त के तत्वो का उपदेश देते थे। कबीर की तरह इनका मत भी हिन्दू-मुसलमानो को मिलाने वाला मत था। उन्होने मूर्ति-पूजा और अवतारवाद को विवादास्पद बताकर हृदय की शुद्धता, मन की एकाग्रता, जीवदया और सर्वव्यापी ईश्वर की अहर्निश अनुभूति को मानव-जीवन की सफलता का आधार निश्चित किया। उन्होने कुरान और पुराण को बराबर बताया। किन्तु मुसलमान इसके अनुयायी नही बने, क्योकि इन्होने अपने सम्प्रदाय की भित्ति एकमात्र हिन्दूसंस्कृति की नींव पर उठाई। मुल्ला और पण्डितो ने इस पंथ से मत-भेद प्रकट कर हँसी उड़ाने मे कोई कसर नही रखी, किन्तु परमात्मा की उपासनाविधि सरल और सुगम होने से पथभ्रष्ट समाज इनका अनुयायी हो गया। प्रभाव यह हुआ कि कई लोग विधर्मी होने से बच गये।

इस पन्थ की गुरुगद्दी नरायणा में है। यही इस पन्थ का मुख्य केन्द्र है। इस पंथ के साधु ब्रह्मचारी होते है। इन्हे 'साधु' नाम दिया जाता है। गृहस्थ अनुयायियों को 'सेवक' के नाम से पुकारा जाता था।

गंगादास जी

दादू-दयाल की शिष्यपरम्परा मे गंगादास जी नामक एक सिद्ध और महान सन्त हुए हैं। वे पाटवीं शिष्यपरम्परा में नही थे किन्तु सिद्ध पुरुष होने और वृद्ध होने से पाटवी साधु भी इन्हे आदर देते थे और इनका सम्मान करते थे। गंगादास जी परम भक्त, दयालु, संतोषी और धैर्यवान थे। ये ऐसे गुरु-पन्थ के प्रचारक थे कि अनेक गरीब, अमीर, शिक्षित, अशिक्षित, मानी और अमानी इनके शिष्य और सेवक बन गयें। अनेक लोग इन्हे ईश्वर के रूप मे मानते थे। इनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई, जिसका वर्णन करना कठिन है।

'पो' नामक स्थान मे इनका आश्रम है। 'पो' मेड़ता जिले मे मरुस्थली के बीच एक परम रम्यस्थान है। आश्रम बडा है। उसमें कई साधुओं के रहने

की व्यवस्था है। आश्रम की भूमि कृषियोग्य भी है। आश्रम में मुख्य स्थान पर दादू-दयाल का चित्र है और दादू-वानी' रखी हुई है। साधुलोग प्रात-साय पूजा करते है। उनके शिष्यो में साधु और साध्वियाँ दोनों हो हैं। सौ के लगभग साधु-साध्वियाँ आश्रम में इनके पास रहते हैं।

आश्रम की सुन्दर व्यवस्था है। आश्रम से लगी हुई भूमि से पर्याप्त अन्न आ जाता है। 'पो' इस क्षेत्र का एकमात्र आध्यात्मिक केन्द्र है अत इस कारण और गगादास जी के त्याग तपस्या सहृदयता, दयालुता और सहज प्रकृति के कारण इस आश्रम की बड़ी मान्यता रही है। इस क्षेत्र का कृषक समाज विशेष रूप से जाट धन और ऐश्वय से परिपूर्ण है। उनके खेतों में जो भी पैदावार होती है उसका निर्धारित प्रतिशत आश्रम को भेंट किया जाता है। अत आश्रम के कोठे हर समय धन-धान्य से परिपूर्ण रहते है। इस आश्रम में आया हुआ कोई भूखा न जाय' इस बात का पूरा ध्यान इस क्षेत्र के आदमी रखते हैं। इस आय के अतिरिक्त भक्तों द्वारा चढाई हुइ भेंट की भी आय है। महात्मा जी के शिष्य प्रतिदिन भिक्षा को जाते हे। उन्हें भिक्षा में सोकरे (बाजरे की रोटियाँ) दिये जाते हैं जो इतनी मात्रा में आते हैं कि उन्हें सुखाया जाता है। आनेवाले भक्तजनों को वही सोकरे प्रसाद रूप में दिये जाते हैं।

पो नाम के पीछे भी एक किंवदन्ती प्रचलित है। एक बार बादशाह अपनी सेना के साथ इस क्षेत्र से होकर निकला। मरुस्थल होने से पानी का अभाव तो था ही। उसकी सेना को कहो पानी नहीं मिला। प्यास से वह व्याकुल हो गइ। उस समय इस स्थान पर दादू दयाल की पीढ़ी के सुखरामदास जी नामक सत थे। उस सत ने अपनी सुम्पी से पानी पिलाकर सब की प्यास बुझाइ। यह आश्चर्यजनक घटना थी। चूकि सभी को पानी मिला इसलिए इसका नाम 'पो' पड गया। यहाँ के कुएं में अभी भी अटूट पानी है और आसपास के क्षेत्रों को यहाँ से पानी मिलता है।

दाता से निवेदन

दाता और गगादास जी का मिलन अलवर में हुआ था जब कि दाता नीमराणा से वापिस ना-दशा पधार रहे थे। अलवर में अमरसिंह जो राणावत के आग्रह पर ठहर गये थे। गगादास जी नदलालसिंह जी के यहाँ आये हुए थे। उस मिलन में दोनों ही सन्त एक दूसरे से प्रभावित हुए थे। गगादास जी के अनेक शिष्य दाता के दर्शनो को आया ही करते है। उन्होने अनेक बार दाता से पो' पधारने का आग्रह किया किन्तु योग बना ही नहीं।

प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा का सत्संग पुष्कर में ही होता आया है। एक बार इसी पूर्णिमा के सत्संग के अवसर पर दाता का पधारना गोरखनाथ के मन्दिर में हो गया। वहाँ अनेक नाथ पथी साधु थे। उस दिन वहाँ समारोह था। नाथ की

पूजा का आयोजन था। कुछ समय वहाँ विराजने के बाद दाता का पधारना भरतपुर घाट पर स्थित आश्रम पर हुआ। वहाँ श्री सीताराम-ओंकारेश्वर नाम का एक बंगाली बाबा अपने अनेक शिष्यो के साथ ठहरा हुआ था। उसने दाता को आश्रम मे पधारते देखा। उसे ऐसा लगा कि रामकृष्ण देव अपने कई शिष्यो के साथ पधार रहे है। वह गद्गद् हो गया। अपने शिष्यों सहित आगे बढ़कर उन्होने दाता का स्वागत किया। वही बड़ी देर तक सत्संग चलता रहा। दाता के वचनामृत ने बंगाली बाबा को बड़ा प्रभावित किया। कुछ समय बाद दाता गो-शाला में पधार गये।

अगले दिन बंगाली बाबा अपने शिष्यो सहित 'तु ही राजा राम है, तू ही घनश्याम है, तेरे ही चरणो मे दाता कोटिशः प्रणाम है' का कीर्तन करते हुए गो-शाला मे आ गये। दाता भी उस मण्डली के स्वागतार्थ द्वार तक पधारे। गो-शाला के आगन में स्थित एक चबूतरे पर सत्संग हुआ। एक दूसरे की महानता के प्रतिपादन के बाद दाता ने फरमाया, "महापुरुष सदैव अपने शिष्यो और सेवको को सदा जागरूक रहने और यत्न करते रहने के लिए फरमाते है। लोक और परलोक दोनो को ही बनाने के लिये यह परम आवश्यक है। राम के वनगमन का उद्देश्य आर्य-संस्कृति को सुदृढ़ एवं विस्तृत करना एवं ऋषियो और गुरुकुलो की रक्षा करना था। कार्य आवश्यक है। कार्य न करने पर तो मनुष्य कर्महीन हो जाता हे। फल की इच्छा दुःखदायी है। फल की इच्छा से रहित होकर सब काम प्रभु के समझकर करना आनन्दप्रद है।" कुछ देर इसी प्रकार सत्संग होता रहा। बाबा और उसके शिष्य बडे प्रसन्न थे। जाते वक्त स्वयं दाता अपने भक्तो के साथ कीर्तन करते हुए दूर तक पहुँचाने गये।

बंगाली बाबा के मिलने से दाता बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे अतः मूलसिंह जी, समुद्रसिह जी, पन्नेसिह जी आदि ने समय का लाभ उठाया। उन्होने दाता को सन्त गंगादास जी का स्मरण दिलाते हुए 'पो' पधारने हेतु निवेदन किया। दाता को भी गंगादास जी की याद हो आयी। उन्होने 'पो' चलना स्वीकार कर लिया। एक कार और एक बस की व्यवस्था कर ली गई। अगले दिन प्रातः ही पुष्कर से रवानगी हो गई। पहाड़ियो के मध्य होते हुए मरुस्थल में प्रवेश कर मेड़ता पधारना हुआ। मेड़ता मीरा के जन्म स्थली के पास का ग्राम है। वहाँ चार भुजा का विशाल मन्दिर है जिनके सन्मुख मीरा की विशाल मूर्ति है। मीरा की मूर्ति देख कर दाता भावविभोर हो गये। कुछ समय बाद स्वतः ही उनके मुखारविन्द से स्वर प्रस्फुटित हुए, "मीरा मीरा ही थी। कितनी कठोर परीक्षा ली गई थी उसकी। वह तो अपने प्रियतम के लिए हँसते हँसते विष पी गई! दाता के दरबार की यही तो रीति है। जो अपना सब कुछ दे देता है उसका अपना सब कुछ बना देता है। मीरा ने अपना सब कुछ कृष्ण को दे दिया। वह कृष्ण के लिए बिक गई तो कृष्ण ने उसे स्वयं को कृष्ण ही बना दिया। सब ही दाता का खेल है। राणा में

कौन था। वही तो था। इधर राणा बनकर विष पिलाता है और उधर मीरा बन कर विषपान करता है। बडी अद्भुत लीला है उस नटवर नागर की।'

गंगादास जी के यहाँ

मेडता से सीधे पो पहुंचे। गंगादास जी कुछ अस्वस्थ थे। वे एक पलग पर विश्राम कर रहे थे। ज्यों ही उन्हें विदित हुआ कि दाता पधारे हैं वे उठ बैठे। उनके शिष्य दाता की अभ्यर्थना करने दौड पडे। दाता सीधे गंगादास जी के पास गये। अभिवादन के बाद पास ही बिराज गये। गंगादास जी की वाणी अधिक प्रसन्नता के कारण अवरुद्ध हो गए। नेत्र तरल हो गये। दोनो ही महान सन्तो का मिलन अपूर्व था। जब वे अपनी साधारण स्थिति में आये तो अपने शिष्यों को दाता की और उनके भक्त जनो की व्यवस्था हेतु आदेश दिया। उन्होने अपने शिष्यो से कहा 'ये गुरुओ के भी गुरु है। इनकी सेवा में चूक नहीं होनी चाहिए। जिलाधीश मूलसिह जी जो उनके पट् सेवको में से एक थे बुलाकर उन्हें व्यवस्था करने हेतु आदेश दिया। बात की बात में आवास इत्यादि की सुन्दर व्यवस्था हो गई।

सध्याकालीन पूजा का जब समय हुआ उस समय शिष्य दादू-वाणी का पाठ कर दादू-दयाल की पूजा करने लगे। पूजा के बाद आरती हुई और अन्त में वाणी के कुछ दोहों का सस्वर पाठ हुआ। उच्चारण स्पष्ट और मधुर था। पूजा में हम सभी को बडा आनन्द आया। शिष्यों ने भोजन की व्यवस्था कर ली थी अत उनके विशेष आग्रह पर इच्छा न होते हुए भी भोजन करना ही पडा। भोजन पूरा का पूरा मारवाडी था। बाजरे का खीच, बाजरे के सोगरे और कढी थी। अधिकतर लोगों के लिए नया भोजन था किन्तु सभी ने तृप्त होकर खाया। रात्रि को दाता दयाल मेरे दाता दयाल का कीतन जम कर किया।

प्रात गंगादास जी से मिलकर दाता वहाँ से रवाना हो गये। विदा होते समय का दृश्य हृदयविदारक था। अश्रुपूरित नेत्रो से गंगादास जी ने दाता को विदा किया।

दाता के 'पो पधारने के कुछ माह बाद ही गंगादास जी अस्वस्थ हो गये। अस्वस्थता धीरे धीरे बढने लगी और उसने असाध्य बीमारी का रूप धारण कर लिया। अगली कार्तिक पूर्णिमा पर गंगादास जी ने अपनी एक शिष्या को पुष्कर दाता के पास भेजा और दर्शन देने की प्रार्थना की। उनकी बीमारी की सूचना पहले ही दाता के पास पहुंच गई थी। वे स्वय उनसे मिलने की इच्छा कर रहे थे। दाता तत्काल ही 'पो पधारने को तैयार हो गये। भक्त मण्डली भी साथ चलने को तैयार हो गई। बस द्वारा वहाँ पधारना हुआ। दाता के वहाँ पहुँचते ही वहाँ हर्ष व्याप्त हो गया। गंगादास जी एक पलग पर सोते थे। हिलना डुलना

संभव था नही। बोली भी बन्द थी। दाता को देखकर उनके नेत्रो से पानी बह चला। दाता ने उनके चरण छुए और फिर पास ही विराज गये। वे दाता को निहारते रहे। दाता ने संकेत से उन्हे प्रभु के स्मरण हेतु कहा। रात्रि को विश्राम कर अगले दिन उन्हे पुनः आश्वासन देकर पुष्कर पधार गये।

कुछ दिनो बाद ही गंगादास जी ने अपने नश्वर शरीर को छोड़ दिया। ज्योति मे ज्योति मिल गई। गंगादास जी महान सन्त थे।

० ० ०

दाता का गुणवैभव

दाता के अब तक के चरित्र को और सदगुरु समर्थ के रूप में दाता' के प्रकरण को पढ कर आपको उनकी असाधारण शक्तिसम्पन्नता असाधारण दाता-भक्ति त्याग वैराग्य सरलता सत्यनिष्ठा आदि गुणों की जानकारी तो अवश्य हो गइ होगी। फिर भी कुछ विशिष्ट गुण पुन आपके सामने प्रस्तुत किये जा रहे है जिन्हें जान कर आप अपने जीवन को उज्ज्वल से उज्ज्वलतर बना सकते हैं। दाता का जीवन कितना महान है कितना मधुर है यह इस बात से ही स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति जिसपर उनकी कृपा करनी हो उनके सन्मुख आ जाता है मोहित हुए बिना नहीं रहता है। जो भी वहा पहुँचता है मुग्ध होता ही है। कोई उनके सरल स्वभाव को देखकर, कोइ उनकी भक्ति देखकर, कोई त्याग और तपस्या पर, कोइ इनकी सत्यनिष्ठा पर, कोई इनकी विनम्रता पर और कोइ इनकी निरभिमानता पर मुग्ध होता है। कैसा भी प्राणी क्यों न हो जो उनके सन्मुख जाता है वह उनके चरित्र से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। सचमुच ही दाता में विभिन्न गुणों का ऐसा अपूर्व समन्वय महापुरुषो के सिवाय अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। कोइ भी व्यक्ति अन्य व्यक्ति के गुणों या अवगुणों पर अपनी भावना के अनुसार ही रीझता है। रस की उत्पत्ति भावना के अनुसार ही होती है। भगवान कृष्ण अपने भाइ के साथ कस के दरबार में गये थे उस समय सभा में उपस्थित जितने भी लोग थे उनको भगवान श्रीकृष्ण भिन्न भिन्न रूपों में दिखाई दिये थे। मल्लो को उनका शरीर वज्र के समान गोपों को सखा के समान, दुष्टजनो को सजीव दण्ड के समान अपने माता-पिताओं को पुत्र के समान कस को मृत्यु के समान अज्ञानियो को विराट् के समान, योगियों को परमतत्व के समान और यादवों को परम देवता के समान दिखाई दिये।

> मल्लानामशनिर्नृणा नरवर स्त्रीणा स्मरो मूर्तिमान्
> गोपाना स्वजनोऽसता क्षितिभुजा शास्ता स्वपित्रो शिशु ।
> मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषा तत्त्व पर योगिना
> वृष्णीना परदेवतेति विदितो रग गत साग्रज ॥—श्रीमदभागवत

जिसकी जैसी भावना रही वैसी ही उसे प्रभु की मूर्ति दिखाई थी।

> जाकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी ॥ तुलसी

भगवान श्रीकृष्ण राजनीति में पूण दक्ष थे अत उन्होंने भावना के अनुसार ही सब को दर्शन दिया। मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार ही विचार स्थिर करता है

किन्तु सरलचित व्यक्ति की भावना उत्तम ही बनती है। सरलचित एवं सात्विक विचारो वाले व्यक्ति महापुरुष के सम्पर्क मे आने पर उसके जीवन से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। यही अवस्था दाता के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियो की होती है। यह तो रही बात सरल एवं सात्विक विचारो वाले व्यक्तियो की किन्तु जो असत् व्यक्ति है उन पर भी दाता के सम्पर्क मे जाने पर अच्छा ही प्रभाव होते देखा गया है। सत्य है जिस की भावना विश्वहित की होती है उसका प्रभाव सब पर सम ही होता है। सूर्य समान किरणे विकीर्ण करता है और सभी व्यक्ति समानरूप से प्रभावित होते हैं। दाता तो गुणो के भण्डार हैं। कुछ का वर्णन यहां दिया जा रहा है।

अनासक्ति

दाता संसारी हैं। वे संसार में रह रहे है। उनके पत्नी है, लड़का है, लड़कियां है और लडके लड़कियो की संतानें हे। वे पूर्णरूप से सबके प्रति कर्तव्यनिष्ठ है तथा सभी से समानरूप से स्नेह करते है किन्तु मोह किसी से नही है। वे निर्लिप्त है। गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी वे उससे परे है। जिस प्रकार कमल जल में रहते हुए भी जल से बाहर है उसी प्रकार दाता भी गृहस्थाश्रम में रहते हुए गृहस्थाश्रम से बाहर हैं। उनके जीवन के कई ऐसे उदाहरण देखने को मिले हैं जिससे इस बात की सत्यता प्रमाणित होती है। उनका इकलौता पुत्र कुं. हरदयाल सिंह है। बाल्यावस्था में एक समय वह अधिक बीमार हो गया। धीरे धीरे उपचार कराने के बावजूद वह मरणासन्न स्थिति में पहुंच गया। दाता संसार में किसी से प्रेम करते हैं तो वह है 'सद्गुरु' जिसको दाता 'दाता' के नाम से सम्बोधित करते है। वही उनके लिए सर्वस्व है। उसी के साथ हुए सम्बन्ध को वे सच्चा सम्बन्ध मानते हैं। संसार के सभी सम्बन्ध उनके लिए मिथ्या है। सभी को दाता की दी हुई वस्तु मानकर प्रयोग करते है। माता-पिता बहन-भाई और अपने बच्चो के प्रति भी सदैव उनके वही भाव रहे हैं। जब हरदयालसिंह के बचने की कोई आशा नही रही, तो लोगो ने उनके सामने पुकार की किन्तु यह कह कर मौन हो गये, "मेरे राम के हाथ में कुछ नही है। इसमे मेरा राम कुछ भी नहीं कर सकता। दाता ही जाने। यदि दाता अपनी वस्तु को ले जाना चाहता है तो अवश्य ले जावेगा। मैं रोकने वाला कौन होता हूं।" उनके इस कथन से लोग निराश हो गये।

वे मकान से उठकर मन्दिर में जा बैठे। अकेले ही थे। एकाएक मन्दिर के अन्दर से आवाज आती है, "हरदयालसिंह बड़ा होनहार लड़का है। उसका अच्छा होना जरूरी है। यदि तुम दाता का आश्रय छोड़ दो तो वह अच्छा हो सकता है। वह बड़ा कर्मी है। तुम चाहो तो उसे बचा सकते हो।" दाता ने मन्दिर में देखा तो वहां कोई नहीं था। दाता वापिस अपने स्थान पर आ बैठे। कुछ देर बाद पुनः वही आवाज आयी, इसपर दाता कुछ दुःखी हुए। उन्होने कहा,

"हरदयाल यदि कल मरता हो तो आज मर जाय और यदि आज मरता हो तो अभी मर जाय। मेरे राम का आश्रय तो दाता ही है। दुनिया भी रूठ जाय तो कोई चिन्ता नहीं। दाता का आधार किसी भी अवस्था में नहीं छोडा जा सकता है।" कुछ समय बाद वे घर जाते हैं तो क्या देखते है कि हरदयाल ठीक है और खेल रहा है। यह उनकी निर्लिप्तता का उदाहरण है।

भगवान के सच्चे प्रेमी लौकिक या पारलौकिक सुख नहीं चाहते। वे तो चातक की भांति केवल भगवान से प्रेम ही करते हैं और उन्हें किसी भी अवस्था में कैसी भी बुरी स्थिति में अपने प्रियतम से किसी प्रकार की शिकायत नहीं होती। उनमें अपने प्रियतम के प्रति एकांगी प्रेम होता है। वे सुख-दुःख सभी मे अपने प्रियतम के कोमल करकमल का सस्पर्श पाते है और इसी में परम प्रसन्न रहते है। न उन्हें शिकायत है न कामना है न रज है, न दुःख है। वे मरत है और इसी मे सुख तथा गौरव की अनुभूति करते है। एक भक्त ने कहा है –

सच्ची सुहागिन, मैं सुहागिन, हूँ मेरे भर्तार की।
भूखी हूँ मैं अपनत्व की, भूखी नहीं सत्कार की॥
मुझको वे अपनी मानते है, याद रखते नित्त मुझे।
इसीसे डरते नही है, दुःख देने मे मुझे॥
है सताते वे मेरे प्यारे मुझे दिल खोलकर।
हूँ सदा उनकी, हिचकते ह नहीं यह बोलकर॥
दुःख देने में मुझे यदि उनको मिलता तनिक सुख।
यही तो सौभाग्य मेरा, यही मेरा परम सुख॥
चाहती हूँ मैं नहीं उनसे निजेन्द्रिय-सुख कभी।
इसी से सुखदायिनी है हरकते उनकी सभी॥
उनकी अपनी चीज पर उनका सदा अधिकार है।
मारें, ठुकरायें, सतायें, चूकि वे भरतार है॥
अपने मन से बर्तते, कर भोग से वंचित मुझे।
यही तो आत्मीयता है, इसी का गौरव मुझे॥

दाता अपने सद्‌गुरु-रूपी पति को मरती में मरत है। वे उनसे सच्चे हृदय से प्रेम करते है किन्तु निःस्वार्थ भाव से। किसी भी रूप में प्रतिफल की इच्छा नहीं करते है। दाता अच्छा करें या बुरा, वे सभी को अच्छा कर मानते है। उनके मुह से सदा यही सुनने को मिला है "दाता ने अच्छा किया।" मालिक के शाप की वे कल्पना भी नहीं करते है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है –

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ।।

ऐसा भक्त कभी दुःखी नहीं रहता । वह तो अपने प्रियतम के हृदय का अधिकारी होता है । भगवान तो उसे लोभी के धन की भाँति सदा अपने हृदय में ही बसाते हैं ।

हरदयालसिंह, सन् १९५३ मे जब कि उसने आठ वर्ष की आयु भी पार नही की थी, रायपुर विद्यालय मे कक्षा पाँचवीं मे पढ़ता था । वह प्रतिभासम्पन्न होनहार बालक था अतः सभी का प्यारा था । रायपुर मे उस समय मैं विद्यालय के प्रधान अध्यापक के रूप में कार्य करता था और वह मेरे ही संरक्षण मे रह रहा था । घर का व विद्यालय का वातावरण भी बड़ा सरस व सुन्दर था । ऐसे सुन्दर वातावरण मे एक दिन अचानक सूचना मिली कि वह न तो विद्यालय में है और न घर मे है । पहले तो सोचा कि वह खेलने गया होगा किन्तु जब वह नही लौटा तो भय पैदा हुआ । एक छात्र को नान्दशा भेजा गया तो पता चला कि वह वहाँ भी नहीं पहुँचा है । उन दिनो रायपुर मे होने वाली गो-हत्या को लेकर हिन्दू-मुस्लिम विवाद चल रहा था । दाता गो-रक्षक होने से गो-हत्या का विरोध कर रहे थे अतः शंका हुई कि कही गो-हत्या करने वालो के हाथ तो नही आ गया है । रात्रि के नौ बजे तक वह नही आया तो मै स्वयं नान्दशा पहुँचा और दाता से निवेदन किया, "भगवन ! आज प्रातः से ही हरदयाल गायब है । घर पर ऐसी कोई बात हुई नहीं । वह कहाँ चला गया कुछ पता नहीं । गो-हत्यारो ने तो कही उसे नही पकड़ लिया है । आसपास सब जगह तलाश कर ली है, कहीं पता नही चला । अब क्या करें ? कुछ सूझता नही ।"

दाता ने उत्तर दिया, "क्यो भटकते हो । दाता जो कुछ करता है अच्छा ही करता है । दाता की जो मरजी होगी वही होगा । यदि दाता को उसको जिन्दा रखना होगा तो वह आ जावेगा । यदि उसे मारना ही होगा तो फिर उसको कोन बचा सकता है ? क्या तुम बचा सकते हो ? व्यर्थ क्यो दुःखी होते हो । जाओ ! और सो जाओ ।"

हम लोग लौट पड़े । इस सूचना से दाता पर कोई प्रभाव नही हुआ । न उन्हे चिन्ता हुई और न दुःख । हम लोगो को आश्चर्य अवश्य हुआ किन्तु तब तक दाता के व्यवहार एवं स्वभाव को काफी हद तक जान चुके थे । अन्य पिता होता तो अपने इकलौते पुत्र के गायब होने पर चिन्तित ही नहीं होता वरन पागल तक हो जाता । ऐसी परिस्थिति मे कई के हृदय रुक जाते है । किन्तु दाता तो दाता है । वहाँ एक क्या हजारो पुत्र भी खो जाँय तो भी कोई फर्क नही पड़ता है । वापिस लौट तो गये किन्तु चैन कहाँ ? हमने विद्यालय के वरिष्ठ छात्रो एवं अध्यापको को चारो ओर उसे तलाश करने को भेजा । रायपुर के बीस मील के क्षेत्र में आने वाले कुएँ, वापिकाएँ, झाड़ियो, घरों आदि प्रत्येक स्थान को खोज मारा

किन्तु सब व्यथ । दूसरे दिन शाम को उडती हुई सूचना मिली कि उसे आसीन्द की ओर जाते हुए देखा गया है । कई व्यक्तियों को उस ओर भेजा गया । '

हरदयाल के गुम हो जाने की सूचना चारों ओर फैल गई थी । दूसरे दिन नान्दशा के प्रतिष्ठित व्यक्ति श्री भूरालाल जी कोठारी को भी यह सूचना मिली । वे कुछ व्यक्तियो सहित सवेदना दिखाने दाता के पास पहुँचे । हर-निवास के बाहर आने पर देखा कि दाता छत पर है और बासुरी बजा रहे है । सभी आश्चय चकित रह गये । वे पास जाकर चिन्ता प्रकट करने लगे, इस पर दाता बोले "हरदयाल कहीं चला गया तो चला गया । दाता को उसे जिन्दा रखना होगा तो आ जावेगा । यदि उसको लेना होगा तो ले लेगा । दाता के काम में हम दखल देने वाले कौन होते हैं ?" कैसे उच्च और आदश विचार थे दाता के । भूरालाल जी इस तरह के विचार सुनकर स्तब्ध हो गये । कुछ समय इधर उधर की बातें कर वे घर चले गये ।

हरदयाल छोटा व अबोध बालक था । उसका खो जाना चिन्ताजनक बात ही थी । बडा होता तो यह भी सन्तोष किया जा सकता था कि वह समझदार है फिर कर लौट आवेगा । छोटे बालक के खोने पर हर माँ-बाप का चिन्तित होना स्वाभाविक है । दाता ने मातेश्वरी जी को भी यह कह दिया कि चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है । हरदयाल उनका नहीं है । वह जिसका है वह स्वय उसकी चिन्ता कर लेगा । विचित्र विमोह था ।

हम लोगो को चैन कहा । खोज जारी थी । तीसरे दिन रात्रि के लगभग दस बजे तीन व्यक्ति साईकिलो पर आसीन्द की ओर जा रहे थे । माग के एक ओर एक कुआ था । अनायास ही उनकी दृष्टि कुएँ पर गइ । उन्हें कुएँ की मुण्डेर पर किसी के होने का अदेशा हुआ । एक व्यक्ति ने टोच की रोशनी उस ओर फेंकी । कु हरदयालसिंह उसी मुण्डेर की ओट मे छिपा हुआ बैठा था । उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा । उन्होंने उसे साइकिल पर बिठाया और रायपुर चले आये ।

हरदयाल के मिलने से सब की जान में जान आयी । चारो ओर प्रसन्नता की लहर दौड पडी । अगले दिन प्रात ही उसे लेकर हर-निवास (नान्दशा) पहुँचे । दाता ने हरदयालसिंह को पुचकार कर पूछा, ' तुम कहां जा रहे थे ।" हरदयाल का उत्तर था 'कार्तिक पूर्णिमा पर पुष्कर में मुझको यह बताया कि नाग पहाड में *बहुत से सत तपस्या कर रहे है । पुस्तक में मैंने पढ़ा था कि ध्रुव छोटी उम्र में* तपस्या करने जगल में चला गया था । वह जगली पशुओ से भी नहीं डरा । मैंने भी सोचा कि मैं ध्रुव से कौनसा कम हूँ । मैं भी तपस्या करने नाग पहाड में जाऊँगा, अत मैं चल दिया । चुपचाप इसलिए चल दिया कि पता चलने पर लोग जाने नहीं देंगे । एक दिन करेडा रुका । दूसरे दिन एक कुए पर ठहरा । तीसरे

दिन इन्होने पकड़ ही लिया। करेड़ा मे भोजन किया था। आगे भूख नही लगी।" उसकी यह बात सुनकर सभी को आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता हुई। अन्ततोगत्वा सभी ने यही सोचा, जैसा पिता वैसा पुत्र।"

दाता ने बताया कि अभी उसे पढ़कर योग्य बनना है। उसे जंगल मे जाने की आवश्यकता नही है। हरदयाल के लौटने पर दाता को किसी प्रकार की प्रसन्नता नही हुई। न उसके गायब होने पर दुःख और न मिलने पर प्रसन्नता। यह उनकी निःस्पृहता का उदाहरण नही तो और क्या है!

दाता की मझली लड़की कैलास कुंअर का विवाह दहलोद निवासी कुं. वीरेन्द्र सिह जी के साथ हुआ था। कुं. वीरेन्द्रसिह जी सुन्दर, सच्चरित्र, होनहार, सत्यवादी, निरहंकारी एवं परसेवी व्यक्ति थे। उन्हे केन्सर का रोग हो गया। उपचार कराने पर भी कोई लाभ नही हुआ और अन्त मे इसी रोग ने उनको काल का ग्रास बना लिया। होनहार और योग्य व्यक्ति चल बसा। जवान लड़की विधवा हो गई। छोटे छोटे बच्चे पिता की छत्रछाया से वंचित हो गये। किसी पिता के लिए अपनी लड़की का विधवा होने का दुःख साधारण नही है किन्तु दाता के लिए इस दुःख का कोई मूल्य नही था। उन्होने हंसते हंसते इस दुःख को यह कह कर सह लिया, "दाता जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। उसकी वस्तु उसने ले ली, हम क्यो चिन्तित हो? हम चिन्तित होने वाले होते ही कौन है?"

इसी तरह कुं. हरदयालसिह का छोटा बच्चा देह छोड़ गया। कुं. हरदयाल सिह जी और उनकी पत्नी रोने लगी तो दाता ने उन्हे बुला कर साफ कह दिया, "आँसू बहाने की आवश्यकता नही। क्या बच्चा तुम्हारा है जो रो रहे हो? खबरदार! दाता के काम मे किसी प्रकार की दखल दी तो! दाता जो भी करता है उसी मे प्रसन्न रहना सीखो!" इस तरह अनेक उदाहरण हमे उनके जीवन मे देखने को मिले जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे मोह से कितने दूर रहे है।

निरभिमानता

दाता मे गर्व और अभिमान तो नाम मात्र को भी नही है। मैं क्षत्रिय हूँ, मै बड़ा हूँ, मेरी प्रतिष्ठा अत्यधिक है, मेरे पास कई व्यक्ति आते है आदि बातो का अभिमान उनको स्वप्न मे भी कभी नही हुआ होगा। लोग उनको दण्डवत प्रणाम करते है, किन्तु इनके मन मे लेश मात्र भी अभिमान नहीं। वे सदैव अपने को दाता का 'कूकर' कहते है। वे कहते है, "मै तो दाता की रजानुरज हूँ। दाता की जूती के बराबर भी नही।" वे सभी-प्राणियो मे दाता के स्वरूप के दर्शन करते है। अतः सभी को अपने से बड़ा मानते है। कोई उन्हे प्रणाम करता है तो वे भी उसे झुक कर बड़ी नम्रता के साथ नमस्कार करते है। उनके रोम रोम मे यह भावना भरी है कि जो कुछ करता है 'दाता' ही करता है। वही कर्ता-धर्ता है। वे अपने आप को दाता की कठपुतली मात्र मानते है। वे कहते है, "मारोराम तो दाता का भोपू है। वह जब चाहता है तब इसका प्रयोग कर लेता है। माकाराम

कुछ भी नही जानता है। जाननेवाला और करनेवाला तो मेरा दाता है।' मैं नाम की कोइ वस्तु उनमे है ही नहीं फिर अभिमान करे कौन ?

नान्दशा में एक हरिजन रहता था। ठाकुर के बहकावे में आकर उसने दाता के घर का बुहारा करना, सफाइ करना आदि काम छोड दिया। दाता को समाज से बाहर समझकर उनसे बोलना तक बन्द कर दिया। ऐसी अवस्था में वह बीमार हो गया। घर में सेवा करने वाला कोई नहीं था। पास पडोस के व्यक्ति हरिजन होने से उसे हीन समझ घृणा करते थे। वह अत्यधिक दु:खी था। दाता को जब मालूम पडा तो वे तत्काल उसके घर पर जा पहुँचे। उन्होने उसकी सेवा की। वे बोले, दादा, तुम चिन्ता मत करो जल्दी ही अच्छे हो जाओगे। माकाराम के पास खबर भेज देते तो माकाराम आ जाता। खैर अभी कुछ नहीं बिगडा है।" उन्होने उस गरीब के उपचार की एव सेवा की व्यवस्था कर दी। उन्हें तनिक भी अहंकार नहीं आया कि मैं ठाकुर हूँ और वह हरिजन है, नीच जाति का है या घृणित है।

लोग इन्हें आमंत्रित कर अपने गांवो में ले जाते है। उनको बडे सम्मान के साथ कारो या जीपों में बिठाकर ले जाते हैं। वहाँ भी बडा सम्मान करते है। गरीब भक्त भी उन्हें आमंत्रित करते हैं। वे उनके यहाँ भी जाते हैं। गरीबो के पास कार या जीप कहा। उनके यहा वे पैदल ही चले जाते है। यह अभिमान तनिक भी नहीं कि पैदल कैसे जाऊं। न सम्मान मे अभिमान है और न असम्मान की चिन्ता। भाव हो उनके यह है जिसमें हे रजा तैरी, उसमें है खुशी मेरी। फिर अहंकार के भावों का उदय ही कहाँ। उनका तो अन्य लोगो से भी यही कहना होता है 'अहंकार से सदैव बचकर रहो। मैं चौडा बाजार सकरा' इस प्रकार के भाव मन में कभी न आने दो। यह अहंकार ही है जो मनुष्य को भ्रमित करता है। अहंकार के वशीभूत हुआ प्राणी अपने आप को नहीं पहचान पाता। जब वह अपने आप को ही नहीं पहिचान पाता तो परमात्मा को पहिचान सकना उसके लिए बहुत ही कठिन है। अहंकार तो ऐसा कीडा है जो अन्दर ही अन्दर मनुष्य के जीवन को खोखला बना देता है। उससे तो जीवन ही नष्ट हो जाता है। इसीलिए तो महान पुरुष सदैव अभिमान से बचने का उपदेश देते है। अहंकार एक ऐसा विकार है जो अन्य विकार जैसे काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकारों को अपने साथ ले आता है। वह तो काम क्रोध, मद, लोभ आदि विकारों का सहोदर है। जहाँ एक भाई का राज्य होगा वहाँ अन्य आवेंगे ही। अतः यदि दाता को चाहते हो तो अहंकार रहित हो जाओ।" दाता की कथनी और करनी में तनिक भी अन्तर नही रहता। जैसा वे सोचते हैं वैसा ही करते है। उनको अहंकार है तो केवल एक बात का जिसके लिए वे सदा कहा करते हैं, मेरे दाता जैसा पतितपावन दूसरा कोई नहीं और मेरे जैसा पतित कोई अन्य नही।' कैसे उच्च भाव हैं दाता के। ऐसे भावो वाले व्यक्ति को अभिमान कैसे छू सकता है ?

इस संसार मे जानने योग्य वस्तु ही एकमात्र 'दाता' है। उसको मनुष्य ज्ञान से ही पहचान सकता है। 'दाता' को शास्त्रो ने निराकार, निराधार, सर्वाधार आदि अनेक नामो से सम्बोधित किया है। उसकी अनुभूति ज्ञानी भक्त लोगो को ज्ञान के द्वारा ही होती है। दाता कहा करते है ;–

"अहं अग्नि निशिदिन जरे, गुरु से चाहे मान।
उनको यम न्योता दिये, होहु हमार महमान ।।"

अहंरूपी अग्नि निरंतर जलती रहती है। अग्नि का काम ही जलाने का है। वह किसको जलाती है ? अहं अग्नि ज्ञान को जलाकर राख कर देती है। ज्ञान के नष्ट हो जाने पर प्राणी में जड़ता मात्र शेष रह जाती है जो मनुष्य को पशु से भी हीन बना देती है। अतः अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है जिसको दाता अच्छी प्रकार से पहचानते है।

दम्भ शून्यता

अभिमान या अहकार न होने से दाता के मन मे दम्भ भी बिलकुल नहीं है। दाम्भिक बनकर अपने बड़प्पन का ही तो प्रदर्शन होता है। दाता बड़प्पन, कीर्ति आदि के प्रति बिलकुल उदासीन है। प्रयाग कुंभ के अवसर पर ब्रह्मचारी जी महाराज श्री प्रभुदत्त जी ने दाता के बारे में वहाँ के दैनिक पत्र में कुछ छपवा दिया था। दाता को जब मालूम हुआ तो उन्हे बड़ा ही अटपटा लगा। उन्होने ब्रह्मचारी जी को हाथ जोड़कर निवेदन किया, "आपने यह कैसा अनर्थ कर दिया ? बडे लोगो के बीच माकाराम की क्या हस्ती है। माकोराम तो 'लॉपलो' (छोटा बेकार की घास) है जिसको चाहे जो कुचल देता है। आपने गजब कर दिया।" ये है दाता के उद्‌गार स्वयं के लिए। मनुष्य की उन्नति के लिए कीर्ति को तो वे विषकीट की संज्ञा देते है। उनका मानना है कि फसल की रक्षा के लिए बाड़ लगाना श्रेयस्कर है। यदि उसे खुला छोड़ देते है तो चारो ओर से फसल में पशु लग जाते है। फसल की रक्षा करनी हो तो कांटे की बाड़ लगा दो। यश-कीर्ति एक प्रकार का मीठा विष है। मनुष्य जहां सब जीवो की अपेक्षा विलक्षण शक्ति सम्पन्न है वहीं मान-बड़ाई की इच्छा सबसे बड़ी दुर्बलता है। यह एक ऐसा मीठा विष है जिसको पीने के लिए बडे-बडे त्यागी कहे जानेवाले और अपने को महान् त्यागी समझने वाले व्यक्ति भी लालायित रहते है। इसको वे लोग दोष नही मानते है क्योकि इतिहास में अपना नाम अमर रखने को कामना करते है। यह मीठा विष है, जो अत्यन्त मधुर प्रतीत होता है; परन्तु परिणाम में साधना-जीवन की समाप्ति का कारण बन जाता है। मान-बड़ाई किस की ? शरीर की और नाम की ! जो शरीर और नाम को अपना स्वरूप मानता है और उनकी पूजा-प्रतिष्ठा, उनका नाम यश चाहता है, वह नाम-रूप में अहंभाव रखने वाला ज्ञानी है या अज्ञानी ! स्पष्ट है शरीर आत्मा नहीं है और 'नाम' तो प्रत्यक्ष कल्पित है।

जब वह माता के गर्भ में था तब तो यह भी पता नहीं था कि उसका लिंग क्या है ? गर्भ के बाहर आने पर ही तो नामकरण होता है। नाम रखने के बाद भी यह नाम अच्छा नहीं दूसरा बदला गया तीसरा बदला गया, न मालूम कितनी बार परिवर्तन हुआ। ऐसे शरीर और नाम में अहकर उसको आत्मा मानकर उसकी पूजा-प्रतिष्ठा की कामना करना अज्ञान को परिपुष्ट करना मात्र है। किन्तु किया क्या जाय ? आज तो कुए में ही भाँग पड़ी है। बड़े बड़े त्यागी महात्मा अपने जीवनकाल में ही अपनी पाषाण या धातु की मूर्ति का निर्माण करवा कर छायाचित्रों को देखकर उसकी पूजा करवाते हैं उनके नाम का जप-कीर्तन करवाते हैं।

दाता शरीर को अपना शरीर नहीं मानते हैं। वे इसे पचतत्व से निर्मित परमात्मा की इच्छा का स्वरूप मानते हैं और नाम को तो वे शरीर का नाम मानते ही नहीं है। नाम तो परमात्मा का है ऐसी धारणा तो भारत के अज्ञानी से अज्ञानी मनुष्य में भी देखी गई है। 'आप का क्या नाम है ? नाम तो परमात्मा के हैं इस सेवक को तो रामलाल कहते हैं' या श्यामलाल, जो भी हो। रामलाल श्यामलाल आदि सब नाम उस परमात्मा के ही नाम हैं, ऐसी सामान्य धारणा है। दाता का भी यही मानना है कि नाम तो केवल मात्र दाता का ही नाम है। दाता के प्रवचन आदि लिखने के लिए वर्षों से उनके भक्त सेवक प्रयास करते रहे हैं किन्तु दाता ने सदैव मना किया है। जब भक्तजनों ने बहुत हठ किया और लोक कल्याण की भावना रखते हुए जब बहुत ही आग्रह किया तो दाता ने अनिच्छा से लिखने की आज्ञा दी। लिख देने के बाद भी उनकी भावना यही रहती है कि इस लेखन को रख दिया जाय। किसी को नहीं दिया जाय। कभी कभी तो झुझला कर कह देते हैं कि यह तुम लोगों ने कैसा अनर्थ कर डाला। मेरे दाता के प्रति अपनाए गये मार्ग में तुम लोगों ने एक दरार, एक जबरदस्त रुकावट पैदा कर दी। मान-प्रतिष्ठा के नाम से ही उन्हें भयकर चिढ है। कभी कभी तो दाता मान और प्रतिष्ठा को 'विष्ठा' की सज्ञा तक दे देते हैं।

दाता कहते हैं, 'आप लोग मुझको न मालूम क्या मानते हो। आप अपने विचारों के आधार पर मेरा मूल्याकन करते हो। आप भले हो, इसलिए तो आपको मैं भला दिखाई देता हूँ। मेरा यथार्थ परिचय तो मुझको है। जगत में करोड़ो मनुष्य हैं उनमें से मैं एक हूँ। जैसे दूसरों में कमजोरियां है उसी प्रकार मैं भी दुर्बलताओं की खान हूँ। मैं उनमें से किसी भी बात में बढ़ कर नहीं हूँ। अत मेरे में कोई महत्व नहीं। जो कुछ महत्व है वह मेरे दाता का ही है।' महान पुरुष मान और अपमान को सम मानते हैं। कहा भी है —

'मानापमानयोस्तुल्य तथा तुल्यनिन्दास्तुति ।' —श्रीमदभगवत गीता

उन्होंने अपना दोष कभी भी छिपाकर नहीं रखा और न उन्होंने कभी अपने में न होनेवाले गुणों का अपने में होना दिखाकर ही किसी को भ्रम में डाला।

उनमे किसी भी बात को छिपाने का स्वभाव नही है और न उनमें छलछिद्र ही है। मन मे उत्पन्न हुए भाव को दाता ने कभी भी छिपाकर नही रखा और न उन्होने किसी भी भाव का स्वांग करने का जान-बूझकर प्रयत्न ही किया। उनका बोलना स्पष्ट तथा आचरण सरलता से परिपूर्ण रहता है। सर्व समर्थ होते हुए भी वे पूर्णतया असमर्थ है। वे दम्भ से पूर्णतया रहित है।

परदु:खकातरता

दाता परदुःखकातर है। किसी के तनिक से दुःख से भी वे द्रवीभूत हो जाते है। उन्होने कभी भी अपनी कृति या वाणी द्वारा किसी को दुःख नही पहुँचाया और किसी का अनिष्ट कभी अपने मन में नहीं सोचा। उनका सदा यही प्रयत्न रहता है कि किसी को कोई कष्ट उनके द्वारा नहीं पहुँचे। अनेक व्यक्ति उनके पास अपने दुःख की समस्या लेकर आते हैं। वे यथासंभव उनकी समस्याओ के सुलझाने मे सहयोग देते हैं। कभी कभी तो लोग इतनी समस्याएं ला देते हैं कि वे परेशान से हो जाते है और झुंझलाहट में कह देते है, "मै क्या जानू ? दाता जाने। तुम जाओ कहीं अन्यत्र प्रयास करो।" किन्तु जब कोई व्यक्ति निराश होकर उनके द्वार से लौटता है तो वे द्रवीभूत हो जाते हैं और जो कोई पास होता है उसे पुकार कर कहते है, "अरे! वह दुःखी है रे। उसे वापिस बुला लो।" दूसरो के दुःखो के लिए कैसा कोमल हृदय है उनका। आये दिन देखने को मिलता है कि दूसरो के दुःख को यदि वे दूर नहीं करते हे तो स्वयं पर ओढ लेते हैं। कैलास यात्रा के समय सोहनलाल जी ओझा को मार्ग मे ज्वर हो आया। वे कराहने लगे। दाता को उनके कष्ट को देखकर दया आ गई। उन्होने तत्काल उनके ज्वर को अपने शरीर पर ले लिया। सोहन जी स्वस्थ हो गये और दाता बीमार हो गये।

दातानिवास के पास ही एक माधवसिंह नामक भक्त रहता है। उसको पक्षाघात हो गया। दाता के पास लाया गया। उसके घर वालो के रोने से वे द्रवीभूत हो गये। दाता ने उसकी बीमारी अपने ऊपर ले ली। देखते देखते उसकी बीमारी ठीक हो गई और इनको पक्षाघात हो गया। जिस समय यह करिश्मा हुआ मैं भी वहीं था। हम घबरा गये। दाता के मना करने के बावजूद भी हम लोग उन्हें जयपुर ले गये। वापिस स्वस्थ होने में दो-तीन दिन लगे। ऐसी है उनकी आदत। वे सदैव दूसरे के दुःखो को दूर करने में ही लगे रहते है।

दाता सदैव ही 'दाता' के चिन्तन में मस्त रहते है। जब वे एकान्त में होते है या सो रहे होते है, तब उनकी पूर्ण वर्जना है कि उन्हें आवाज न दी जाय या न जगाया ही जाए। घर के किसी प्राणी का यहां तक की मातेश्वरी जी का भी साहस नही है कि उनकी इस आज्ञा की अवहेलना की जाय। कैसा भी जरूरी कार्य क्यो न हो या कितना ही महत्व पूर्ण व्यक्ति क्यो न मिलना चाहता हो किसी ने आज तक उन्हें नहीं जगाया। किन्तु दो बातो के लिये स्वयं ने कह

रखा है कि उन्हें तत्काल आवाज देकर बुला लिया जाय। एक तो सप दशन में व दूसरा प्रसव पीडा के समय। दोनों प्रकार के बीमारों के लिए खुला खाता है। चाहे भोजन कर रहे हो चाहे आराम कर रहे हों चाहे ध्यान में हों, किसी भी स्थिति में हो यदि दोनों बीमारियों में से किसी भी बीमारी का बीमार आवे तो वे तत्काल सब काम छोडकर बाहर आजाते है और तत्काल ही ऐसे बीमार की बीमारी दूर कर देते है। जिनकी मरणासन्न स्थिति हो जाती है वे भी बात की बात में स्वस्थ हो जाते है।

अन्य कष्टों में भी उनका हृदय पसीजता ही है। इनकी परदु खकातरता का एक उदाहरण आपके सन्मुख प्रस्तुत है। अरणिया में प्रताप जी नामका एक भक्त रहता है। उसके एक लडकी है जो बडी होगई किन्तु उसकी सगाई कहीं नहीं हो सकी। लडकी की जन्म कुण्डली में ग्रह-योग ठाक नही था। जन्म-पत्री में ऐसा योग था कि फेरे के समय आग लगेगी और उससे जन-धन की हानि होगी। ऐसे घातक योग के कारण कहीं भी उस बालिका का सम्बन्ध नहीं हो सका। प्रतापजी स्वय ही डर गये कि ऐसे योग वाली लडकी किसको दी जाय? धोखा देना अच्छा नहीं है। वे सत्यनिष्ट और इमानदार व्यक्ति थे। अत अन्दर ही अन्दर दु खी थे। अत में दु खी होकर उसने दाता से पुकार (प्रार्थना) की। पहले तो दाता ने कुछ ध्यान नहीं दिया किन्तु उसके बार बार आग्रह करने व रोने पर उन्हें दया आ गई। दाता ने एक दिन उसे कहा, "दाता का नाम लेकर सगाई कर दो। विवाह भी जल्दी ही रचा दो। विवाह में कोई दुघटना घटित होने लगे तो दाता का नाम ले लेना। दाता सब मगल करेंगे। उसने सगाई की कोशिश की तो दाता की दया से सगाई हो गई। लग्न भेज दिये गये। बरात आ गई। लग्न का समय हुआ। दूल्हा आगन में आ गया। एक ओर टॉप के नीचे भोजन बन रहा था अचानक टॉप में चिनगारी जा लगी और एक घास का पूला जलने लगा। सब भयभीत हो गये। प्रताप को दाता की कही हुई बात याद हो आयी। उसने दाता का स्मरण किया। देखते ही देखते तेज हवा का एक झोंका आया और वह जलता हुआ पूला उडकर बहुत दूर खुले खाली स्थान में जा गिरा। सभी आश्चयचकित हो देखते रह गये। अग्निकाण्ड ठण्डा पडा। इसके बाद किसी प्रकार का कोई विघ्न नहीं हुआ। विवाह शाति से हो गया। आज भी वह दम्पति अपने बाल-बच्चों सहित आनन्द से जीवन-बसर कर रहे हैं। ऐसी है दाता की परदु खकातरता।

दाता दिखने में कठोर अवश्य दिखाई देते है किन्तु वास्तव में है नहीं। वे बादाम की तरह से है। बाहर से बादाम का छिलका कठोर होता है किन्तु अन्दर की गिरी कोमल होती है, यही गति उनकी है। एकाएक कोइ व्यक्ति अपने किसी स्वार्थ को लेकर वहा जाता है तो वे चुप होकर बैठ जाते हे। यदि वह चुप होकर बैठता हे व कुछ समय बाद लौट आता है तो उस की इच्छा। ऐसे व्यक्ति कह

सकते है कि दाता ने उनसे बात भी नही की। वे अव्यवहारिक एवं कठोर है। किन्तु जो उनके सम्पर्क मे आ जाता है, और उनके स्वभाव से परिचित हो जाता है, उनके लिए वे मधु से भी मीठे लगने लग जाते है।

पहनावा उनका साधारण है। एक धोती मात्र। अपना काम स्वयं करते है। अपना थैला कही जाते वक्त साथ रखते है जिसमे उनका आवश्यक सामान जैसे लोटा, धोती, अंगोछा, चाकू आदि होता है। शायद यह इसीलिए है कि वे किसी को भी अपने लिए कष्ट नही देना चाहते। किसी व्यक्ति को अपने साथ ले जाते है तो उसकी सुख सुविधा का पूरा ध्यान रखते है।

गाँव के कई स्वार्थी लोगो ने इनको सताने की कोशिश की किन्तु कभी भी दाता ने उनका अशुभ चिन्तन नही किया। वे लोग जब भी मिलते उनसे मुस्कराते हुए ही बोलते। यही नही, यदा कदा उन्हे बुलाकर अपने साथ अन्यत्र ले जाते, और उनका अच्छा आदर सत्कार कराते। उनके खाने पीने की अच्छी व्यवस्था करवाते तथा उन्हे इस पकार रखते जैसे वे बहुत बडे आदमी हो।

सरलता

दाता का स्वभाव बड़ा ही सरल है। दाँव-पेच उनके समझ मे आता नही। वे कहते है, "दाता को प्राप्त करने के लिए स्वभाव का सरल होना जरूरी है। जैसे नल सीधा होता है तो पानी सरलता से और सुगमता से बहता है और यदि टेढ़ा होता है तो पानी की गति मे अन्तर आ जाता है। इसी तरह सरल स्वभाव वाले व्यक्ति के हृदयसागर मे भक्ति की लहरें सरलता से गमन करती है। टेढे स्वभाव वाले व्यक्ति भक्ति से कोसो दूर रहते है। जो मन, वचन और कर्म से शुद्ध होता है उसपर प्रभु की कृपा शीघ्र ही होती है। छलछिद्र प्रभु को अच्छा नही लगता है।"

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥ — तुलसी

दाता स्वत: किसी को कुछ नही कहते। जो व्यक्ति अपने आप जो भी सुझाव दे देता है उसी के अनुकूल अपनी इच्छा जाहिर कर देते है। एक बार शिवशंकर जी दाता के दर्शनार्थ नान्दशा पहुँचे। उन दिनो मे दाता को परेशान करने हेतु ठाकुर साहब ने मुकदमे लगा रखे थे और दाता के विरुद्ध षड्यन्त्री वातावरण बना हुआ था। शिवशंकर जी ने दाता से इस सम्बन्ध मे बात चीत की।

शिवशंकरजी– 'भगवन ! ये लोग तो बड़ी बदमाशी कर रहे है।'

दाता– "कर तो रहे है किन्तु अपना क्या कर सकते है। अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार ही तो काम करते है।"

शिवशंकरजी– "अन्नदाता ! इनकी यह तो ज्यादती है। सहन करना कहाँ तक उचित होगा। इनको इनकी शैतानी की सजा मिलनी ही चाहिये।"

दाता– 'इनको सजा कैसे दिलाई जा सकती है। सजा तो इन्हें मिलनी ही चाहिये।'

शिवशंकरजी– 'हुक्म हो तो प्रयत्न किया जाय।'

दाता– 'हाँ! हाँ! जरूर करो। करनी चाहिये। क्या करोगे?'

शिवशंकरजी– 'जयपुर जाकर इसकी कार्यवाही करनी चाहिये। सरकार तो सुनती है। वह अवश्य न्याय करेगी।

दाता– "तुम जयपुर जाओ और कार्यवाही करो। जयपुर वालों से मिलकर कुछ करो।

शिवशंकर जी कहने को तो कह गये कि जयपुर जाकर कार्यवाही की जाय किन्तु जब स्वयं के जाने की आज्ञा मिली तो असमंजस में पड़ गये। किन्तु दाता की आज्ञा जो मिल गई थी अतः जाना तो था ही किन्तु यह निश्चय नहीं कर सके कि वहाँ जाकर करेंगे क्या। कार्यवाही जो कुछ होती है वह तो स्थानीय स्तर पर होती है। उनको असमंजस में देखकर दाता को उनपर तरस आया होगा अतः रवाना होने के समय कह दिया तुम जयपुर जा रहे हो? अवश्य जाओ! लेकिन हाँ! मास्टर साहब से माडल मिल के जाना। वे शीघ्र मेरे पास आये और कहने लगे।

शिवशंकरजी– 'दाता दयाल का हुक्म हुआ है, जयपुर जाने का।

मास्टरजी– "हुक्म हुआ है तो जाना ही है। किन्तु काम क्या है?'

शिवशंकरजी– ठाकुर के विरुद्ध कार्यवाही करनी है।

मास्टरजी– 'जयपुर क्या कार्यवाही होगी। कार्यवाही तो गंगापुर चल रही है। वहाँ जाकर क्या काम करोगे?'

शिवशंकरजी– "दाता का हुक्म जो हुआ है।"

मास्टरजी– "पहले यह बताओ कि यह बात चली कैसे?' दाता ने यह बात चलाई थी या यह सुझाव आपका था।"

शिवशंकरजी– 'सुझाव तो मैंने ही दिया था।

मास्टरजी– यहीं तो आपने गलती की। बिना मांगे सुझाव देना उचित नहीं है। दाता के सामने तो चुप ही रहना चाहिये। कहें सो काम कर देना चाहिये। जब आप रवाना हुए, तब तो उन्होंने कुछ नहीं कहा।

शिवशंकरजी– आप से मिलने को कहा।'

मास्टरजी– 'तो फिर आप आसीन्द लौट जाओ। भविष्य में इस बात का ध्यान रखना कि बिना पूछे अपनी ओर से कोई राय नहीं देनी है।" वे लौट गये। दाता ने भविष्य में कभी नहीं पूछा कि वे जयपुर गये, या नहीं व गये तो क्या काम कर आए। उनकी सरलता की तो हद ही है। एक व्यक्ति उनके सन्मुख पहुँचता है और कहता है कि अमुक काम अच्छा है कर देना चाहिए तो वहाँ दाता की स्वीकृति हो जाती है। कुछ समय बाद उसी काम के लिए अन्य व्यक्ति पहुँचकर कहता है कि अमुक काम अच्छा नहीं है

अतः नहीं किया जाना चाहिये तो वहाँ भी स्वीकृति मिल जाती है। जो जिस भाव से आता है उसी भाव से उत्तर मिल जाता है। दाता की ओर से कोई भाव व्यक्त नहीं होते। वहाँ तो एक ही शब्द है जिसका प्रयोग हर अर्थ में होता है। वह है "जैसी मोज।"

पवित्रता

दाता पवित्रात्मा है। वे सद्गुरु के चिन्तन मे निरन्तर लगे रहते है। एक पल भी उनका बिना सद्गुरु के चिन्तन के नही रहता है। ऐसी अवस्था मे उनके अपवित्र रहने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अपवित्र प्राणी तो वही है जिसका मन शुद्ध नहीं है। जो निरन्तर दूसरों का अशुभ चिन्तन करता है और कभी ईश्वर का चिन्तन नहीं करता, वह पापात्मा है। **Empty mind is devil's work shop.** खाली दिमाग शैतान का घर। जिसका दिमाग खाली रहता है उसे ही शैतानियाँ सूझती हैं। दाता का दिमाग तो खाली रहता ही नहीं।

दाता अच्छी तरह जानते हैं कि घर घर में ईश्वर का वास है। वे हर प्राणी मे ईश्वर अर्थात् अपने सद्गुरु दाता को देखते है। अतः मनुष्य मात्र ही नहीं प्राणी मात्र उनके अपने हैं। अतः बुरा सोचे तो किसका सोचे। उनका मन दाता-मय है और जब मन दातामय है तो तन भी दातामय है अतः मन के साथ ही साथ तन भी पवित्र है।

आपने देखा होगा कि दाता किसी को छूते भी नहीं। बिना कारण शरीर का स्पर्श भी दोषमय है। संसर्ग का प्रभाव पड़ता है। कहावत है कि धोला (श्वेत) बैल काले बैल के साथ बंधता है तो रंग नहीं आवेगा तो गुण तो अवश्य आवेगा ही। काजल की कोठरी में जानेवाले के कहीं न कहीं काजल की कालिमा तो लग ही जाती है अतः दाता तो स्पर्श मात्र को दोषमय मानते है। इस सम्बन्ध में दाता एक उदाहरण दिया करते हैं। एक पहुँचा हुआ सन्त किसी राजा के राज्य मे जा निकला। नदी के किनारे शहर के बाहर उसने अपनी धूनी रमा दी। उसकी ख्याति सुनकर राजा दर्शनों के लिए जा पहुँचा। उसके उपदेशों से प्रभावित होकर अपने राजमहल में उसे आमंत्रित कर बैठा। राजा ने सन्त का बड़ा स्वागत-सत्कार किया और अपने निज-भवन में उसे ठहराया। राजा किसी कामवश बाहर गये और कमरे में सन्त अकेला रह गया। एकाएक उसका मन विचलित हुआ। कमरे की खूंटी पर रानी का हार टिका हुआ था। उसने हार उठाया और अपनी झोली में डाल दिया। राजा के आने के बाद भोजन कर सन्त वापिस अपनी धूनी पर पहुँच गया। इधर अगले दिन रानी को हार की याद आयी। कमरे में जाने पर हार नहीं मिला। रानी ने अपनी दासियों को परेशान किया। उन्हें काफ़ी ताड़ना दी गई। उनके पास होता तो मिलता।

उधर सन्त का मन कुछ शान्त हुआ तो उसे अपनी भूल का अहसास हुआ। वह उल्टे पाँव राजमहलो में पहुँचा और हार राजा को देकर क्षमा याचना करने लगा। राजा-रानी ने देखा कि सन्त महान है। किसी दासी पर रहम कर उसका दोष अपने ऊपर ले रहा है अत वे कुछ नहीं बोले। अन्त में सन्त ने राजा को पूछा कि उसने अपने निज के कमरे में इन दिनों किसी को ठहराया तो नहीं। राजा ने बताया कि चन्द दिनो पूव कुछ नतकियां आयी थी। वे कुछ समय के लिए उसके कमरे में ठहरी थी। सन्त फौरन समझ गया कि मन के विकार का कारण वे अणु है जो नतकियों द्वारा उस कमरे के वातावरण में छूटे थे। उन्हीं अणुओं के प्रभाव में आनेपर ही मन में विकार पैदा हुआ है। एक साधारण सी कहानी है किन्तु है बडी महत्वपूण। कुछ ही समय तक कमरे के वातावरण में रहने से मन की पवित्रता भग हुई तो स्पश तो बडी बात है। इसी हेतु सन्त लोग जिन्हे आध्यात्म का ज्ञान हे किसी को स्पश नहीं करते है। यदि वे स्पश कर भी देते हैं तो जिसका स्पश करते है उसका काया पलट ही हो जाता है। रामकृष्ण परमहस ने विवेकानन्द का स्पर्श मात्र किया था। उसके क्षण मात्र के स्पश ने नरेन्द्र को स्वामी विवेकानन्द बना दिया।

जिस प्रकार वे स्पश नहीं करते है उसी प्रकार खान पान का भी वे पूरा ध्यान रखते है। यद्यपि वे सर्वसमथ है और किसी का प्रभाव उनपर पडना सभव नहीं किन्तु उन्हें मर्यादा का पालन तो करना ही है। वे पानी बहुत सोच समझ कर पीते हैं। कहीं इधर उधर का पानी नहीं पीते हैं। बहुधा कुएं से ताजा पानी निकलवा कर पीते हे। नल या किसी के घर का पानी नहीं पीते। भोजन में भी वे गुरु गोविन्दसिंह जी के सिद्धान्त का पालन करते है। गुरु नानक को एक सामन्त ने निमत्रण दिया जिसको उन्होने ठुकरा दिया और एक गरीब का निमत्रण स्वीकार कर लिया। सामन्त इसपर बडा नाराज हुआ। गुरु नानक ने दोनो का भोजन मगवा लिया। सामन्त व्यवित हलआ आदि कई प्रकार के व्यजन तैयार कर लाया। गरीब आदमी मोटे अनाज की सूखी रोटी ला पाया। दोनों को गुरु ने सामने बिठा दिया। उन्होंने एक हाथ में हलुआ पुडी और दूसरे में गरीब की लाई हुई सूखी रोटी ले ली और दोनो को दबाया। हलुआ पुडी में से खून व रोटी में से दूध टपक पडा। सब विचित्र दृष्टि से देखते रह गये। सामन्त लज्जित होकर घर लौटा। अब आप लोग भली प्रकार समझ गये होंगे कि किस तरह का भोजन मन की पवित्रता को प्रभावित करता है। इसीलिए दाता हर कहीं भोजन नहीं करते है।

दाता के दरबार में लोग कई प्रकार की वस्तुएं लाकर भेंट चढाते है। इनमे फल फूल, सब्जी आदि अधिक होती है। मिठाइयाँ भी आती हैं। हमने देखा फल पडे पडे सड जाते है और उन्हें फेंकना पडता है। इसी तरह मिठाई भी कभी कभी सड जाती है और उसे भी फिकवानी पडती है। मैं बहुधा जब इस प्रकार की

बात देखता तो मन ही मन दाता को कोसता रहता। मैं कहता, "ये आम पड़े पड़े सड़ गयें। ये सेब भी सड़ गई। मिठाई सूख गई। सब्जी सूख गई। दाता यदि इनका सेवन नहीं करते तो दूसरो को तो दे देवें। व्यर्थ सड़ाने से क्या फायदा। इस जमाने मे खाद्य पदार्थों का इतना दुरुपयोग। इन वस्तुओ के पडे रहने का राज कई दिनो बाद समझ मे आया। दाता किसी के मन को दुखाना पसन्द नही करते अतः वस्तुओ को स्वीकार तो कर लेते हैं किन्तु उन्ही वस्तुओ का प्रयोग करते है जो पवित्र है। अपवित्र वस्तुओ का सेवन वे कभी करते नही। कई बार उन्हे भूखे रहते देखा गया है किन्तु अपवित्र अन्न का सेवन करते हुए नही।

दाता के सामने जो भी भोजन आता है उसको वे पहले दाता को अर्पण करते है अर्थात् भोग लगाते है। जो वस्तुएं भोग में आती है उन्ही का वे सेवन करते है। जो वस्तु भोग मे नही आती उस वस्तु का वे सेवन नहीं करते, कितनी ही मधुर व स्वादिष्ट वस्तु भले ही वह हो। भोग मे वही वस्तु लायी जाती है जिसका प्रयोग भोग के पूर्व नही किया गया हो। आसन उनका साथ में रहता है। मृगचर्म पर वे बैठते है। यदि मृगचर्म साथ मे ले जाना भूल जाँय तो जमीन ही उनका आसन है। बिना स्नान किये वे भोजन करते ही नही। शरीर को शुद्ध रखने के लिए स्नान जरुरी है किन्तु सच्ची पवित्रता वे शरीर की पवित्रता न मानकर मन की पवित्रता मानते है। "मन चंगा तो कठोती मे गंगा।"

आसन पर बैठने के पूर्व वे दाता का नाम स्मरण कर संकेत द्वारा सद्गुरु के बैठने की भावना करते है उसके बाद ही आसन पर विराजते है। सोते समय भी इसी प्रकार की क्रिया की जाती है। किसी भी वस्तु का प्रयोग करना होता है तो पूर्व मे उस वस्तु को 'दाता' के अर्पण करने की भावना करते है तब ही उसका प्रयोग करते है। महापुरुष कहते है कि सभी वस्तुएं भगवान को अर्पण करके ही प्रयोग मे ली जानी चाहिये। ऐसा करने से उस वस्तु मे जो भी अशुद्धता या अपवित्रता है वह नष्ट हो जाती है।

दाता स्वयं एकाएक किसी को स्पर्श नही करते है और न किसी को अपना शरीर ही स्पर्श करने देते है। विशेष स्थिति मे ही कोई उनके शरीर का स्पर्श कर सकते है। उनके चरणो मे किसी को हाथ नही लगाने दिया जाता अर्थात् कोई उनका चरण स्पर्श नही कर पाता। दूर से ही लोग प्रणाम करते है। दाता का मन पवित्र है, तन पवित्र है और जीवन भी पवित्र है।

शान्त-चित्तता

दाता मे क्रोध की मात्रा देखी जाती है लेकिन क्षणिक। उन्हे क्रोध आता है किन्तु चन्द क्षणो के लिए ही। यह क्रोध सोद्देश्य होता है। जब कोई बारबार गलती करता है तब दाता रोष भरी मुद्रा बना लेते है अन्यथा दाता को किसी पर क्रोध करते हुए नही देखा गया है। विद्वान लोग कहा करते है कि 'सज्जन का

क्रोध पानी का दाग अर्थात् जिस प्रकार कपडे पर पानी के छींटे पड जाते है तो वे दाग के समान दिखाई देते है किन्तु कुछ ही समय में सूख जाने पर दाग दिखाई नहीं देता उसी प्रकार दाता का क्रोध दिखावे मात्र का ही है, अन्यथा वे हरदम शान्त और दाता की मस्ती में मस्त रहते है। सभी स्थानो में 'सद्गुरु दाता' व्याप्त है और जो कुछ होता हे वह उसकी इच्छा से ही होता है इस प्रकार की दृढ धारणा जहां हो गई वहां क्रोध कौन करे और किसपर करे। दाता सुख-दुःख में हर परिस्थिति में समरस रहते हैं। कैसी भी विकट परिस्थित क्यो न आवे उनकी समरसता में कोई फर्क नहीं आता।

अनेक लोग दाता के यहां अनेक भावों को लेकर आते है किन्तु दाता सबके साथ समान व्यवहार करते है। कोई उनकी अवज्ञा करता है या आज्ञा की अवहेलना करता है तो भी वे अपनी शान्ति को भग नहीं होने देते। वे क्षमाशील हैं। कैसा भी घोर अपराध करके क्यो न आवे यदि उसे सच्चा पश्चाताप है तो दाता उसे क्षमा कर देते हैं। उनका मानना है कि अच्छे बुरे कर्मो का फल देने वाला 'दाता' है उसे ही पुरस्कार या दण्ड देने का अधिकार है। जीव को क्या अधिकार है कि 'दाता' के कार्य को वह स्वय अपने हाथ में लेवे।

दुनिया दो मुखी है। कोई भी कार्य कितना ही उत्तम क्यो न हो उसके प्रशसक और निन्दक होगे ही। दाता की भी लोग प्रशसा भी करते है और निन्दा भी, किन्तु दाता पर न तो प्रशसा का ही कोई प्रभाव पडता है और न निन्दा का। वे तो किसी के किसी व्यवहार पर ध्यान ही नहीं देते। यदि भक्तलोग किसी अनुचित कार्य के करने में बारबार कहने पर भी नहीं मानते है तो वे उनकी उपेक्षा अवश्य कर देते हैं। ऐसे अबतक दो-तीन उदाहरण देखने को मिले हैं। ये व्यक्ति मान-प्रतिष्ठा के लोभ में दाता के नाम का प्रयोग कर अनुचित लाभ उठाने लगे और बारबार सावधान करने पर भी नहीं माने तभी उनके साथ ऐसा व्यवहार किया गया।

कैसी भी विषम स्थिति क्यों न आयी हो उन्हें कभी विचलित होते हुए किसी ने नहीं देखा। जब कत्ल का दोष लगाया गया या ठाकुर ने हमले के दोष में उन्हें गिरफ्तार कराया तब भी वे विचलित नहीं हुए। एक शान्तदर्शक की भांति शान्तचित्त से 'दाता' की लीला को देखते रहे। अपने कुटुम्बीजनों के निधन पर भी दाता को किसी ने विचलित होते नहीं देखा। प्रारंभिक जीवन में इन्हें अत्यधिक आर्थिक सकट का सामना करना पडा। यहां तक कि अर्थ के अभाव में इन्हें भूखा भी रहना पडा किन्तु 'दाता' की इच्छा समझ ऐसी स्थिति में भी वे प्रसन्नचित ही रहे। कहने का तात्पर्य है कि दाता 'जिसमें है रजा तेरी उसमें है खुशी मेरी' इस सिद्धान्त को अक्षरश मानते हुए चित की शान्ति को स्थिर रखते हैं। वास्तव में परम शान्ति तो दाता के चरणारविन्दों में ही है। जब विषय-जन्य सुखों की इच्छा को त्याग कर जीव 'दाता' का ही आश्रय लेगा, तभी उसे सच्ची शान्ति की प्राप्ति हो सकेगी।

त्यागशीलता

दाता गृहस्थी होते हुए भी वीतरागी है। माया-मोह से वे सदा दूर रहते हैं। उनके लिए सोना और मिट्टी समान है। वे रुपये-पैसों को बहुत कम छूते हैं। लोग उन्हें भेंट चढ़ाते हैं किन्तु वे उधर देखते भी नहीं। भक्त लोग ही रुपयों पैसों को उठाते हैं और उन्हें गो-सेवा में या भण्डार खर्च में डाल देते हैं। चाहे हजारों रुपयों की भेंट आवे चाहे कुछ भी न आवे दाता के लिए कुछ फर्क नहीं पड़ता। दाता तो इस सिद्धान्त को मानने वाले हैं कि जिसने दी है चोंच, वहीं देगा चुग्गा। अतः हाय-हाय क्यों ? दाता जिसको भी ग्रहण करते हैं उसे मन, वचन और कर्म से ग्रहण कर लेते हैं और जिस वस्तु को छोड़ना होता है उसे भी मनसा-वाचा-काया छोड़ देते हैं। दाता के लिए ग्रहण करने योग्य तो एक ही वस्तु है जिसको उन्होंने अच्छी तरह ग्रहण कर रखा है। वह है 'दाता की भक्ति' दाता की भक्ति उन्होंने अपना सर्वस्व देकर प्राप्त की है। दाता के जीवन का मूल मंत्र ही त्याग है। दाता असाधारण बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति हैं। वे चाहते तो पढ़लिखकर अच्छी नौकरी कर सकते थे। उन्होंने सेना में नौकरी भी की किन्तु जल्दी ही छोड़ दी। इनकी सेवाओं से मुग्ध होकर अंग्रेज कप्तान ने उन्हें बर्तानिया में ले जाना चाहा। खूब सब्ज बाग दिखाये। यहां तक कि सुन्दर मेम देने का वादा भी किया किन्तु दाता के लिए यह सब व्यर्थ था। उनका मन तो ईश्वर-भक्ति में लगा था। इनका जीवनउद्देश्य ही ईश्वर-प्राप्ति रहा, ऐसी अवस्था में भौतिक वस्तुओं की इच्छा का मूल्य ही क्या है ? जीवन में धन प्राप्ति के अनेक अवसर आये लेकिन ईश्वर-प्राप्ति में बाधक जान इन्होंने उसे ठुकराया ही है।

लोभ तो इनमें है ही नहीं। इन्होंने सदा ही लोभ का त्याग किया है। इनके पुत्र के सम्बन्ध का अवसर आया। टीके में समधी आठ हजार रुपये और सोना लेकर आये। इन्होंने उसे यह कह कर ठुकरा दिया, "इससे क्या बनेगा। इससे गुजारा नहीं चलने का। सभी को अपने पैरों पर खड़े होकर स्वावलम्बी बनना चाहिये। आप जो रुपया दे रहे हैं, उनसे कितने दिन काम चलेगा। देने वाला तो दाता है। वह पर्याप्त दे रहा है।" उन्होंने आये हुए धन को वापिस लौटा दिया। धन्य है दाता जिन्होंने समाज की मर्यादा भी रखी तथा लोगों के लिए भी शिक्षाप्रद उदाहरण प्रस्तुत किया।

नान्दशा में दाता ने हर-निवास का निर्माण करवाया। काफी अच्छा भवन है जिसमें आवश्यकतानुसार सभी व्यवस्था है। कृषि योग्य भूमि भी है किन्तु जब देखा कि वहाँ का वातावरण अशान्तिप्रद है तो तत्काल उसे त्याग दिया। लोगों ने कहा कि लाखों की जायदाद इस तरह त्याग देना उचित नहीं तो दाता ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया, "सोने की कटारी पेट में भोकने के लिये है क्या ?" त्याग के अनन्तर ही शान्ति है। 'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।' प्रभुकृपा या पर्व जन्मों के सुकृतों से ही त्यागमय जीवन बन सकता है।

सन १९२४ के आसपास दाता के पास मदन और रूपा नाम के दो व्यक्ति रहते थे। बहुधा मैं उनसे हसी में कहा करता था कि तुम दाता के द्वार के तगड़े पहरेदार हो। जब तक तुम दोनों ही तब तक कोई दाता के निकट नहीं पहुंच सकता। मदन प्रतीक है काम का और रूपा प्रतीक है कांचन का। जो व्यक्ति काम और कांचन पर विजय प्राप्त कर लेता है फिर वह सरलता से ईश्वर-भक्ति का अधिकारी हो जाता है। दाता ने स्वयं कई बार कहा है "ईश्वरदर्शन के मार्ग में काम और कांचन ये दो बड़े शक्तिशाली बाधक है। मनुष्य को इनसे बच कर रहना चाहिये।" दाता ने कांचन के त्याग के साथ साथ काम का भी त्याग किया है। रामकृष्ण परमहंसजी ने पुरुष और स्त्री के भेदभाव को मिटाने के लिए छ माह तक स्त्री-वेश धारण किया। उस समय उनमें अद्भुत रीति से स्त्री-भाव जागृत हो गया। इस साधना को मधुरभाव साधना कहते हैं। उन्होंने पुरुष-स्त्री के भेद को विचारों द्वारा नष्ट कर दिया था और "मैं पुरुष हूं" इस प्रकार समझने के भाव को भी पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया था। इतना होते हुए भी वे आजन्म स्त्रियों से दूर ही रहे। वे कहते थे कि "सन्यासी जितेन्द्रिय हो तो भी लोक शिक्षणार्थ उसे स्त्रियों से दूर ही रहना चाहिये।" दाता भी इन विचारों से सहमत हैं। वे कहते हैं कि स्त्री का गुरु उसका पति ही है। पति की आराधना कर वह ईश्वर को प्राप्त कर सकती है। अग्नि के पास घृत के जाने से घृत अवश्य ही पिघलेगा। यह प्रकृति का नियम है। इसी तरह मनुष्य किसी स्त्री के पास जावेगा तो उसके मन में विकारों का आना स्वाभाविक ही है। नारद जैसे महापुरुष को भी राजकुमारी की सुन्दरता पर मोहित होना पड़ा और विश्वामित्र को मैनका के पीछे अपनी वर्षों की तपस्या को छोड़ना पड़ा। बड़ी टेढी लीला है कामदेव की। उसके बाण अमोघ है किन्तु जिस पर प्रभुकृपा हो जाती है उससे तो कामदेव को डरना ही होता है। दाता के सन्मुख भी कामदेव की यही स्थिति है। दाता के पास पुरुष और स्त्री दोनों का ही प्रवेश है। बालिका युवा और वृद्धा सभी उम्र की स्त्रियां दाता के दर्शनार्थ एव सत्संग हेतु उपस्थित होती है। सभी के साथ मधुर भाषण करते है। कई स्त्रियां तो एकान्त में दाता से बातचीत करती है। जो सत्संग की इच्छुक होती है उसे दाता पहले कह देते है कि तुम्हारा पति विद्यमान है उसे ही गुरु मान कर उपासना करो। नहीं मानने पर पति की आज्ञा प्राप्त करने की बात करते है। पति की स्वीकृति प्राप्त होने पर ही वह सत्संग की अधिकारिणी होती है। वैसे दाता का मानना है कि विश्व में पुरुष तो केवल एक ही है और वह है 'दाता'। 'दाता' के अलावा सभी स्त्री रूप ही है। बड़े ऊंचे भाव हैं। ये भाव साधारण व्यक्ति की पहुंच के बाहर हैं। 'माँ मीरा' के भाव इसी प्रकार के थे। वे वृन्दावन में वल्लभाचार्य जी से मिलने गई थीं। वल्लभाचार्य जी के पास सन्देश पहुंचाया गया तो उन्होने यह कह कर टाल दिया कि वे किसी स्त्री को

देखना नही चाहते। इस पर मीरा ने जो कुछ कहा वह बड़ा विचित्र था। उसने कहा, "मैं तो वृन्दावन मे एक ही पुरुष अर्थात् श्रीकृष्ण को जानती हूँ। वृन्दावन मे तो वह एक ही पुरुष है अन्य सभी नारियाँ हैं। आज मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और भी पुरुष है। मैं भी परपुरुष के दर्शन करना नही चाहती हूँ।" गूढ़ार्थ वाले इन शब्दो ने वल्लभाचार्य जी की आँखो को खोल दिया। वे स्वयं दौड़े हुए मीरा के पास जा पहुँचे।

दाता का कहना है कि मनुष्य शरीर से भले ही स्त्री से दूर रहे, इससे काम पर विजय नही होती है। मन से भी वह दूर रहे तब काम चलता है। मनसा-वाचा-कर्मणा शुद्ध हो तभी काम पर विजय पाना संभव है। स्त्रियो के बीच कोई भले ही रहे किन्तु मन की मजबूती चाहिये। दाता के पास शिष्यभाव से जो स्त्रियाँ आती है उनसे बड़े निराले प्रश्न करते हैं। क्या तुम दाता की आज्ञा मानोगी? दाता तो रोम रोम मे बसता है ऐसा मानना होगा। क्या तुम मान सकोगी? दाता कह दें कि नग्न होकर नाचो तो क्या तुम नाचोगी? इस प्रकार के प्रश्न अनूठे है। साधारण स्त्रियाँ तो दाता को कामीपुरुष की संज्ञा देकर दूर होती है। जो टिक जाती है वे ईश्वर-प्राप्ति की ओर बढ़ जाती है। एक रात्रि को हम लोग विश्राम कर रहे थे। सत्संग भवन में अखण्ड कीर्तन चल रहा था। उस समय दाता पास में आ विराजे। हम लोग उठ गये। सत्संग सम्बन्धी बातें चल पड़ी। दाता ने कहा कि समर्पण के बिना 'दाता' की कृपा नही होती। गोपियो का उदाहरण देकर उन्होने समझाने की कोशिश की कि जिस प्रकार गोपियो ने मन को मार दिया उसी प्रकार तुम लोग भी अपने मन को मारने की चेष्टा करो। मन सद्गुरु के आदेश के पालन से ही मरता है। ये बातें चल ही रहीं थी कि बावड़ी की कुमावतो की एक युवती वहाँ आ गई और वह भी पास में ही बैठ गई। बातो ही बातो में आज्ञा पालन की बात चल पड़ी। दाता ने उसे कहा, "क्या तुम दाता की आज्ञा मानती हो?"

युवती- "मानती हूँ।"

दाता- "दाता जो कहेंगे वह तुम कर लोगी।"

युवती- "जरूर कर लूंगी। दाता हुक्म दें और मैं न करूं यह कैसे हो सकता है।"

दाता- "यदि दाता हुक्म दे कि नग्न होकर नाचो तो क्या नाच लोगी।"

युवती- "जरूर नाच लूंगी।"

दाता- "क्या तुम्हें इन लोगो से लाज नहीं होगी।"

युवती- "क्यो होगी। दाता का जो हुक्म है। नाचने की ही बात है। दाता कहें कि माथा काट दो तो माथा काट दूंगी। हुक्म देकर तो देखो।"

दाता- "बात खूब बना लेती हो।"

युवती- "केवल बात नहीं है। हुक्म देकर तो देखो।"

दाता- "अच्छा नंगी होकर नाचो।"

इतना सुनना था कि वह कपडे उतारने को उद्यत हो गई। दाता ने पुचकारते हुए उसे रोका और हम लोगों से बोले, "इतनी दढता चाहिये। इस प्रकार जब तुम अपना सब कुछ उसपर न्यौछावर कर देने को तैयार हो जाओगे तब जाकर 'दाता' की कृपा की आशा की जा सकती है।"

इस प्रकार हमने देखा है कि स्त्रियों के बीच रह कर भी दाता जितेन्द्रिय हैं। दाता का कहना है कि "जो पुरुष इन्द्रियों के वश में है उसे भी नारी जाति से अवश्य दूर रहना चाहिये। उसे अपनी पत्नी के अलावा अन्य स्त्रियों को माँ बहिन या बेटी मानना चाहिये। इस प्रकार के भाव रखने से धीरे धीरे अभ्यास हो जाता है। पहले शरीर को रोको, फिर वचन को रोको और उसके बाद मन को रोको। इसके बाद देखो स्त्री-जाति रुकावट के बजाय सहयोगी बन जावेगी।" दाता के सत्संग में सम्मिलित होने के लिए पाच नियमो का पालन करना आवश्यक है। उन पाँच नियमो में एक नियम है 'पराई स्त्रियो को अपनी माँ या बहन समझो। काम पर विजय प्राप्त करने के लिए यह नियम जरूरी है।'

कई स्त्रियाँ तो दाता की परीक्षा हेतु भी आती हैं। उनका प्रयास दाता को अपने पथ से हटाने का ही होता है किन्तु दाता के सन्मुख आने पर उन्हें नतमस्तक ही होना पडता है। अग्नि में अच्छा-बुरा जो भी आता है वह 'स्वाहा' ही होता है। वे तो आती परीक्षा लेने किन्तु स्वयं परीक्षा दे बैठती हैं। बडी विचित्र लीला है प्रभु की।

कामिनी कांचन त्याग के साथ ही साथ भोग वासनाओ का त्याग भी जरूरी है। दाता इसमें भी पीछे नहीं है। मशीन चलाने के लिए ईन्धन की तो आवश्यकता होती है। शरीर चलाना है तो भोजन की तो आवश्यकता होती ही है। दाता भोग को भोग के लिए नहीं करते। वे भोग को जीवित रहने के लिए करते हैं। पोशाक उनकी साधारण। एक धोती मात्र। सर्दी के दिनों में एक चद्दर ओढते हैं। कई बार लोगों ने कम्बल या शाल लाकर दी किन्तु हर बार यह कह कर लौटा दी, 'क्या जरूरत है। चद्दर से ही काम चल जाता है। मुझे नहीं सुहाता।' आसन उनका मृगचर्म है जिसे बिछाकर बैठ भी जाते हैं और यदि सोने की इच्छा हो जावे तो वही मगचर्म बिस्तर का भी काम दे देता है। कभी कभी मृगचर्म भी नहीं होता है तो धरतीमाता ही अपनी गोदी में बिठाती है या सुलाती है। धरती का बिस्तर हो जाता है और ईंट या पत्थर तकिये का काम कर देता है।

भोजन उनका साधारण है। भोग के लिये चाहे अनेक व्यजन बने क्यो कि भक्त अपनी रुचि के और भावों के अनुकूल ही व्यंजन तैयार करते है किन्तु दाता गेहूँ की चपाती और हरी सब्जी ही काम में लेते हैं। दाता की विशेष लीला की बात तो छोडिये वरना दाता की खुराक छोटी छोटी चार चपातियाँ रहती है। इन तीन-चार चपातियो को खाने में उन्हें लगभग १॥ घण्टा लग जाता है। बडी

विनोद की बातो के साथ हंसी के वातावरण मे भोजन होता है। अन्य लोगो की दो या तीन पंक्तियाँ भोजन कर उठ जाती है किन्तु दाता का भोजन होता ही रहता है। नही जाननेवाले तो यही समझते होगे कि दाता की खुराक बहुत भारी है। वे तो खाते ही रहते है किन्तु वस्तुस्थिति यह नहीं है। मिठाई या अधिक घृत की बनी हुई वस्तुओ से भी बचते है। घर की गाय के दूध के अलावा अन्य दूध नही लेते। घर का दूध भी कभी कभी। छाछ का विशेष शौक है किन्तु वह भी घर की गाय की छाछ होनी चाहिये। प्रारंभिक दिनो मे दाल-बाटी का शौक था किन्तु वह भी अब समाप्त हो गया। फल अवश्य ले लेते है। दाता को भोजन करने में मजा नही आता किन्तु दूसरो को कराने मे मजा आता है। मातेश्वरी जी को कह कह कर एक एक कर अनेक वस्तुएं खिला देते है और जब तक वह प्राणी गले तक नही भरता तब तक खिलाते ही रहते है। किन्तु साथ ही मजेदार बात यह है कि खा लेने के बाद वह अपने आप को भूखा अनुभव करता है। दाता की कोई वासना या इच्छा देखने को नहीं मिली। कभी उनकी किसी वस्तु को खाने की इच्छा ही नही होती। उन्होने मातेश्वरी जी को शायद कभी नही कहा होगा कि आज अमुक वस्तु बना दो। अन्य व्यक्तियो के लिए अवश्य बता दिया करते है। दाता वासना और कामना से परे है।

सत्यनिष्ठा

सत्संग के नियमो मे एक नियम है 'सदा सत्य बोलो।' इस नियम से स्पष्ट संकेत मिलता है कि दाता सत्य कथन के पक्षधर है। दाता के मुख से असत्य भाषण कभी सुनने को नही मिलता। वैसे तो दाता भविष्य के हर कार्य के लिये, 'दाता जाने' का ही प्रयोग करते है। मैं जाऊंगा या मैं अमुक काम करुंगा ऐसा उनके मुख से कभी निकलता ही नहीं। वे स्वयं तो सत्यनिष्ठ है ही किन्तु अन्य का झूंठ बोलना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे सदा ही अपने बन्दो को कहते हैं, "कभी झूंठ न बोलो। एक झूंठ को छिपाने के लिए हजारो झूंठ बोलना पड़ता है। इसलिए लाभ क्या है। एक न एक दिन झूठ का आवरण हटता तो है ही। झूंठ सामने आता तो है फिर व्यर्थ झूंठ बोलकर सिरदर्द क्यो लिया जाय। इस सम्बन्ध में दाता एक उदाहरण बहुधा दिया करते है। उदाहरण इस प्रकार है :- एक चोर था, उसको चोरी में बड़ा आनन्द आता था। उसका स्वभाव ही चोरी करने का हो गया था। जिस शहर में वह रहता था, उसमें एक बार एक सन्त का पधारना हुआ। सन्त पहुँचा हुआ था अतः जल्दी ही ख्याति फैल गई। चोर भी दर्शन हेतु पहुँचा। वह भी प्रभावित हुआ और सन्त की सेवा मे रहने लगा। सन्त के प्रति उसकी अच्छी श्रद्धा हो गई। एक दिन सन्त ने उससे पूछा, "क्या तुम मेरी आज्ञा मानोगे ? क्या जैसा मैं कहूंगा, वह करोगे ?" चोर ने कहा, "मैं सब बात मान लूंगा लेकिन आप एक बात के लिए कुछ न कहें।" सन्त ने पूछा, "वह क्या बात है ?" चोर ने कहा, "मै चोरी नहीं छोड़ सकता" तब सन्त ने

कहा, "मैं चोरी के लिए कुछ भी नहीं कहता। मैं तो कहता हूँ कि तुम कभी झूठ नहीं बोलोगे।" उसने तत्काल स्वीकार कर लिया। उसने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा कर ली। उसने सचमुच झूठ बोलना छोड दिया। एक दिन वह राज्य-कोष में चोरी करने गया और वहां से पाच हीरे उठा लाया। कुछ हीरे वहीं छोड दिये। कोषाध्यक्ष ने देखा कि पांच हीरे किसी ने चुरा लिए हैं तो शेष हीरों को उसने अपने घर भेज दिया और राजा को सूचना दे दी कि राज्यकोष में चोरी हो गई है। पता लगाया गया। चूकि चोर झूठ नही बोलता था इसलिए पकड़ा गया। वह राजा के सामने लाया गया। राजा ने पूछा तो उसने सत्य सत्य बता दिया। उसको पूछा गया कि चोरी क्या की और की तो स्वीकार क्यों किया। इसपर उसने जवाब दिया कि चोरी करने की उसकी आदत है इसलिए तो चोरी की और गुरु महाराज ने झूठ न बोलने की आज्ञा दे रखी है इसलिए वह सत्य बोल गया। उसने केवल पाच हीरे ही लिए है। अन्य हीरे किसी और ने लिए होंगे। राजा को उसके कथन पर विश्वास हो गया। प्रसन्न होकर उसने उसे अपना मत्री बना लिया। इस तरह सत्य भाषण से वह चोर से मत्री बन गया।

इस उदाहरण द्वारा दाता प्रयत्न करते है कि सभी बन्दे सत्य बोलना सीख लें। सत्य भाषण से हा मनुष्य उन्नति कर सकते है। श्रीरामकृष्ण परम-हंसजी ने तो एक समय कहा था, "सत्य वचन ही कलियुग की तपस्या है। सत्य-निष्ठा के बल से भगवान को प्राप्त कर सकते हैं। सत्यनिष्ठ न हो तो धीरे धीरे सर्वनाश हो जाता है। उनका कहना था, "बारह वर्ष तक मन, वचन और कर्म से सत्य का पालन किया जाय तो मनुष्य सत्यसकल्प हो जाता है। उसके शब्द को 'मा' कभी झूठे नहीं होने देती।" दाता भी यही कहते हे 'बारह वर्ष तक लगातार सत्य बोला जाय तो वचनसिद्धि हो जाती है।' दाता के मुह से कभी असत्य निकलता ही नहीं है। दाता सत्य को अखण्ड और अविनाशी मानते हैं। उनके विचार से सत्य वही है जो शाश्वत है। सत्य कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है, अत वह अविनाशी है।

इस विश्व में अविनाशी है तो एक ही है। वह है परमात्मा। उसे आप परमात्मा कह दो, ईश्वर कह दो, दाता कह दो या सदगुरु कह दो। वही एक अविनाशी है। उसके अलावा सभी नाशवान है। अत सत्य तो ईश्वर का ही रूप है। जो परमात्मा को नहीं चाहता है वही सत्य को नहीं चाहता। परमात्मा को चाहने वाला, उससे प्यार करने वाला अवश्य सत्य बोलेगा ही। दाता के रोम रोम में तो 'दाता' बिराजमान है ऐसी अवस्था में झूठ का क्या काम। जहाँ प्रकाश है वहां अंधेरे का क्या काम है। दाता के मुख से स्वप्न में भी कभी झूठ नहीं निकलता।

डूगरपुर जिले में गेमाजी नाम से भीलों के गुरु रहते हैं। दाता के चरणों में उनका विशेष प्रेम है। उनकी इच्छा थी कि दाता उनके घर पधारें, किन्तु दाता से अर्ज करने का साहस नहीं हुआ। दाता तो घट घट की बात जानने

वाले है। उनकी इच्छा को उन्होंने जान ली। उन्होंने गेमाजी को कह दिया कि अमुक दिन माकाराम का आना होगा। दाता ने जो कुछ कहा उसको गेमाजी भी भूल गये और दाता के पास रहने वाले व्यक्ति भी। अतः कोई व्यवस्था किसी की ओर से नहीं हुई। दो दिन शेष रहे होंगे कि उदयपुर से एक कार दातानिवास आ जाती है। दाता उसी कार में उदयपुर पधार जाते है और सूचना भीलवाड़ा, करड़ा आदि स्थानों में भेज दी। होली के त्योहार के बाद के दिन थे। रंग पंचमी को वहाँ जाने का दिन था। सभी लोग उदयपुर पहुँच जाते है और चतुर्थी को सायंकाल होते होते सोमलवाड़ा पधारना हो जाता है। ठीक रंग पंचमी को गेमाजी के यहाँ पहुँच जाते है। जिनके मुंह से सदा सत्य निकलता है उनके मुंह से निकली हुई बात कभी झूठी होती ही नही।

एक नहीं अनेक उदाहरण दिये जा सकते है जिससे सिद्ध होता है कि दाता पूर्ण सत्यनिष्ठ है। कैलास जाने का निश्चय कैलास जाने के सात माह पूर्व हुआ था। उस समय दाता ने बालानन्द जी स्वामी जी को लिखवाया था कि माकाराम सहित पांच व्यक्ति कैलास की यात्रा मे होंगे। सात माह बाद यही हुआ। दिल्ली पहुँचते पहुँचते कैलास जाने वाले कई व्यक्ति हो गये जो अपने सामान सहित आये थे। किन्तु धीरे धीरे दाता ने सभी को वापिस कर दिया। दिल्ली के आगे दाता सहित पाच ही व्यक्ति थे। इसी प्रकार दाता ने साफ शब्दो मे यह घोषणा कर दी थी कि कैलास से लौटते वक्त पाच ही व्यक्ति लौटेंगे। छठे व्यक्ति बालानन्द जी थे। पांच व्यक्तियों के लौटने का अर्थ है एक का समाप्त हो जाना। बालानन्द जी सहित जाने वाले छः व्यक्ति थे। आते वक्त बालानन्द जी रूठ कर अलग हो गये और लौटते समय पांच ही व्यक्ति रह गये।

दाता की बड़ी लड़की सज्जन कंवर की शादी थी। श्री कुं. अक्षयसिंह जी पीपली निवासी के साथ विवाह निश्चीत हुआ था। वे अपने कुछ साथियो के साथ नान्दशा आ गये। विवाह की सब तैयारियाँ हो गई। उन दिनो नान्दशा ठाकुर की नाराजगी थी और आस पास के समाज उनके प्रभाव में थे अतः सभी का दाता के प्रति असहयोग था। तोरण का समय निकट आ रहा था और घोड़ी की कोई व्यवस्था नही हो पाई। मैंने दाता से निवेदन किया।

मैं— "भगवन ! घोड़ी की तो व्यवस्था हुई नहीं। तोरण के समय घोड़ी की आवश्यकता होगी। कुछ व्यवस्था तो होनी चाहिये।"

दाता— "घोड़ी नही है तो क्या तोरण नहीं भरेगा। पैदल ही तोरण भर लेंगे।"

मैं— "भगवन ! ऐसा तो नही होना चाहिये। दुनिया में हंसी होगी। लोग तो पहले ही खार खाये बैठे है।"

दाता— "खार खाए बैठे है तो बैठ रहने दे। हंसी हीं तो अपना क्या बिगड़ता है।"

मैं— "न भगवन ! ऐसा तो नहीं होना चहिये।"

दाता–' ठीक है। क्यों घबराता है। दाता की महर हुई तो घोड़ी क्या हथिनी आजावेगी।"

दाता ने ये शब्द कह तो दिये किन्तु हमें तो विश्वास हुआ नहीं। समय लगभग आधा घण्टा ही रह गया। हथिनी का कहीं नामोनिशान नहीं। फिर हाथी पर तोरण तो राजा-महाराजाओं के यहां ही होता है। भय से दाता के सामने कुछ बोल तो नहीं सके लेकिन मन ही मन दु:खी थे कि अभी समय हुआ जाता है। जीप भी नहीं है। पैदल ही तोरण का कार्यक्रम होगा। लोग मजाक उड़ायेंगे व ताने कसेंगे। सम्मेले का कार्यक्रम हुआ और दूल्हा तोरण की ओर बढ़ा। अचानक हम क्या देखते है कि मन्दिर की ओर से हथिनी पर एक साधु चढ़ा चला आ रहा है। उसे देखकर हम ठहर गये। साधु निकट आया। हथिनी को बिठाया और नीचे उतर कर बोला, "जल्दी करो! दूल्हे को ऊपर बिठाओ और तोरण का कार्यक्रम पूरा करो। गुरु महाराज का हुक्म है। जल्दी करो।" हमारी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं। जल्दी से कु. अक्षयसिंह जी को उसपर बिठाया और तोरण का कार्यक्रम पूरा हुआ। कार्य सम्पन्न होते ही साधु हथिनी पर बैठा और बिना कुछ कहे प्रस्थान कर गया। हम कार्य में व्यस्त हो गये और महात्मा जी को रोकना तो दूर धन्यवाद भी नहीं दे सके। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं जिससे सिद्ध होता है कि दाता के मुखारविन्द से जब भी जो निकला है सत्य ही निकला है। भक्त की लाज भगवान को होती है।

विनोदप्रिय

स्वस्थ मन के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है। योग के अन्तर्गत आसनों को इसी हेतु महत्व दिया जाता है। जिसका शरीर स्वस्थ नहीं है, रोगी है और कमजोर है वह ईश्वरभक्ति क्या करेगा। उसका मन तो निरन्तर शरीर में ही अटका रहेगा। 'मेरा सिर दर्द करता है, मेरा पेट दुःख रहा है, मेरा हाथ काम नहीं करता' इसी प्रकार की अनेक चिन्ताएं उसे घेरे रहेंगी। ऐसे जीव को फुरसत ही कहां मिलेगी कि वह अपने मन को ईश्वर में लगा सके। इसीलिए महापुरुषों ने ईश्वर की आराधना के निमित्त शरीर के स्वस्थ होने को आवश्यक माना है। शरीर रोग का घर है। प्रकृति के नियम की थोड़ी सी भी अवहेलना हुई कि शरीर में विकार पैदा हो जाता है। इधर जीव माया से मोहित है अतः प्रकृति का उल्लंघन तो हो ही जाता है। अतः उसका शरीर रोगी तो होगा ही।

आसन की क्रियाएँ शरीर को शुद्ध रखने के लिए हैं किन्तु हर प्राणी उसमें दक्षता प्राप्त नहीं कर सकता और बिना संरक्षण के आसन लगाने से विकृतियाँ होने की संभावना रहती है। ऐसी अवस्था में मनुष्य करे तो क्या करे ? दाता ने इसके लिए एक सरल उपाय बताया है। वह है, "मनुष्य को दिन में दो-चार बार अट्टहास कर लेना चाहिए। जो प्राणी दिन में दो-चार बार जोर से हंस लेता

उसका शरीर ठीक रहता है और उसे बीमारियाँ तंग नही करती।" स्वास्थ्य-विज्ञान के अनुसार दाता के ये विचार बिलकुल खरे उतरते है। हंसना अर्थात् प्रसन्न रहना। मनुष्य प्रसन्न तभी रह सकता है जब उसको किसी बात की चिन्ता न हो। चिन्ता को विद्वानो ने चिता की संज्ञा दी है अर्थात जो व्यक्ति चिन्ता करता है उसका शरीर कृश हो जाता है और वह मृत्यु की ओर निरन्तर अग्रसर होता है। चिन्ता चिता धधकती है। चिन्ता भयंकर अग्नि है उससे बचने के लिए चिन्तामुक्त होना आवश्यक है। हमे प्रसन्न रहना चाहिए। प्रसन्न रहेगे तो हंसेंगे अवश्य और हंसेंगे तो चिन्ता मुक्त होगे इसलिए हंसना एक ऐसी सरल औषध है जो शरीर को स्वस्थ बना देती है।

हंसने के लिए मस्ती आवश्यक है। विनोदी जीव सदैव मस्त रहता है। वह स्वयं हंसता है और दूसरो को हंसाता है। दाता मे यह गुण कूट कूट कर भरा पड़ा है। ये प्रारंभिक जीवन से ही विनोदी स्वभाव के रहे है। विवाह के पूर्व जब वे गायो के बछड़ो को लेकर जंगल मे चराने जाया करते तो अन्य साथी बालकों के साथ विनोद करते। विवाह के बाद सेना मे नौकरी करते तब भी उनकी विनोदप्रियता के अनेक उदाहरण सुनने को मिले है। सेना की नौकरी के समय सभी साथी उन्हे दादा कहते थे। उनसे छोटे व उनसे बडे सभी के लिए वे दादा थे। उनको दादा की पदवी उनके विशिष्ट गुणो के कारण ही मिली होगी। इन गुणो मे विनोद प्रमुख गुणो मे से एक होगा। जब किसी को छेड़ना चाहते तो अपनी अलौकिक कृतियो द्वारा सांप छोड़ देते। इनके अकेले मे कोई इनकी इच्छा के विरुद्ध जगाने जाते तो उन्हें सांप दिखा भयभीत कर दिया करते थे। फौज की नौकरी सरल तो है नहीं। उस नौकरी मे तो पलपल मे मृत्यु का भय रहता है। उस भय से कई बार उनके साथी दुःखी हो जाते तो दाता अपने हंसी के चुटकुलो से खुश कर देते।

सेना से लौट आने के बाद जब वे गायो को लेकर जंगल में जाते तो कई ग्वालबालो के सम्पर्क मे आये। अच्छा परिचय होने पर सभी मस्ती से हास्य विनोद किया करते। दाता उन्हें चिढ़ाते, रिझाते, हंसाते। इनके ग्वालबालसाथी अभी भी मिलते है तो दाता की विनोदप्रियता की बाते किया करते है। बाद के जीवन मे भी विनोदी स्वभाव इनके जीवन में घुलमिल सा गया है। दुःख और सुख में हमने दाता को सदा ही हंसमुख व प्रसन्न देखा है। बाते ऐसी करते हैं कि मनुष्य हंसे बिना रह ही नहीं सकता। हम जब कभी उनके दर्शनो को जाते हैं तो उनकी बातें सुन सुन कर दो बार बार तो हंसते हंसते लोटपोट हो ही जाते है।

नान्दशा मे भूरा जी पन्डा रहते थे। बडे भोले व्यक्ति थे। उनकी स्त्री भी भोली थी। पुत्र रामचन्द्र भी भोले ही है। उनसे भी दाता खूब मजाक किया करते थे। एक छोटा सा उदाहरण प्रस्तुत है। दाता हर-निवास के बाहर ओटो पर बैठे हुए थे और पास ही रामचन्द्र जी पन्डा बैठे थे। भूरा महाराज खेत से आ रहे थे

और उनके सिर पर बोरो का गठठर था। वृद्ध तो वे थे ही। बजन के कारण थक से गये। हर-निवास के बाहर अपने पुत्र रामचन्द्र को बैठा देखकर बोल, "अरे भगी के मूत! तुझे खबर नहो पड़ती। यहाँ बैठा हुआ क्या तेरे बाप को रो रहा है?' उनकी निगाह दाता पर नही पडी थी इसलिए क्रोध में यह बात कह गये। दाता ने रामचन्द्र को कहा, ' उठ रे उठ। गठठर डोकरे से लेकर घर रख आ। रामचन्द्र जी उठे और वजन लेकर घर चले गये। भूरा महाराज भी धीरे धीरे घर चले गये। कुछ देर बाद हो भूराजो महाराज की पत्नी हर-निवास आयी। उसे देख कर दाता ने कहा, "पन्डी माँ! तुम्हारे लक्षणों का पता आज चला। मैं नहीं जानता था कि तुम ऐसी हो। राम! राम! तुम दूर ही रहो। चूल्हे-चोके में मत आना। तुमसे तो बोलना ही ठीक नही।" यह सुनकर डोकरी सन्न हो गई। उसके हाथ-पाँव थरथर कापने लगे। धरती उसके पैरों से खिसकने लगी। उसने कहा, 'बाबजी ऐसी क्या बात हो गई? आप ऐसा क्या कह रहे हैं? मुझसे क्या अपराध हो गया।

दाता बोले— पन्डा बा क्या झूठ बोलते है?

डोकरी माँ— ' नहीं वे कभो झूठ नहीं बोलते।"

दाता— "वे जो कहते है वह तो सही है।

डोकरी माँ— ' हाँ"

दाता— "आज पन्डा बा ने रामचन्द्र को भगी का मूत कहा है।" यह सुनते ही डोकरी हसने लगी। वह हसते हसते लोट-पोट होगई और बोली, ' बाबजी मेरे तो हाथ पाँव ही ठण्डे पड गये थे। मैंने तो सोचा कि बडी गलती हो गई है इसलिए बाबजी ऐसा बोल रहे हैं। वे तो यू ही हैं।"

ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण है। दाता तो बात बात में हँसी की बात कर देते हैं। कोई दाता के पास चला जाता है तो दाता विनोद के मूड में होते है तो पूछ बैठते हैं, "क्या है?" जानेवाला इस प्रश्न का क्या उत्तर दें। उसके मुह से इस तरह का ही उत्तर निकलता है, "कुछ नहीं।" दाता इस उत्तर को ही मजाक में ले लेते हैं। वे कहते हैं, "इतनी क्या जल्दी है। कुछ नहा है तो तसल्ली रखो। होने का काम सब होगा। उबा खेजडा बेज थोडी पडे हैं।" (उबा खेजडा बेज नहीं पडे का अर्थ है कि जीवित खेजडे के पेड में कोई छेद करना चाहे तो नहीं होता है अर्थात् काम तो काम के तरीके से होगा)। जल्दी करने से क्या होता है। विवाह भी होंगे। बाल-बच्चे भी होंगे। सब होगा। जल्दी क्यों मचाते हो। इस प्रकार की मजाक किया ही करते है।

मातेश्वरी जी अर्थात उनकी पत्नी को तो वे दिन में बीसों बार हंसाते रहते हैं। कभी मातेश्वरी जी के भाई गोविन्दसिंह जी को या कभी बच्चो को लेकर मजाक कर ही देते हैं। छोटे-मोटे काम करने को शभु को रख रखा है। दाता ने उसका हसी का नाम रख रखा है 'आलीजा बहादुर' जिसको सर्दी में गरमी व गरमी में सर्दी लगती है। मरताना वह ऐसा है कि एक बार उससे अपराध हो गया तो दाता ने

डाट लगाई। वह दुःखी हुआ। हम सबने उसे कहा कि माफी माग लो। उसने माफी मांगने के लिए यह कह कर मना कर दिया कि माफी मॉगने में शर्म आती है।

इसी प्रकार उग्रसिंहजी भाटी नामक व्यक्ति जो सेवा में रहता है दाता ने उसका नाम 'अचकन बना' रखा है। दाता कभी कभी ताश का खेल खेल लेते है। उग्रसिंह जी को भी साथ खिलाते है व साथ ही उनसे विनोद की बातें करते जाते है। सत्संग की बातें भी साथ ही साथ चलती है। बावन अक्षर के बीच देखो असल अक्षर वो ही। ताश की बावन पत्ती में भी दाता उस सद्गुरु को देखते है। अतः विनोद ही विनोद मे ५०-६० रुपये खर्च कर एक अचकन (कोट) बनवा दिया। जिस पर ताश की बावन पत्तियो का चित्र अंकित करवा दिया। कभी कभी उन्हे अचकन पहिनाते है तो विनोद का वातावरण बन जाता है। एक बार गंगाभारती जी के सामने इसी अचकन को पहिनाकर उनसे नृत्य करवाया। यहाँ हंसी-खुशी के वातावरण मे बड़ी मस्ती से दिन गुजरते है। अपने आदमियो से तो विनोद करते ही है किन्तु अन्य बडे लोग आ जाते है तो उनसे भी विनोद की बाते कर हंसाने में नही चूकते।

एक समय सभी दरवाजे मे बैठे थे और इधर उधर की बाते चला रहे थे। करेड़ा के नारायणसिंह जी भी बैठे थे। वे कह रहे थे, "मै सभी वस्तुओ को पहचानता हूँ। चाहे वृक्षो के पत्ते हो, चाहे कोई चूर्ण हो या कोई अन्य वस्तु।" दाता ने भी यह बात सुनी। वे उठकर अन्दर गये। अन्दर से चिमटे मे एक सूखी वस्तु का टुकड़ा उठाकर ले आये। सबके सामने रख दिया और नारायणसिंह जी से बोले, "पहचानो यह क्या है? चूर्ण है या अन्य वस्तु।" नारायणसिंह ने उसे सूंघा, चखा व उलट पलट कर देखा और बोले, "यह तो कोई अच्छा सा चूर्ण है। चट हाजमावाला।" दाता मुस्करा दिये। दूसरे लोग भी देखने लगे। सब उसकी खोज लगे करने। कोई उसे सूंघने लगा और कोई चखने। अन्त मे लोगो ने कहा, "कुछ पता नहीं चल रहा कि यह क्या वस्तु है? कोई अच्छा सा चूरण दिखाई देता है!" दाता ने धीरे से कहा, "बिल्ली का 'गू' है।" कह कर अन्दर चले गये। इधर सूंघने और चखने वालो की बन आयी। कोई सी-सी करने लगा तो कोई मुंह मे अंगुली डाल उल्टी करने लगा। अन्य व्यक्ति उनकी हालत देखकर हंसने लगे।

इस प्रकार एक नही हजारो किस्से है जो दिन प्रति दिन होते रहते है। इससे वातावरण मे कुछ अनौपचारिकता आ जाती है और आनन्द प्राप्ति मे वृद्धि हो जाती है। कई चिन्तित लोग तो, अपने मूड को ठीक करने ही आया करते है। इस तरह हम देखते हैं कि दाता बडे ही विनोदप्रिय है।

दातामय जीवन

दाता हर समय अपने सद्गुरु दाता के चिन्तन में ही लीन रहते है। उनका जीवन दातामय ही है। जिस प्रकार राधा कृष्ण-कृष्ण करते करते स्वयं कृष्ण हो गई उसी प्रकार दाता, दाता-दाता करते करते स्वयं ही दाता का स्वरूप हो गये।

लोग इन्हें दाता कहते हैं तो कोई गल्ती नहीं करते हैं। एक गोपी अपने मस्तक पर दही लेकर बेचने गई। उसका मन कृष्ण में लीन था। उठते, बैठते, खाते सोते वह कृष्ण-कृष्ण ही कहा करती थी। वह भूल गई कि उसके सिरपर दही है और वह दही बेचने निकली है। वह तो बोलने लगी, कृष्ण लो री, कृष्ण लो री।" जो दाता का प्रेमी होता है उसकी यही गति होती है। प्रेम में प्रेम करने वाला और जिससे प्रेम किया जाता है दोनों ही एकमेव हो जाता है। वहां तो प्रेम करने वाला ही प्रेमी बन जाता है। यही स्थिति दाता की है।

दाता ने अपना अस्तित्व ही दाता' में लय कर दिया है। उनका अपना कुछ है ही नहीं। यह घर दाता का है। दाता के खेत में फसल है। दाता की गायें चरने गई है। दाता का भण्डार भरा-पूरा है। जब भी देखो-सुनो तो दाता के मुख से यही निकलते सुना जाता है। दाता के मुंह से किसी ने कभी भी नहीं सुना होगा कि यह घर मेरा है, यह सन्तान मेरी है, शरीर मेरा है, आदि। वहां तो जो कुछ है दाता का है। कर्ता-धर्ता है तो दाता ही है। कोई व्यक्ति आता है और पूछता है, 'दाता का बिराजना यहां कब तक होगा? कुछ लोग दाता के दर्शन करने आना चाहते हैं।" उन्हें जवाब मिलता है "दाता जानें, यहां तो पल का भी पता नहीं भविष्य की बात कौन करे?" वे अपने आप को दाता का कूकर मानते हैं। वे कहते है कि बाबा को क्या चाहिये - दो रोटी और दो लगोटे जिसका प्रबन्ध दाता ने कर रखा है। एक बार दिल्ली जाना हुआ। एक बन्दे ने कहा राष्ट्रपति से आपको मिला दू। दाता हस कर बोले ' राष्ट्रपति के मिलने से क्या लाभ? वह माकाराम को क्या दे सकेगा। मिलने के लिये तो माका राष्ट्रपति बहुत है।' दाता को किसी से न कुछ लेना है न देना है। लेना और देना है तो केवल 'दाता' से। जो विश्व की पूर्ति करता है वही उनकी पूर्ति करता है। दाता कहते हैं, "सदगुरु मानो दाता सत्य, शिव और सुन्दर है। चर और अचर का निर्माण कर्ता वही है। वही ब्रह्मा होकर विश्व को पैदा करता है, विष्णु बनकर पालन करता है और शिव होकर सहार करता है। उसी ने सूर्य का रूप बनाकर ससार को प्रकाशित किया है। वही चन्द्रमा है जो सब में मधुरता भर रहा है। सूर्य का प्रकाश यही है तो अंधेरा भी वही है। यदि वह पिता है तो पुत्र भी वही है। इन आँखों से जो कुछ दिखाई देता है वह सब उसी का पसारा है। कहां तक कहा जाय मैं भी वही हूं।'

विचार कर देखा जाय तो कुछ भी असत्य प्रतीत नहीं होता। एकमात्र वही वह है। वह एक है और अपनी इच्छा से दो रूप बना लेता है ब्रह्म और माया। उसे ब्रह्म कहो, चाहे आत्मा, चाहे पुरुष कह दो। माया को जीव कह दो या स्त्री कह दो जो कुछ पसारा है। वह सब ब्रह्म द्वारा माया का आश्रय लेकर किया हुआ है। अतः जो कुछ है वह ब्रह्म ही ब्रह्म है। दाता का ज्ञान परमज्ञान है व जो कुछ ज्ञान है वह अनुभव सिद्ध है। इसीलिए तो कहा जा सकता है कि दाता का सम्पूर्ण जीवन दातामय ही है।

0 0 0

दाता की विषय-प्रतिपादन शैली

दाता की विषय-प्रतिपादन शैली बड़ी सरल एव बोद्धगम्य है। जो कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी धर्म या मत विशेष का हो उनके प्रवचन को सुनता है तो मुग्ध हो जाता है। दाता प्रत्येक विषय को सीधे साधे दृष्टान्त देकर इस तरह की सरल भाषा एवं सरल तरीके से समझाते है कि बालक तक उसे समझ लेता है। उनके प्रवचन सुन लेने के बाद प्रत्येक व्यक्ति यही समझने लगता है कि धर्म बड़ा सरल विषय है। शास्त्रो ने धर्म को इतना जटिल बना रखा है कि लोग उस नाम से ही भय खाते है। यह कहते सुना गया है कि धर्म सन्तो, महापुरुषो और विद्वानो के जानने की वस्तु है। अज्ञानी, मूर्ख या कम समझ व मन्द बुद्धि वाले व्यक्ति उसका क्या जाने किन्तु दाता के दरबार मे आकर उन्हे अपनी विचार-धारा बदलनी ही पडती है। वहाँ तो सरल सीधी भाषा मे नित्य व्यवहार मे आनेवाले दृष्टान्तो के माध्यम से गहन विषयो के तत्व सुनने वालो के समझ मे तत्काल ही आ जाते है।

उनके विषय-प्रतिपादन मे एक विशेष बात यह है कि वे प्रसंग से सम्बन्ध न रखने वाली बातो से श्रोता को परेशान नही करते। उनकी बोली में सरलता रहती है व साथ ही विनोद का पुट भी। उनकी बोली मे न तो भाषा का आडम्बर है व न अन्य आडम्बर ही। दाता के विषय को समझाने का मुख्य आधार दृष्टान्तो पर आधारित होते है। प्रश्नकर्ता के भाव के अनुसार ही सिद्धान्त रूप में कुछ वाक्य कह देते है और विषय की सत्यता बताने के लिये व्यवहारिक उदाहरण प्रस्तुत कर देते है। अपनी ओर से भरपूर कोशिश करने पर भी किसी के समझ में न आवे और प्रश्नकर्ता का आग्रह जिद्द के रूप में बना रहे तो वे चुप हो जाते है। कभी विवाद में नही पड़ते। वे सीधे सादे शब्दों में कह देते है, "मन माने की बात, दाख छुहारा छोड़ के विषकीड़ा विष खात।"

कई व्यक्ति अनेक प्रश्नो को लेकर तथा अनेक तरह से बनठन कर आते है। किन्तु बहुधा देखने में आया है कि उनको मुंह खोलने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। दाता अन्य जिज्ञासुओं से बात करते हुए उनके प्रश्नो के उत्तर भी दे देते है। वे मन ही मन उनकी विलक्षणता को स्वीकार कर दाता के चरणो में नत-मस्तक हो जाते है। कभी कभी विषय प्रतिपादन मे मस्त होकर गाने भी लग जाते है। दाता की आवाज सुरीली तो नहीं है किन्तु मधुर तो है ही और सीधा प्रभाव करने वाली है।

दाता का कहना है, "जिसने अपना भार 'दाता' को सौंप दिया है उसका भार दाता ही वहन करते है।" कहा भी गया है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वह मनुष्य मुंह से बोलता तो है किन्तु वह तो दिखावे मात्र में बोलता है। वास्तव में बोलने वाला तो 'वही' है। मनुष्य तो लाऊडस्पीकर मात्र है जिसको दाता का सहारा मिल जाता है उसके ज्ञान-भण्डार का कहना ही क्या है। वह तो अनन्त है। दाता पूर्ण है। पूर्ण में से जो कुछ निकलता है वह भी पूर्ण ही होता है अतः पूर्ण कभी अपूर्ण होता नहीं। जितना चाहो उसमें से ले लो व जितना चाहो निकाल लो। दाता अनन्त हैं और अनन्त ही रहता है। बस आप उसपर निर्भर रहकर तो देखो।

एक बन्दे ने एक बार दाता से पूछा 'दाता! हम तो संसारजाल में बुरी तरह से फंसे हुए है। चाहते तो है कि दाता का भजन करें किन्तु कर नहीं सकते। अड़चन ही अड़चन पैदा होती है। कोई ऐसा तरीका तो बतावें जिससे हम भी दाता का भजन कर सकें।' यह सुनकर दाता हँस दिये और फिर बोले "आप लोग कैसी भोली बातें करते है। दाता की आपको कोई आवश्यकता तो है नहीं। माकाराम को प्रसन्न करने के लिए कोरी बाते बनाते हो। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आवश्यकता हुई तो लोग चन्द्रमा तक पहुंच गये। अगम्य स्थान भी आज मानव पदचिन्हों से युक्त हो गये। फिर दाता का भजन करना इतना कठिन तो है नहीं। तुम चाहते हो नहीं इसलिए भजन होता नहीं। चाह तो पैदा करो। अपने आप को पनिहारी बना लो। आपने कभी पनिहारी को देखी है?"

बन्दा– "देखी है।"

दाता– "पनिहारी क्या करती है।

बन्दा– "वह कुएँ या सरोवर से पानी लाती है।"

दाता– "उसमें आपने कोई विशेषता देखी।

बन्दा– विशेषता तो कुछ भी नहीं देखी। घड़े को सिर पर रखकर घर चली आती है।"

दाता– "यही तो विशेषता है। वह घड़े में पानी भरकर घर चलती है। मार्ग में कोई अन्य पनिहारी मिलती है, उससे बातें करती है। मार्ग में पड़ने वाली वस्तुओं को देखती हैं। नाचती है, कूदती हैं। बहुत कुछ देखती करती हैं किन्तु घड़े का पानी घर ले आती है। एक भी बून्द पानी घड़े से बाहर नहीं गिरने देती। आप भी पनिहारी की चाल चलो। अपना सभी काम करें खायें, पीयें, खेलें, आराम करें, सोयें, सभी काम करें लेकिन एक बात का ध्यान रखें। सब काम करते हुए उसे न भूलें। आप घर के बाहर जाते है, विदेश तक जाते हैं। वहाँ

जाकर सभी प्रकार के काम करते है लेकिन घर को नही भूलते। हर समय घर याद रहता है। उसी तरह आप भी हर समय दाता को ध्यान में रखें। उसे कभी न भूले। ऐसा करने पर काम बन जावेगा। सुरतारूपी पनिहारी है, कायारूपी गागर है व सत्स्वरुपी जल है।

विषय के प्रतिपादन के लिए दाता जो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं वे इतने मार्मिक और तथ्यपूर्ण होते है कि सुनने वाले उनकी सूक्ष्म अवलोकन शक्ति पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहते है। ठीक श्रीरामकृष्ण देव की शैली की तरह ही दाता की शैली मिलती है। वे भी पहले सिद्धान्त की बात कह देते हैं और फिर उसको समझाने के लिए मिलता जुलता उदाहरण प्रस्तुत कर देते है। उनके विषय प्रतिपादन का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। एक व्यक्ति ने उन्हे प्रश्न किया, "माया ईश्वर की शक्ति है, वह ईश्वर मे ही वास करती है, तब फिर क्या ईश्वर भी हमारी ही तरह मायाबद्ध है।" इसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण देव कहते है, "अरे ! नही रे भाई, वैसा नहीं है, माया ईश्वर की है और वह उसी मे सदा रहती है तो ईश्वर इससे मायाबद्ध नहीं हो जाता। यही देखो न, सर्प के मुंह मे विष रहता है, उसी मुंह से वह हरदम खाता है, पर वह स्वयं उस विष से कभी नही मरता। वह जिसको काटता है, वही मरता है।" कैसा विषयानुकूल उदाहरण है।

दाता के विषय प्रतिपादन के कुछ उदाहरण देखिये। एक बन्दे ने दाता से पूछा, "भगवन ! आपकी कृपा का अनुभव होते हुए और आनन्द की अनुभूति होते हुए भी मन में शंका उत्पन्न हो जाती है और शंका के उत्पन्न होते ही मन विचलित हो जाता है। ऐसा क्यो होता है ?" दाता, "शंका होती है। मन और बुद्धि का स्वाभाविक गुण है शंका का होना। बड़े बड़े महात्माओ, ऋषि-महर्षियो और मनीषियो को भी शंका होती रही है और हो जाती है फिर साधारण व्यक्तियो की तो बात ही क्या है। माँ सती तो साक्षात परमेश्वरी ही थी। उस जगत्जननी माँ को भी शंका हो गई थी जिसके कारण उसे अपने शरीर को अग्नि मे होम देना पड़ा। वह जानती थी कि भगवान राम साक्षात भगवान है और सृष्टि के भार को उतारने हेतु पुरुष वेष मे अवतरित हुए हैं। भगवान भोलेनाथ भी उसे निरन्तर यही कहा करते थे कि राम पूर्णब्रह्म है। वे ही मेरे इष्टदेव है। इससे अधिक विश्वास देनेवाली बात अन्य क्या हो सकती है। किन्तु वही सती श्रीराम में अविश्वास कर बैठी। श्रीराम का वनवास का समय था। रावण सीता को हर ले गया था। राम और लक्ष्मण सीता को वन वन खोजते फिर रहे थे। श्रीराम सीता के वियोग में विलाप कर रहे थे। वे एक साधारण संसारी व्यक्ति की तरह रो रहे थे। झाड़ी झाड़ी से सीता के बारे में पूछ रहे थे। यह सब तो दाता की लीला है। वह लीलाधारी है। वह पूरा नाटककार है। उसको समझ लेना सरल नहीं है। जब राम विलाप कर रहे थे ऐसे समय में भोलेभण्डारी

भगवान शिव सती जी को साथ लिए हुए उधर से निकले। वे भगवान राम को मन ही मन प्रणाम कर आगे निकल गये। माता सती ने भी भगवान राम को इस रूप में देखा। उन्हें देखकर वे भ्रमित हो गई। सती ने सोचा यह साधारण सा जीव मालूम होता है। यदि ये परमात्मा होते तो साधारण व्यक्ति की तरह रोते क्यो? इस प्रकार रोने कलपने वाला व्यक्ति भगवान कैसे हो सकता है? मन थोड़ा सा भ्रमित हुआ नहीं कि अनेकों शकाओं के बादल उठ खड़े होते हैं, तर्क बुद्धि जागृत हो जाती है और मन की गति विचलित हो जाती है। माता सती के मन में भी शका ने प्रवेश किया। शका के होते ही वे विचलित हो गई। सती ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। वे भगवान शिव से भी न कह परीक्षा लेने हेतु सीता का रूप धर झाड़ी के पीछे जा बैठीं। आगे जो कुछ हुआ आपने सुना ही होगा। अत शका होती ही है। देखने के बाद भी शका हो जाती है। आप लोगों ने तो कभी 'दाता' को देखा है नहीं। अन्य लोगों के कहे कहे आप दाता की रूप-रेखा-आकार, स्वरूप आदि मानते हैं। देखी हुइ वस्तु में भी शका करने लग जाते हो, फिर जिसको आपने कभी नहीं देखा, उसमें शका का होना स्वाभाविक है और होती ही है। नारद जैसे मुनि भी भगवान में शका कर गये। वासना और कामना मानव के मन को डॉवाडोल कर देती है। भगवान कृष्ण साक्षात भगवान ही थे। लोग उन्हें सोलह कला के अवतार ही मानते है। आज उनमें कोइ शका नहीं करता है किन्तु उस समय के महान व्यक्ति भी उनके भगवान होने में शका करते रहे। वे कहा करते थे कि यदि वे भगवान हैं तो माखन की चोरी क्यों करते रहे? उन्होंने छल-कपट क्यो किया? गोपियों के साथ रास लीला क्यों की? वे तो साक्षात भगवान हैं फिर एक साधारण राजा के डर से द्वारिका में क्यो जा छिपे? इस प्रकार की अनेक बातें अनेक महापुरुष भी करते रहे हैं। यह सब प्रभु की ही लीला है। यह सब वह इसलिए करता है जिससे ससार का कार्य विधिवत चलता रहे। उसमें अटूट विश्वास करें। अटूट विश्वास और सच्चे प्रेम के सामने शकाएं अपने आप मिट जाती हैं।"

"एक पत्नी अपने पति में कभी शका नहीं करती है। कारण उसका अपने पति में पूरा विश्वास है। यदि वह अपने पति में से विश्वास हटा ले और शका करने लग जाय तो आप लोग ही कह देंगे कि यह कैसी मूढ़ी (मूर्ख) औरत है। आप ही बतावें कि उसकी क्या दशा हो जावेगी? वह घर की रहेगी न घाट की। वह पथ भ्रष्ट तो होगी ही किन्तु साथ ही साथ वह अपने पति के स्वरूप से भी वंचित हो रहेगी।"

मेरे दाता सभी कार्यों के करने वाले हैं। वह सभी कर्मों का कर्ता-धर्ता होते हुए भी अकर्ता है। होता वही है जो वह चाहता है। वृक्ष का एक पत्ता भी हिलता है तो उसकी इच्छा से हिलता है, किन्तु महापुरुष कहते हैं कि वह तो इच्छा से परे है। यदि बन्दे को अपने स्वरूप की ही चाह है तो उसकी चाह तो करनी ही

पडेगी। अपनी ही चाह मे वह स्वय है। उस पर अटूट विश्वास, अपनी सच्ची लगन और सच्चे प्रेम से हमारे सभी भ्रम, सभी शंकाएँ निर्मूल हो जाती हैं। महापुरुषो के पास ज्ञान है और आप भी बुद्धिमान हो। आपके पास भी ज्ञान भरा पड़ा है किन्तु आपने सुना, गोपियो के पास कौनसा ज्ञान था? उन्हे तो केवल यही भान था, कृष्ण हमारा है। इसी एक धारणा के आधारपर वे कृष्णमयी हो गई। अच्छे अच्छे ऋषि-मुनि, महान् सन्त और महान् योगी जिस पद को नही पा सके उस पद को गोप-गोपियो ने पा लिया।"

"भगवान कृष्ण के प्रति माँ यशोदा को भी शंका हुई थी। भगवान कृष्ण अपनी वाल्यावस्था मे एक वार गोप-गोपियो के साथ खेल रहे थे। खेलते खेलते उन्होने मिट्टी उठाई और मुंह मे धर ली। शिकायत होने पर मां यशोदा डण्डा लेकर उन्हे भय देने आयीं। इसपर कृष्ण ने अपना मुंह खोलकर वताया। मुंह में माता यशोदा ने विश्वरूप को देखा। वे चकित हो गई। उस समय वे मान गई कि उनका लाल तो भगवान का अवतार है किन्तु कुछ ही देर वाद वे शंका करने लगी कि उन्हे भ्रम हुआ है। शंकाएं होती हे किन्तु उसकी महर से मिट जाती है।"

इस प्रकार हम देखते हे कि विपय-प्रतिपादन में एक ही वस्तु को प्रमाणित करने के लिए आवश्यकता होने पर कई उदाहरण भी दे देते हे। ऐसा विपय को सरल करने के लिए ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रश्नकर्ता की समस्या का वहुधा उनके माध्यम से ही समाधान करवाते हे। इससे समझने वाले को और आसानी हो जाती हे। उदाहरण प्रस्तुत हैं–

दाता के सन्मुख अनेक लोग वैठे थे। जिज्ञासु प्रश्नो पर प्रश्न कर रहे थे। दाता धीरे धीरे सभी समस्याओ का समाधान करते जा रहे थे। सत्य और झूंठ पर मामला अटका। एक वन्दे ने प्रश्न किया, "महापुरुप जो भी कहते हैं वह क्या सभी सत्य होता हे? वे कभी सत्य वोलते हे और कभी झूंठ भी कह देते हैं।"

दाता– "महापुरुपों मे यह देखना ही अपने आपको भ्रम में डालना है। महापुरुप सत्य कह रहे हैं या झूंठ इसका निर्णय आप नही कर सकते, कारण आपने कभी सत्य को देखा नही हे। आप वतावें सत्य किसे कहते हे?"

वन्दा– "जो कुछ इन आँखो से दिखाई देता हे वही सत्य हे।"

दाता– "नही! ऐसा नही हे। सत्य वही हे जो नित्य है। दाता ही नित्य है अतः दाता ही सत्य हे। दाता के अतिरिक्त और कौन है जो नित्य और सत्य है। आपके लिये सत्य और झूंठ दोनो की परिधि है। दाता के लिए तो सांच और झूंठ दोनो वरावर हे। आप ही वतावें कि आँखो से देखी वात सत्य हे या कानो से सुनी?" पास ही में जयपुर के सीताराम जी वैठे थे। दाता ने उनकी ओर संकेत कर पूछा, "ये कौन हैं?"

वन्दा– "ये तो सीताराम जी हे।"

दाता– "ये कहां बैठे हैं और इन्होने क्या पहन रखा है ?"

बन्दा– "ये जमीन पर बैठे हैं और इन्होंने पजामा और कमीज पहन रखी है।'

दाता– ' अब आप यह बतावें कि ये सीताराम जी हैं या इनका पजामा, कमीज यानी पोशाक ही सीताराम जी है।'

बन्दा– "यह ड्रेस भी सीताराम जी की है अत यह स्वरुप भी इनका ही हुआ। इस ड्रेस से ही सीताराम जी की पहचान है।"

दाता– 'सीताराम जी ने इस समय यह ड्रेस धारण कर रखी है, इसीलिए यह इनका स्वरूप हुआ। अत यह ड्रेस सीताराम जी का स्वरूप है, सत्य है। यही पजामा कमीज सीताराम जी धारण न करें तो उसे आप सीताराम जी का स्वरूप कहेंगे ?

बन्दा– "नहीं। ड्रेस के धारण करने पर ही तो यह ड्रेस सीताराम जी का स्वरूप होगा।'

दाता– ' अभी दिन है या रात ? आपको क्या दिखाई दे रहा है।'

बन्दा– "अभी तो दिन है।

दाता– ' दिन की क्या पहचान है ?'

बन्दा– 'प्रकाश से ही दिन की पहचान है। अंधेरा होने पर रात होती है।"

दाता– ' यदी अंधेरे में भी प्रकाश दिखाई देने लगे तो दिन होगा या रात ?'
सभी चुप।

दाता– बन्दे के लिए तो सत्य और झूठ दोनों ही है किन्तु दाता के 'लिए न कोई सत्य है और न कोई झूठ। कारण दोनों ही स्वरुप उसके हैं और वह दोनों ही स्वरूपों से परे है। जो पांचों में रमता है वही हमारा पिता है, हमारा 'दाता' है, अत दाता के लिए सांच और झूठ दोनों बराबर हैं।

एक अन्य समय में एक बन्दे ने पूछा— 'हम सद्गुरु को कहां प्राप्त कर सकते हैं ?'

दाता– ' आप लोग कहां से आ रहे हैं ?

बन्दा– अभी तो घर से आ रहे हैं।'

दाता– अभी तो आप घर से आ रहे हैं किन्तु घर से पहले कहां थे ? '

बन्दा- "इससे पहले हम अपने कार्यालय में थे।'

दाता– ' कार्यालय में आप क्या कर रहे थे ?"

बन्दा- "सरकारी काम कर रहे थे।'

दाता– "आप किस पर बैठकर काम कर रहे थे ?

वन्दा– "हम कुर्सी पर बैठकर काम कर रहे थे।"

दाता– "वहाँ तो कुर्सी पर बैठकर काम कर रहे थे किन्तु घर आने पर आप लोग कहाँ बैठे ?"

वन्दा– "वहाँ पर भी हम लोग कुर्सी पर ही बैठे।"

दाता– "कुर्सी आपके साथ आयी या आप कुर्सी के साथ ?"

वन्दा– "भगवान ! वहाँ भी कुर्सी थी और घर पर भी कुर्सी थी।"

दाता– "यही तो बात है। जिस तरह आपके घर भी कुर्सी थी, कार्यालय में भी कुर्सी थी, उसी तरह मेरे दाता भी कार्यालय मे, घर में, यहाँ, वहाँ और सर्वत्र है। ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ वह नहीं हो। वह हर स्थान पर विद्यमान है। वह तो घट घट वासी है। चाहिये उसको देखने वाला। अहंरूपी चश्मा लगाने पर वह नजर नहीं आता है। उसको देखने के लिए अहंकार और स्वार्थ रूपी चश्मा उतारना पड़ता है। अपने भावों को शुद्ध करना होता है। प्रेम की धारा बहानी पड़ती है। आत्मसमर्पण करना होता है। तब कहीं जाकर उसका अनुभव होता है। वह है तो सर्वत्र किन्तु उसको प्राप्त करना जितना सरल है उतना ही कठिन भी है। आपके लिए नाना पकवानों की योजना है। थाल भरे पडे है। रस से वे परिपूर्ण है। स्वाद उनका एक से एक बढ़कर है किन्तु आपको भूख होगी तभी तो आप उनका स्वाद ले सकोगे। बिना भूख या अपच में आपको उनमें कोई रस नहीं आवेगा। उस समय आप उन्हें कुदृष्टि से देखेंगे। अमृत के बजाय वे वस्तुएँ आपके लिए जहर के समान हो जावेंगी। अतः समझ लो कि भूख में ही स्वाद है। उसकी अर्थात् सद्गुरु की भूख जगाओ। जब आपको भूख लग जावेगी तो अपने आप काम बन जावेगा। कोरी बातों से काम बनने का नहीं।"

"आप लोग अपने घर को नहीं भूलते। चाहे आप कार्यालय में हो, चाहे बाजार में हों, चाहे आप भ्रमण में हो, हर समय आपको घर याद रहता है। कारण, जो कुछ आप कर रहे है वह सब कुछ घर के लिए ही तो है। इसीलिए आप घर को भूलना चाहो तो भी नहीं भूल सकते हो, चाहे आप सात समुद्र पार क्यो न चले जाओ। वह तो हर समय आपके मन में रमा ही रहेगा। जिस प्रकार आप हर स्थिति में घर को याद रखते हो उसी प्रकार हर समय उसको याद रखो। फिर देखो कितना जल्दी काम बनता है। आपको यह सीट दाता की अपार दया से मिली है। आप चाहो तो इस सीट पर बैठना सार्थक कर दो वरना एक दिन इस सीट से आपको हटना तो पडेगा। हटते वक्त आपको बुरा लगेगा। आप पछताओगे, रोवोगे किन्तु फिर रोने-धोने से क्या होगा ? अतः समय रहते संभल जाना ठीक होगा। यह दुनिया और इसके काम बडे निराले है। इसमें बड़ी चटक-मटक है। हर जीव को अपनी चमक-दमक दिखाकर अपनी ओर आकर्षित करने की कसर नहीं छोड़ती है। जो इस चमक-दमक में उलझ गया वह डूब गया, किन्तु जो इसमें नहीं फंसा वह निहाल हो गया।"

दाता की दया से अनेक धर्म ग्रन्थ और शास्त्र पढने का अवसर मिला है। उपनिषद भी लगभग १०८ देखे है। गीता को भी कई बार पढी है लेकिन सत्य कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उनमें से कुछ भी पल्ले नहीं पडा। दाता के प्रवचन सुनने के बाद जब दुबारा उन्हें देखा तो कुछ कुछ समझ में आने लगा। दाता पढे तो केवल कक्षा छठवीं तक हैं। उन्होंने शास्त्र शायद देखे भी नहीं होंगे। किन्तु उपनिषदों और गीता की लगभग सारी बातें उनके प्रवचनों में आ गई हैं। शास्त्रों में निहित गूढ रहस्य दाता से सुनने के बाद सरल हो जाते हैं। दर्शन का कोई क्षेत्र नहीं छूटा जिस पर दाता ने अपने विचार न बताये हों। गूढ से गूढ तत्व को दाता ने बडे ही सरल बना दिये हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है –

बन्दा– "भगवन! वेदों में 'नेति नेति' का प्रयोग हुआ है। यह 'नेति नेति' क्या है?"

दाता– "महापुरुषों ने 'दाता' की खोज की। खोज में अलग अलग अनुभव हुआ। खोज के आधारपर यह नहीं है, यह है का अनुभव हुआ। इसे ही नेति नेति कहते हैं। मान लो एक अंधेरे कमरे में एक व्यक्ति सोया हुआ है। उसे खोजने के लिए कोई व्यक्ति कमरे में गया। पहले उसका हाथ पलग पर पडा। वह बोला, 'यह नहीं है।' फिर आगे बढा। इस बार उसका हाथ मेज पर पडा। यह बोला, यह भी नहीं है।' फिर और खोजने लगा। भिन्न भिन्न वस्तुओं पर उसका हाथ पडता गया और वह 'यह नहीं है' कहता गया। अन्त में उसका हाथ उस सोये हुए पुरुष पर पडा और वह चिल्ला उठा, इति! इति! अर्थात यह है। उठाकर बातचीत करने पर उसकी जानकारी हो गई। उसे अज्ञान ज्ञान और विज्ञान तीनों का ही ज्ञान हो गया।

ससार में तीन प्रकार के जीव हैं – बद्ध, मुमुक्ष और मुक्त। जैसे पकडी जानेवाली मछलियाँ तीन प्रकार की होती हैं। कुछ तो ऐसी होती हैं जो निकलने का प्रयत्न तक नहीं करती। वे यह भी नहीं जानती कि उनपर किसी प्रकार का कोई सकट आया है। कुछ मछलियाँ भागने का प्रयत्न करती हैं किन्तु उन्हें मार्ग नहीं मिलता। कुछ मछलियाँ ऐसी होती हैं जो जाल को काट कर निकल भागती हैं।

माया पहचान में आते ही स्वय दूर हट जाती है जैसे मालिक को अपने घर में उसके घुसने का पता लग गया है यह जान कर चोर भाग जाता है, वही हाल माया का है।

जहाँ प्रकृति नमन करे, जहाँ ससार के सभी जीव नमन करें और जिसके सम्मुख सम्पूर्ण प्रकृति नमन करे, वही हमारा पिया (दाता) है।

ससार की वस्तुएं सभी नाशवान हैं। उनकी ओर आकर्षित होना सारहीन है वे वस्तुएं क्षणिक सुख देने वाली हैं। उनका अन्त दुखदायी है। ऐसी वस्तुएं जो दुखदायी हैं उनके लिए दौड लगाना हमारी भूल है। एक मात्र दाता ही सत्य स्वरूप है।

लकड़ी में आग विद्यमान है। आग ने ही इस लकड़ी को वनाया है। आग से ही यह फली है और फूली है। आग ने ही इसे सुखाया है। यह सव कुछ है फिर भी इसको आग का अनुभव नहीं है। कारण, यह आग से दूर है। इसको यदि आग को प्राप्त करना है अर्थात् आग होना है तो इसको आग मे प्रवेश करना होगा। अपने आवरण को आग मे समर्पण करना होगा।

पौधा जव तक वीज रूप में रहता है, तव तक उसे तूफान का कोई भय नहीं। किन्तु वही वीज जव विकास को प्राप्त होता है तो आँधी और तूफान का तथा सर्दी और गर्मी का सामना करना ही पड़ता है। आँधी तूफान और सर्दी-गर्मी ही उसको वृक्ष का रूप देते है। वे ही उसे वनाते है। जो वृक्ष आंधी-तूफान मे पैर छोड़ देते है, उन्हें नष्ट होना पड़ता है। जो धैर्य से सहन करते है वे खडे रहते है।

भगवान शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। उनका कथन था कि जो तूं है वह मै हूँ और जो मैं हूँ वह तू है। वह सभी प्रणियो में गूढ़, सर्वव्यापी, सव भूतो की अन्तरात्मा, सव कर्मो का नियन्ता, चैतन्य, स्वरूप शुद्ध और निर्गुण ब्रह्म को देखते थे। जो वुद्धिमान मनुष्य उसको अपने मे स्थित समझता है, उससे नित्य शान्ति प्राप्त होती है।

वन्दा जव तक सोचता है कि मै कर्म कर रहा हूं तव तक अच्छे-वुरे कर्मो के फल को उसे ही भोगना पड़ता है। जव वह अकर्ता होकर कर्म करता है तो कर्मफल का भोक्ता वह नही रहता। उसका कर्म निष्कर्म हो जाता है।

जैसे वारूद के ढेर मे एक चिनगारी गिर जावे तो एक क्षण मे वारूद का ढेर आग में वदल जाता है, वैसे ही यदि पिया को झलकरूपी चिनगारी हमारे में पड़ जाती है तो सारा शरीर ही जगमगाने लग जावेगा। फिर आनन्द ही आनन्द है। वस यही तो चाहिए। पिया मिला कि सव कुछ मिल गया। पिया की चूंदड़ी का ओढना ही सफल हो जाता है जव वह मिल जाता है। यह पिया की चूंदड़ी पिया के लिए ही है। उसी को प्राप्त करने के लिए यह ओढ़ी है। उसके मिलने पर उसी को अर्पण है।

दाता एकात्मभाव से और मन से तीव्र गतिवाले है। वे सव के ही आदि व सव के मन की जानने वाले है। वे अपार शक्तिवान है। उनकी शक्ति से ही विश्व का संचालन होता है। वे चल भी है, अचल भी है तथा जितने दूर है उतने ही निकट भी है। वे इस विश्व के भीतर परिपूर्ण है तथा इस विश्व के वाहर भी हैं। जो व्यक्ति सम्पूर्ण प्राणियो को दाता में व दाता को सम्पूर्ण प्राणियो मे देखता है, वह महान है। वह किसी से घृणा नहीं करता, कारण उससे भिन्न उसको कुछ दिखाई ही नहीं देता। किसी से घृणा करना दाता से ही घृणा करना हुआ।

सम्पूर्ण प्राणियों में उसी एक दाता को देखने वाला प्राणी मोह और शोक से परे हो जाता है। वह अपने आप में पूर्ण हो जाता है।

समुद्र का जल ही समुद्र की इच्छा करता है। इस शरीर में छिपा हुआ जल ही उस जल की इच्छा करता है। जब तक चाह नहीं है तब तक वह फूल नहीं खिलता है।

तराजू के पलड़े में हिमालय को रख दो व दूसरी ओर गृहस्थी के दुःखों को रखो तो भी हिमालय हलका पड़ जावेगा। गृहस्थी में रहकर सौ वर्षों में भी उस तक नहीं पहुँच सकते किन्तु सत्संग के प्रभाव से यदि दाता की कृपा हो जाए तो देरी लगने का प्रश्न ही नहीं। यही तो उसकी महर का अनोखापन है।

यह शरीर तो कांच की हांडी है। इस शरीर में उस पिया की रौशनी है और यह शरीर उस रौशनी से प्रकाशित है तो इसका मूल्य है अन्यथा यह तो मिट्टी की कच्ची हांडी है सो टूटेगी ही।

